M.A. Political Science (Previous) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20POL22C9

PUBLIC ADMINISTRATION - II

लोक प्रशासन - II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Pardeep Kumar*

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price :

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

SYLLABI – BOOK MAPPING TABLE

इकाई – 1	क्रमिक प्रशासन	पृष्ठ संख्या
	नौकरशाही : सिद्धान्त, प्रकार, भूमिका,	
	मैक्स वैबर के विचार और आलोचक,	
	मन्त्री – लोक सेवक सम्बन्ध	
इकाई – 2	वित्तीय प्रशासन – बजट व बजट निर्माण प्रक्रिया	
	निष्पादक बजट और कार्यक्रम बजट (भारत व ब्रिटेन)	
	वित्त पर संसदीय नियन्त्रण (वैधानिक व प्रशासनिक)	
इकाई – 3	प्रशासनिक व्यवहार– प्रशासनिक संस्कृति, प्रशासनिक	
	भ्रष्टाचार, प्रशासनिक सुधार, सूचना का अधिकार	
इकाई – 4	लोक शिकायत निवारण संस्थाएं :–	
	लोकपाल, लोकायुक्त, पंचायती राज संस्थाएं और	
	विकास की चुनौतियाँ, उदारीकरण का लोक प्रशासन पर प्रभाव	

विषय सूची

इकाई – 1	क्रमिक प्रशासन – नौकरशाही	पृष्ठ संख्या
	1.0 इकाई परिचय	8
	1.1 इकाई के उद्देश्य	9
	1.2 नौकरशाही	
	1.2.1 परिचय	10–11
	1.2.2 उद्देश्य	11
	1.2.3 नौकरशाही की व्याख्या तथा मैक्स वैबर	11–32
	1.2.4 निष्कर्ष	32–33
	1.2.5 मुख्य शब्दावली	33
	1.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न	33
	1.2.7 सन्दर्भ सूची	33–34
	1.3 मन्त्री लोक सेवक सम्बन्ध	
	1.3.1 परिचय	35
	1.3.2 उद्देश्य	35–36
	1.3.3 मन्त्री लोक सेवक सम्बन्ध	36–45
	1.3.4 निष्कर्ष	45–46
	1.3.5 मुख्य शब्दावली	46
	1.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न	46–47
	1.3.7 सन्दर्भ सूची	47
इकाई – 2	वित्तिय प्रशासन : बजट और बजट निर्माण	पृष्ठ संख्या
	2.0 इकाई परिचय	48–49
	2.1 इकाई के उद्देश्य	49
	2.2 वित्तिय प्रशासन : बजट और बजट निर्माण	
	2.2.1 परिचय	50–51
	2.2.2 उद्देश्य	51

2.2.3 वित्तिय प्रशासन : बजट और बजट निर्माण 51–70
2.2.4 निष्कर्ष 70–72
2.2.5 मुख्य शब्दावली 72
2.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 72
2.2.7 सन्दर्भ सूची 73

2.3 निष्पादक बजट और कार्यक्रम बजट

2.3.1 परिचय 74
2.3.2 उद्देश्य 74
2.3.3 निष्पादक बजट और कार्यक्रम बजट 74–84
2.3.4 निष्कर्ष 84–85
2.3.5 मुख्य शब्दावली 85
2.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 85
2.3.7 सन्दर्भ सूची 85–86

2.4 वित्त पर संसदीय नियन्त्रण

2.4.1 परिचय 87
2.4.2 उद्देश्य 87
2.4.3 वित्त पर संसदीय नियन्त्रण (वैधानिक व प्रशासकीय) 87–98
2.4.4 निष्कर्ष 98–99
2.4.5 मुख्य शब्दावली 99–100
2.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 100
2.4.7 सन्दर्भ सूची 100–101

इकाई – 3 प्रशासनिक संस्कृति, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, प्रशासनिक सुधार तथा सूचना का अधिकार

3.0 इकाई परिचय 102

3.1 इकाई के उद्देश्य 103

3.2 प्रशासनिक संस्कृति

3.2.1 परिचय 104

3.2.2 उद्देश्य 104
3.2.3 प्रशसनिक संस्कृति की व्याख्या 104–110
3.2.4 निष्कर्ष 111
3.2.5 मुख्य शब्दावली 111
3.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 112
3.2.7 सन्दर्भ सूची 112–113

3.3 प्रशासनिक भ्रष्टाचार

3.3.1 परिचय 114–115
3.3.2 उद्देश्य 115
3.3.3 प्रशासनिक भ्रष्टाचार की व्याख्या 115–137
3.3.4 निष्कर्ष 137–139
3.3.5 मुख्य शब्दावली 140
3.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 140
3.3.7 सन्दर्भ सूची 141–142

3.4 प्रशानिक सुधार

3.4.1 परिचय 143
3.4.2 उद्देश्य 143
3.4.3 प्रशासनिक सुधार की व्याख्या 143–182
3.4.4 निष्कर्ष 182–183
3.4.5 मुख्य शब्दावली 183
3.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 183
3.4.7 सन्दर्भ सूची 183–185

इकाई – 4 शिकायत निवारण संस्थान, पंचायत और उदारीकरण पृष्ठ संख्या

4.0 इकाई परिचय 186–187

4.1 इकाई के उद्देश्य 187

4.2 शिकायत निवारण संस्थान – लोकपाल एवं लोकायुक्त

4.2.1 परिचय 188–189
4.2.2 उद्देश्य 189
4.2.3 लोकपाल एवं लोकायुक्त 189–218

4.2.4 निष्कर्ष 219
4.2.5 मुख्य शब्दावली 219
4.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 219–220
4.2.7 सन्दर्भ सूची 220–221

4.3 पंचायती राज व्यवस्था और विकास

4.3.1 परिचय 222
4.3.2 उद्देश्य 222
4.3.3 पंचायती राज व्यवस्था और विकास 223–237
4.3.4 निष्कर्ष 237
4.3.5 मुख्य शब्दावली 238
4.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 238
4.3.7 सन्दर्भ सूची 238–240

4.4 उदारीकरण का लोक प्रशासन पर प्रभाव

4.4.1 परिचय 241
4.4.2 उद्देश्य 242
4.4.3 उदारीकरण का लोक प्रशासन पर प्रभाव 242–247
4.4.4 निष्कर्ष 247–250
4.4.5 मुख्य शब्दावली 250
4.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 250–251
4.4.7 सन्दर्भ सूची 251–252

इकाई 1

कर्मिक प्रशासन–नौकरशाही

1.0 इकाई परिचयः–

कर्मिक प्रशासन वर्तमान लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण चरण हैं। संगठनात्मक प्रशासन के नाते कर्मचारियों तथा संसाधनों का व्यवस्थित होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि आवश्यक संसाधनों ने मशीन, सामग्री, तकनीक, वित्त तथा श्रम शक्ति के माध्यम से विकास प्रशासन को द्वितिय विश्व युद्ध के बाद विकसित या विकासशील दोनों देशों में अलग दृष्टि से परिभाषित किया है। भारत के सन्दर्भ में मानव संसाधन मंत्रालय का इसमें विशेष योगदान कहा जा सकता है। विकसित राष्ट्रों ने इस पर 20वीं सदी के आरम्भ से ही सोचना प्रारम्भ कर दिया था। प्रशासन की सफलता कर्मचारियों को संतुष्ट किये बिना सम्भव नहीं है।

वर्तमान में जटिल होती सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक आर्थिक वातावरण में कुशल प्रशासनिक प्रक्रियाओं तथा संसाधनों की महता आवश्यक है। इसी संदर्भ में कर्मिक प्रशासन, समग्र लोक प्रशासन का केन्द्र बिन्दू बन गया है। कर्मिक प्रशासन (पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन) को सेवा–वर्गीय या स्टाफ प्रबन्ध, जनशक्ति प्रबन्ध के नाम से भी जाना जाता है। औद्योगिक संस्थानों में कर्मिक प्रशासन से सम्बन्धित प्रकरण 'कर्मचारी प्रबन्ध' था श्रम प्रबन्ध या औद्योगिक सम्बन्ध के नाम से भी जाना जाता है। कर्मिक प्रशासन को चाहे किसी भी नाम से पुकारें लेकिन सभी स्थानों पर कर्मिको की भर्ति प्रशिक्षण वर्गीकरण पदोन्नति वेतन भतें, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकास, आनुषंगिक लाभ, पेंशन, सेवानिवृति नौकरशाही परम्परा, मंत्री–लोक सेवक सम्बन्ध आदि का अध्ययन इसमें शामिल है। इस इकाई में हम विशेषतौर पर नौकरशाही तथा मंत्री–लोक सेवक सम्बन्धों पर चर्चा करेगें।

1.1 इकाई उदेश्य :–

1. विकासशील राष्ट्र के सन्दर्भ में भारत में मानव संसाधन मंत्रालय की गतिविधियों को जानना तथा राष्ट्र–विकास के सन्दर्भ में बदलते विकास प्रशासन की अवधारणा को जाँचना।
2. कर्मचारी प्रशासन के विभिन्न पहलूओं को जानना जैसे भर्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, नौकरशाही आदि।
3. भारत में नौकरशाही के उदय के कारणों को जानना तथा विशेष रूप से ब्रिटीश उपनिवेशक काल में इसमें आए बदलाव को देखना।
4. नौकरशाही के विभिन्न सिद्धान्तों को जानना।
5. मंत्री–लोक सेवकों के सम्बन्धों की ग्राहयता से जानना की किस तरह से एक दूसरें को प्रभावित करते है और साथ ही यह भी देखना की विकास यात्रा में इनके मधुर संबंध क्यों अत्यन्त आवश्यक हैं।
6. भारत में विकास प्रशासन सकारात्मक दृष्टि से आगे बढ़ रहा है, इस सन्दर्भ में मंत्री व लोक–सेवकों का सकारात्मक दृष्टिकोण क्यों आवश्यक है। राजनीतिक कार्यपालिका व वास्तविक कार्यपालिका की कार्य संस्कृति को भी जानना।

1.0

नौकरशाहीः सिद्धान्त, प्रकार, मैकस वेबर के विचार और उनके आलोचक

(Bureaucracy: Theories, Types, Max-Weber and His Critics)

1.2.1 परिचयः–

आज संगठन का प्रभुत्वशाली रूप नौकरशाही है। "नौकरशाही" शब्द का प्रयोग आमतौर पर नकारात्मक या बुरे अर्थ में किया जा सकता है, उसका अर्थ ऐसा संगठन समझा जाता है जो लाल फीता, अकुशलता और प्रभावहीनता से दबा है। वास्तव मैं इसकी उत्पत्ति एक तकनीकी शब्दावली के रूप में हुई जिसका अर्थ यह लिया जाता था कि यह प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए सामाजिक संगठन का एक रूप है। (अधिक विस्तार के लिए आगे का नौकरशाही पर अध्याय देखिये)। नौकरशाही तथ्य का सबसे अधिक व्यवस्थित अध्ययन जर्मनी के एक समाजशास्त्री **मैक्स वेबर (Max Weber) (1864-1920)** ने किया है।

संगठन (Verband) की उत्पत्ति और प्रकृति के सम्बन्ध में अपनी धारणा को वेबर (Weber) शक्ति और सत्ता पर आधारित करता है **वेबर** के अनुसार, शक्ति (Match) उस व्यक्ति के पास कही जा सकती है जो विरोध के बावजूद भी सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत अपनी इच्छा को लागू कर सकता है। यदि इस शक्ति का प्रयोग मानव–समूहों की संरचना के लिए किया जाये, तो यह शक्ति का एक विशेष उदाहरण होता है जिसे सत्ता (Harrschaft) कहते हैं। अतः वेबर शक्ति और सत्ता या 'प्रभुत्व' में भेद करता है। सत्ता या प्रभुत्व संगठन की उत्पत्ति का साधन होती है। संगठन के नियमों को वेबर ने प्रशासन का नाम दिया है। प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसके द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि कौन किसको आदेश देगा। अतः "सत्ता का प्रत्येक स्वरूप अपने आपको प्रशासन में प्रकट करता है और उसी के रूप में कार्य करता है।"

वेबर के अनुसार, सभी सत्ता विधिसंगत होती है, क्योंकि सदा ही आधार लोक–विश्वास संरचना पर होता है। लोगों में यह विश्वास होता है कि आज्ञापालन उचित था, क्योंकि आदेश देने वाले व्यक्ति में कोई पवित्र या उत्कृष्ट विशेषता थी। उस व्यक्ति की इस सत्ता को चमत्कारिक सत्ता (Charismatic Authority) कहते हैं। यदि उस आदेश का पालन पुरानी चिर स्थापित व्यवस्था की

मर्यादाओं को प्रति श्रद्धा के कारण किया गया हो, तो वह सत्ता परम्परागत (Traditional) कहलायेगा, तीसरी प्रकार की सत्ता कानूनी या वैधानिक सत्ता (Legal Authority) होती है, वेबर इसको विवेकशीलता का गुण कर रहा है जो कर्तव्य कानूनी नियमों और अधिनियमों में लिखे गये हैं।

वेबर का विचार था कि आदर्श नौकरशाही–संगठन व्यक्तियों और समूहों के परस्पर–सम्बन्धों में झगड़ों और स्वेच्छाचारिता को समाप्त करके सबसे अधिक प्रभावी तरीके से निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

वेबर के अनुसार नौकरशाही का अर्थ है– नियुक्त किए गए अधिकारियों की एक प्रशासनिक संस्था। वह नौकरशाही जो नियुक्त किये गये अधिकारियों की संस्था समझते थे जो एक निश्चित और भिन्न समूह होता है ओर जिसका कार्य और प्रभाव सभी प्रकार के संगठनों में देखा जा सकता है। **हर्बर्ट जी. हिक्स तथा सी. रे गुलिट** (C. Ray) नौकरशाही की व्याख्या इस प्रकार करते हैं: "यह विशिष्ट पदों का एकीकृत पदसोपान होता है जिनको व्यवस्थित नियमों के द्वारा परिभाषित किया गया होता है– यह एक अवैयक्तिक नित्याचर्या पर चलने वाली संरचना है जिसमें विधिवत सत्ता पद से जुड़ी होती है, न कि उस व्यक्ति के साथ जो उस पद पर काम करता है।

नौकरशाहियाँ सभी बड़े और जटिल संगठनों में पाई जाती हैं, चाहे वे संगठन राजनीतिक हों, चाहे धार्मिक, व्यापारिक, सैनिक शिक्षा–सम्बन्धी या कोई और। **उरविक** (Urwick) यह मानते हैं कि यदि मानवीय सहयोग की व्यवस्थायें एक निश्चित आकार से बड़ी हो जाती हैं, तो संगठन के नौकरशाही स्वरूप से बचा नहीं जा सकता, और वह है एक छोटे से मुट्ठी भर अनुयायियों के साथ नेता आमने–सामने का सम्बन्ध। इसी प्रकार **डीमोक** (Dimock) कहते हैं कि "जटिलता नौकरशाही को जन्म देती है। जब तक जीवन सरल रहता है, तब तक व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रत्यक्ष रहते हैं और संस्थान सरल रहते हैं, तब व्यक्ति भले ही सुस्त, उदासीन और आलसी हों, किन्तु तब आप कोई भी ऐसी संस्थात्मक स्थिति नहीं देखेंगे। जिसको ठीक–ठीक नौकरशाही कहा जा सकता हो। परन्तु एक जटिल वातावरण में संस्थान बड़े हो जाते हैं, सम्बन्ध अवैयक्तिक बन जाते हैं और संगठनों तथा कार्यविधियों को बड़े ध्यान से निर्धारित किया जाता है, इस सबका स्वाभाविक परिणाम होता है– नौकरशाही। अतः नौकरशाही आधुनिक सभ्यता का अनिवार्य तत्त्व जान पड़ता है।

1.2.2 उदेश्य :–

1. नौकरशाही को भारतीय कर्मिक प्रशासन के सन्दर्भ में समझना।

2. नौकरशाही को मुख्य तौर पर विकास प्रशासन की घुरी के रूप में जानना व विश्लेषित करना।
3. मैक्स वेबर के नौकरशाही पर दियें विचारों को मुख्य तौर पर समझना व उनके योगदान को समरण करना।
4. प्रशानिक विकास यात्रा के विभिन्न पद्धति को विकसित व विकासशील दोनों राष्ट्रों के सम्बन्ध में जानना।
5. नौकरशाही की कार्य संस्कृति का विस्तृत तौर पर समझना।

1.2.3 नौकरशाही :–

नौकरशाही के उदय के कारण

(Factors for the Rise of Bureaucracy)

नौकरशाही का विकास 18वीं शताब्दी में सबसे पहले पश्चिमी यूरोप के देशों में और उसके उपरान्त विश्व के अन्य देशों में हुआ। 20वीं शताब्दी में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंची, हालांकि कई राज्यों में मार्क्सवादी सिद्धान्त की विजय हुई जो इसको समाप्त कर देना चाहता है।

लॉस्की नौकरशाही के उदय को कई तत्वों के योगदान का परिणाम मानते हैं। प्रथम, यह कुलीनतंत्र की उपज के रूप में विकसित हुआ। इसके अपने इतिहास में कुलीनतंत्र में सक्रिय सरकार के लिए रूचि का अभाव देखा गया जिससे कई परिस्थितियों में सत्ता स्थायी अधिकारियों के हाथों में चली गई। द्वितीय, नौकरशाही का उदय सम्राट की इस इच्छा से भी माना जा सकता है, जबकि वे अपने व्यक्तिगत अधीनस्थ कर्मचारियों को रखना चाहता था जिनका प्रयोग कुलीन वर्ग में शक्ति के लिए बढ़ती हुई लालसा के विपरित किया जा सके। तृतीय, लोकतंत्र के उदय ने इसके विकास में दो तरीके से सहयोग दिया–

(क) उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी संसार में लोकतांत्रिक सरकार के उदय हो जाने से ऐसी व्यवस्था को बनाए रखने का संयोग समाप्त हो गया जिसमें अधिकारी पैतृक तथा स्थायी जाति बन सकते।

(ख) लोकतंत्र के साथ–साथ जो अन्य परिस्थितियां उत्पन्न हुई, उनके कारण यह अनिवार्य हो गया कि विशिष्ट सेवा का कार्य करने के लिए विशेषज्ञों का समूह होना चाहिए। चतुर्थ, आधुनिक राज्य का विशाल आकार और इसके उपलब्ध की जाने वाली सेवा का विस्तार इस बात को अनिवार्य बना देता है कि विशेषज्ञों का प्रशासन अवश्यम्भावी हो।

नौकरशाही के उदय पर मैक्स वैबर के विचार

(Max Weber on the Rise of Bureaucracy)

अतीत में भी नौकरशाही थी, जैसे कि प्राचीन मिस्र में, प्राचीन रोम और चीन के प्रशासनों में और तेरहवीं शताब्दी के अन्त से रोमन कैथोलिक चर्च में। किन्तु वे इतनी नौकरशाही नहीं थी, उनकी संख्या भी सीमित थी और वे केवल राज्य और चर्च के दायरे तक सीमित थी। योरोप में निरंकुशवाद के उदय और आधुनिकीकरण के साथ–साथ नौकरशाही विशद रूप में अधिक नौकरशाह बन गई, अधिक फैल गई और राजनीतिक दल भी नौकरशाही रूप धारण कर गये। वैबर का विचार है कि नौकरशाही का उदय उनके कारणों से हुआ–

1. **मुद्रा–अर्थव्यवस्था की स्थापना (The Creation of Money Economy):** यह प्रक्रिया तब शुरू हुई जब यूरोप मध्ययुग से निकला। वैबर मुद्रा–व्यवस्था को नौकरशाही के उदय की अनिवार्य शर्त नहीं मानता, क्योंकि मिस्र, रोम और चीन जैसे देशों ने नौकरशाहियां उस समय भी थी जब जब मुआवजा पैसे के रूप में दिया जाता था। किन्तु इससे नौकरशाहों को पक्की भरोसे योग्य आमदनी का विश्वास नहीं था। नौकरशाहों को भूमि का अनुदान देने की व्यवस्था थी तथा/अथवा निश्चित प्रदेशों में से कर, राजस्व इकट्ठा करने के परिणामस्वरूप नौकरशाहियां विघटित होकर सामन्ती तथा अर्ध–सामन्ती जागीरों का रूप धारण कर गई।
2. **पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का उदय (The Emergency of Capitalist Economy):** मुक्त व्यापार की व्यवस्था जो पूंजीवाद का सार है, ने नौकरशाही को बढ़ावा दिया। इस कारण ऐसी आवश्यकताओं ने जन्म लिया जो केवल नौकरशाही संगठल ही पूरा कर सकते थे। पूंजीवाद को अपने ही हितों के लिए शक्तिशाली और सुव्यवस्थित सरकारों की आवश्यकता होती है और वह इनका प्रोत्साहन करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पूंजीवाद को ऐसी सरकार की आवश्यकता होती है और वह ऐसी सरकार को प्रोत्साहन देता है जो नौकरशाही संगठनों पर आधारित हो। केवल सरकारें ही नहीं, अपितु स्वयं पूंजीवादी उपक्रम भी संगठन के नौकरशाही सिद्धान्तों का अनुकरण करने लगे, क्योंकि इनमें विवकेशीलता और पूर्व विचारशीलता की आवश्यकताएं होती हैं जो पूंजीवाद की प्रमुख विशेषताएं हैं।
3. **पश्चिमी समाज में तर्कशक्ति की ओर अधिक परिवेष्ठित प्रवृति (More Encompassing Trend Towards Rationality in Western Society):** आधुनिक पश्चिम समाज ने कई क्षेत्रों में बुद्धिवाद के विकास का अनुभव किया। उदाहरण के तौर पर इस प्रवृत्ति को प्रोटेस्टेन्ट नैतिक नियमों में स्पष्ट देखा जा सकता था जिसने कठिन परिश्रम और स्वअनुशासन को प्रोत्साहित किया। यही नैतिक पूंजीवाद की भावना का आधार था जिसमें समय और प्रयत्नों का विवेकपूर्ण ढ़ंग से लगाने के लिए कहा जाता था, ताकि अधिक–से–अधिक उपलब्धियां और मुनाफा हो। इसके उपरान्त यही भावना बुद्धिवादी पूंजीवाद के विकास के लिए एक पूर्व शर्त बन गई। दूसरे क्षेत्रों जैसे विज्ञान के विकास और शासन में भी तर्कशक्ति की ओर यही सामान्य प्रवृत्ति स्पष्ट तौर पर देखी गयी।

4. **यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि (Growth of European Population):** जनसंख्या के विकास से प्रशासनिक कार्य बढ़ जाते हैं जिनका सामना केवल बड़े–बड़े संगठनों द्वारा किया जा सकता है। दूसरी ओर बड़े–बड़े संगठनों में नौकरशाही आकार प्राप्त कर लेने की प्रवृत्ति होती है।
5. **लोकतंत्र (Democracy):** लोकतांत्रिक संस्थानों के विकास का दूसरा पक्ष तथा सामन्तों और कुलीन तत्वों के परम्परागत शासन का विरोध करना था उसको समाप्त करने में सहायता देना और साथ ही शिक्षा को प्रोत्साहन देना तथा ज्ञान और शिक्षा के आधार पर पदों पर नियुक्तियों का समर्थ करना।
6. **जटिल प्रशासनिक समस्याओं की उत्पत्ति (Emergence of Complex Administrative Problems):** सरकारों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों की जटिलता बड़े पैमाने पर नौकरशाही संगठनों को पैदा करती है। यही प्राचीन मिस्र में हुआ। वह देश जिसने इतिहास में पहली बार नौकरशाही का बड़े पैमाने पर संगठन हुआ जब इसको नहरों का निर्माण करने और नियंत्रित करने जैसे जटिल कार्य करने का सामना करना पड़ा। आधुनिक समय में यूरोप में केन्द्रीयकरण पर आधारित नए राज्यों को कई ऐसे प्रशासनिक कार्यों से जूझना पड़ा जिनको अतीत में कोई भी नहीं जानता था। ने केवल उनको पहले से अधिक बड़े प्रदेशों और जनसमूहों पर नियंत्रण करना पड़ा, अपितु उनको इस प्रकार की सामाजिक सेवाएं प्रदान करनी पड़ी जो पहले कोई राज्य नहीं करता था।
7. **संचार के आधुनिक रूप (Modern Forms of Communication):** संचार के आधुनिक साधनों के कारण अधिक जटिल और प्रभावी प्रकार के प्रशासन अर्थात् नौकरशाही की आवश्यकता हुई और इसके विकास में आसानी भी हुई।

वैबर (Weber) का कथन है कि नौकरशाही का विकास इसलिए हुआ कि यह अपनी विवकेशीलता और तकनीकी उच्चता के कारण आधुनिक जटिल समाज की समस्याओं और कार्यों का सामना करने के लिए ये सबसे अधिक उचित यंत्र सिद्ध हुआ है। इसी उच्चता के कारण नौकरशाही अधिक व्यापक बन गई और भविष्य में इसका और भी अधिक व्यापक बन जाना लाजिमी है।

नौकरशाही के प्रकार

(Types of Bureaucracy)

नौकरशाही का स्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक तत्वों से प्रभावित होता है। इतिहास के विभिन्न चरणों में नौकरशाही ने तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभाव में आकर अपना रूप तथा आकार बदला। मॉर्सटिन मार्क्स (Morstein Marx) मोटे तौर पर नौकरशाही को चार श्रेणियों में बाँटा है– अभिभावक नौकरशाही, जातीय नौकरशाही, प्रश्रय या

संरक्षण नौकरशाही तथा योग्यता पर आधारित नौकरशाही। अब हम इन चारों प्रकारों का विवेचन करेगें।

1. **अभिभावक नौकरशाहीः** प्लेटो द्वारा वर्णित अभिभावकों ने अपने कार्यों में जनहित को सर्वोपरि रखा है। उन्हें समुदाय के न्याय तथा जनहित का संरक्षक माना जाता था। इन अभिभावकों को उनकी शिक्षा के आधार पर चुना जाता था। इस प्रकार नौकरशाही चीन में 960 ईसवीं से पहले तथा उसमें 640 से 1740 ईसवीं के बीच विद्यमान थी। चीन की सरकार की सभी गतिविधियाँ प्लेटो के सिद्धान्तों के अनुरूप थी, यद्यपि उन पर चीनी विचारक कन्फयूशियस के न्याय युक्ति संबंधी विचारों का प्रभाव था। अधिकारियों का मुख्य कर्तव्य लोगों के सामने एक आदर्श जीवन का उदाहरण पेश करना था। उनका चुनाव उनकी विद्धत्ता के आधार पर होता था तथा उनको सही आचरण के लिए शास्त्रीय पद्धति के आधार पर परिक्षण दिया जाता था। उन अभिभावकों की आशा की जाती थी कि वे अपने में नैतिक सहनशीलता विकसित करें जिससे वे न्याय युक्ति के आधार पर अपनी सत्ता का प्रयोग कर सकें।

   अभिभावक–नौकरशाही निरंकुशता को आदर्श मानती हैं इसीलिए यह परम्परावादी एवं रूढ़िवादी बन गयी है। यह भी सम्भव होता है कि यह जनता के मामलों तथा तत्कालीन राजनैतिक समस्याओं में अपने को अलग रखे, इसीलिए यह जनमत की अवेहलना करती है, और निरंकुश बन जाती है।

2- **जातीय नौकरशाहीः** यह नौकरशाही सत्तारत व्यक्तियो के वर्गीय संबंधों से पैदा होती है। इसके अन्तर्गत पदाधिकारियों की नियुक्ति केवल एक ही वर्ग से होती है इसका अर्थ यह हुआ कि केवल उच्च अथवा जाति से संबंधित लोग की लोक सेवाओं की ओर आकृष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए भारत में केवल ब्राह्मण या क्षत्रिय ही उच्चाधिकारी बन सकते थे। एफ. एम. मार्क्स का विचार है कि जातीय नौकरशाही एक अन्य रूप में प्रस्फुटित होती है, अर्थात् उच्च पदों के लिए योग्यता को जातिगत प्राथमिकताओं से जोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड में लोक सेवाओं के पदो ंके लिये कुलीन वर्ग के लोगों को प्राथमिकता दी जाती थी। भारतीय प्रशासनिक सेवा के बारे में टिप्पणी करते हुए एप्पलवी (Appleby) ने कहा है कि इस सेवा के पदाधिकारी विभिन्न विशेष वर्गों में बॉटे जाते हैं और उनको विशेष सेवाएँ विशेष रूपों में उपलब्ध कराई जाती हैं। यह अधिकारी पद, वर्ग, पदवी एवं सेवाओं के वर्गीकरण के आधार पर व्यवस्थित किये जाते हैं। चूंकि नौकरशाही में उच्च बौद्धिक स्तर की आवश्यकता होती है। इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है कि उच्च वर्ग एवं जाति के लोग ही उसमें आ सकते हैं। विभिन्न सेवाओं के लिए अलग–अलग सामाजिक स्तर बनाए जाते हैं। यह देखा गया है कि लोक सेवक अपनी गतिविधियों द्वारा अपनी जातीयों के लिये अधिक कार्य करने की कोशिश करते हैं। जातीय नौकरशाही के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं– प्रारम्भिक रोमन–साम्राज्य के अन्तर्गत लोक

सेवाए; मेजी (Meiji) संविधान के अन्तर्गत जापानी लोक सेवाएँ, 1950 के दशक में फ्रांसीसी लोक सेवाएँ।

3. **प्रश्रय अथवा संरक्षण नौकरशाहीः** इस प्रकार की नौकरशाही को पद पुरुस्का व्यवस्था (Spoil-system) भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत संरक्षण या प्रश्रय को राजनैतिक नियंत्रण के एक साधन के रूप में देखा जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मन्त्रियों या चुने हुए प्रतिनिधियों के रक्षितों को लोक सेवाओं के नामजद किया जाता है। सार्वजनिक पदों को उनके समर्थकों में व्यक्तिगत या राजनैतिक इनामों की तरह बाँटा जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले ब्रिटेन में इस व्यवस्था ने कुलीन वर्ग के लोक सेवाओं में प्रवेश करने में मदद दी। अमरीका को संरक्षण–नौकरशाही का जनक माना जाता है। वहाँ पर यह माना जाता था कि किसी को लोक सेवाओं में नियुक्ति का दूसरे से अधिक अधिकार नहीं है।

   इसीलिए अपने व्यक्तियों को नियुक्त करके संरक्षण प्रदान किया जा सकता था, लेकिन कालांतर में संरक्षण नौकरशाही की निंदा होने लगी क्योंकि इसमें निम्न दोष आ गए थेः

   क. योग्यता का अभाव
   ख. अनुशासनहीनता
   ग. अधिकारियों का लालचीपन
   घ. दोषपूर्ण पद्धतियाँ
   ड़. पक्षपात
   च. सेवा भवन का अभाव

4. **योग्यता पर आधारित नौकरशाहीः** हमने अब तक नौकरशाही के जितने प्रकारों का विवरण दिया है, उनके दोषों की प्रतिक्रिया से ही योग्यता पर आधरित नौकरशाही का जन्म हुआ। इस प्रकार की नौकरशाही में नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है और निष्पक्ष मापदण्डों को प्रयोग किया जाता है। एक बार प्रवेश के बाद पदवी तथा स्थायित्व सुनिश्चित रहते हैं। आधुनिक युग में नौकरशाही के अन्य प्रकारों की तुलना में योग्यता पर आधारित नौकरशाही प्रशासनिक व्यवस्था के ऊपर राजनैतिक नियंत्रण पर जोर देती है। इस नौकरशाही को अन्य प्रकार की नौकरशाही से अधिक प्रभावी माना जाता है, क्योंकि यह प्रशासनिक मामलों में तार्किकता को महत्त्व देती है।

नौकरशाही के दोष

जैसा पहले बता चुके हैं नौकरशाही के नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही रूप हैं। आलोचकों का मत है कि नौकरशाही संगठन की एक बीमारी है। यह उन प्रवृतियों को जन्म देती है जो कि इसकी उपलब्धियों को नकार सकती है। उदाहरण के लिए पद सोपान व्यवस्था नौकरशाही में प्रारम्भिक कदम उठाने की शक्ति को निरूत्साहित करती है। यह

संगठन को विभिन्न स्तरों में बाँटती है और लालफीताशाही एवं अकुशलता को पनपने में मदद करती है। इसकी आलोचना इसलिए भी की जाती है क्योंकि यह लोक सेवकों के व्यवहार एवं कार्यकुशलता पर विपरित प्रभाव डालती है। इस प्रकार जहाँ एक ओर नौकरशाही को आधुनिक प्रशासन एवं तर्कसंगत ढाँचे का पहलू माना जाता है, वहीं दूसरी ओर इसमें कुछ नकारात्मक बातें भी हैं। इसकी आलोचना इसलिए भी कि जाती है कि यह जनता की मांगों की अवहेलना करती है। अनावश्यक औपचारिकता, अपने को बढ़ावा देने, अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करने तथा दकियानुसी व्यवहार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। जो अन्य दोष इसमें है वे इस प्रकार हैं– अहंकार, आत्मसंतोष, मात्र नियम एवं नित्यक्र (Routine) कठोरता, प्रशासनिक व्यवहार में मानवीय व्यवहार की उपेक्षा तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रति उदासीनता।

नौकरशाही के सिद्धांत

(Theories of Bureaucracy)

जब से आधुनिक राज्य–व्यवस्था में नौकरशाही का उदय हुआ है और शक्ति पर इसकी पकड़ बढ़ गई है और नागरिकों के जीवन पर इसका नियंत्रण बढ़ता जा रहा है, तब से कई विचारकों और समाजशास्त्रियों ने विभिन्न पहलुओं से इस पर विचार किया है। अतः यह लाभदायक होगा कि इस विषय पर जो विभिन्न विचारधाराओं के प्रतिनिधियों ने विचार व्यक्त किये हैं, उन पर यहाँ संक्षेप में विचार किया जाये।

नौकरशाही का मार्क्सवादी दृष्टिकोण

(Marxist View of Bureaucracy)

कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने बहुत पहले सैन्ट साइमन (Saint Simon) ने नौकरशाही के संबंध में कहा था कि "नौकरशाही में वे अधिकारी आते हैं जो शासित लोगों के हितों की दृष्टि से नहीं, अपितु अपने हितों के लिए शासन करते हैं। वे अपने लिए उच्च वेतन का प्रयास करते हैं और केवल व्यर्थ ही नहीं, अपितु अयोग्य परजीवी लोगों की बहुत बड़ी बढ़ती हुई विस्तृत भीड़ भी है। चूंकि उत्पादकों के रूप में उनकी आवश्यकताएँ और इच्छाएँ एक जैसी हैं, किन्तु वे स्वयं कुछ उत्पादन नहीं करते। वे लोग अनिवार्य रूप से दूसरों के कार्य पर जीवित रहते हैं, या उनको देना पड़ता है अथवा छीन लेते हैं। संक्षेप में वे बेकार हैं, अर्थात् चोर हैं।

नौकरशाही पर कार्ल मार्क्स के विचार

(Karl Marx On Bureaucracy)

कार्ल मार्क्स ने "नौकरशाही" शब्द का प्रयोग अपमानजनक तरीके से किया है। सभी मार्क्सवादी यह मानते हैं कि नौकरशाही पूँजीवादी राज्य के साथ बंधी हुई है, अतः यह एक बूर्जुआ घटना है। **हीगल** के विपरित, **मार्क्स** इस बात में विश्वास नहीं रखता था कि राज्य समाज के सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार नौकरशाही एक सर्वव्यापी अवस्था में नहीं है, वह राज्य के भीतर एक विशेष तंग समाज है जो सामान्य हितों का नहीं अपितु अपने ही हित की रक्षा करता है। यह एक सामाजिक शक्ति है जिसके माध्यम से पूँजीवाद और बूर्जूआ के हितों को लागू किया जाता है– नौकरशाही का उदय और इसका निरन्तर बने रहना। अतः पूँजीवादी राज्य की प्रकृति के विस्तृत विषय के साथ यह अभेद रूप से जुड़ी है। नौकरशाही का कार्य यह है कि वह वास्तविक शक्ति–सम्बन्धों को छिपाए और शासकों और शोषितों के बीच सामान्य हित का झूठा पर्दा खड़ा करे।

मार्क्स का यह भी विश्वास था कि नौकरशाही लोगों में अनन्यता का भाव पैदा करने में योगदान देती है। यह एक स्वतंत्र और दमनकारी शक्ति बन जाती है जिसका आभास अधिकतर लोगों में होता है। यह एक गुप्त तथा अंतरित इकाई जान पड़ती है जो यद्यपि उनके जीवन को नियंत्रित करती है और जिस पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता और यह उनकी समझ से बाहर होती है। यह एक प्रकार का देवत्व है जिसके सामने व्यक्ति निःसहाय तथा घबराया हुआ महसूस करता है।

मार्क्स का कहना था कि राज्य तथा इसकी कार्यकारिणी यंत्र है जिनके माध्यम से शासक वर्ग अपनी शक्ति को प्रकट करता है। नौकरशाही वर्ग–भेदों को सुदृढ़ बनाने के कार्य में योगदान देती है और शासक वर्ग की शक्ति का समर्थन करती है। **मार्क्स** इस बात पर बल देते थे कि नौकरशाही का उदय बाहरी तथा विकृत सामाजिक वर्गीकरण का परिणाम है। भले ही यह कितनी ही स्वतंत्र क्यों न दिखाई देती हो, यह समाज के भीतर वर्गीकरण पर दो तरीके से आश्रित होती है– (1) यह समाज और राज्य के बीच स्पष्ट पृथकता पर आश्रित होती है जिसके बिना इसका कोई अस्तित्व, कारण अथवा प्रयोजन नहीं रहता। यह समाज और संस्थानों के भीतरी वर्गीकरण की वास्तविकता पर आधारित है। इस सामाजिक वर्गीकरण में प्रत्येक वर्ग अपने विशेष हितों की ही देखभाल करता है। **मार्क्स** के विचारों में वर्गपूर्ण समाजों में नौकरशाही स्वयं एक वर्ग नहीं है यह वर्गों का नौकर है जिसका अपना मूल आधार नहीं, किन्तु जो अंततः शासक वर्ग के अधिनस्थ होता है। पूँजीवाद समाज में ये वर्ग बूर्जुआ अथवा मध्यमवर्ग होता है।

नौकरशाही अपने सभी कार्यों को गुप्त रखती है। यह गोपनीयता भीतरी पदसोपान आकर बाहरी समाज में अपनी प्रकृति से जब यह बाहरी संसार के साथ परस्पर क्रिया करती है, के द्वारा बनाए रखती है। अनिवार्य रूप से इसका संबंध चालाकी से काम निकालने का है।

केवल एक ही बार जिसके लिए **मार्क्स (Marx)** नौकरशाही की प्रशंसा करते हैं, वह है इसके द्वारा राष्ट्रों के केन्द्रीकरण में निभाई गई भूमिका।

मार्क्स (Marx) इस पक्ष में नहीं थे कि पूर्व की क्रांतियों की भान्ति श्रमिक–वर्ग नौकरशाही पर अपना नियंत्रण स्थापित करे, अपितु वे इस पक्ष में थे कि श्रमिक–वर्ग नौकरशाही संस्थान को ही नष्ट कर दे।

मार्क्स (Marx) ने इस बात को पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया कि क्रांति के युग में नौकरशाही की स्थिति और भूमिका क्या होगी। साम्यवादी समाज के स्थापित हो जाने पर सच्चे लोकतंत्र का विकास हो सकता है। साम्यवादी समाज में सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त कर दिया जाएगा। इससे शोषण तथा सामाजिक वर्ग समाप्त हो जाएँगे। क्रांति के उपरान्त के समाज में केवल राज्य का लोप हो जाएगा। जब राज्य पुलिसमैन के रूप में समाप्त हो जाएगा, तो कार्यों की संख्या में भी हो जाएगी और सार्वजनिक शक्ति के द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति में पूर्ण परिवर्तन आ जाएगा। तब जनता को अभिमानी, पाशविक तथा दमनकारी नौकरशाही की आवश्यकता नहीं रहेगी।

लेनिन के नौकरशाही पर विचार

(Lenin on Bureaucracy)

लेनिन (Lenin) **मार्क्स** (Marx) से सहमत थे कि नौकरशाही परजीवी है और बूर्जुआ समाज के साथ सम्बन्धित है। उनका कहना था कि दो संस्थान राज्य–रूपी मशीन के अत्यधिक तत्त्व हैं– नौकरशाही तथा स्थायी सेना। "नौकरशाही तथा स्थायी सेना बूर्जुआ समाज के शरीर पर परजीवी हैं– वह परजीवी जिसकी रचना इस समाज के भीतरी विरोधाभासों के कारण होती है। यह वह परजीवी है जो इसके जीवन के सभी छिद्रों को बन्द कर देती है।

लेनिन (Lenin) यह मानते हैं कि नौकरशाही जैविक तौर से पूँजीवादी राज्य के साथ बँधी हुई है। इसको विश्लेषण की एक स्वतंत्र इकाई नहीं समझा जा सकता। नौकरशाही के द्वारा किसी भी ऐसी क्रांति की कल्पना नहीं की जा सकती जो शासक वर्ग के आधार पर और जड़ों पर आक्रमण करती हो। **लेनिन** (Lenin) लिखते हैं कि "नौकरशाही बूर्जुआ के सबसे अधिक विश्वसनीय नौकर हैं जो इसके साथ हजारों धागों से जुड़े हुए हैं। नौकरशाह निष्पक्ष नहीं हो सकते, श्रमिक वर्ग के प्रति मित्रतापूर्ण होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता; अपनी सामाजिक स्थिति–सम्बन्धों तथा पर्यावरण के कारण वह अनिवार्य रूप से बूर्जुआ पक्ष का समर्थ करेंगे। वह श्रमजीवी राज्य के आदेशों का पालन करने के लिए पूर्णतया आयोग्य है। उनको नौकरशाही पर एतराज इसलिए था, क्योंकि नौकरशाह एक विशेष सुविधा–प्राप्त समूह है जिनको उच्च बूर्जुआ स्तर पर उच्च वेतन वाले पद प्राप्त होते हैं और इसलिए भी कि

पुलिस तथा नौकरशाही जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होती और इनको जनता के ऊपर समझा जाता है।

क्रांति के उपरान्त नौकरशाही का क्या बनेगा? लेनिन की मूल धारणा यह थी कि राजनीतिक शक्ति को जीत लेने के उपरान्त श्रमिक पुराने नौकरशाही यंत्र को नष्ट कर देंगे। वह इसकी बुनियादों तक इसको तोड़ डालेंगे और इसको धराशायी कर देंगे।

किन्तु उनको इस बात का आभास था कि समाजवादी समाज का प्रबन्ध करने के लिए भी किसी–न–किसी प्रशासनिक यंत्र की जरूरत होगी। उनका विचार था कि श्रमिक पुराने उपक्रम के स्थान पर नया बना लेंगे। इस बात के प्रयत्न किए जाऐगें कि नए श्रमिकों को नौकरशाह बनने से रोका जा सके। इस दिशा में **मार्क्स** (Marx) तथा **एंजिल्स** (Engles) ने कुछ कार्य करने के सुझाव पेश किए थे–

1. केवल चुनाव ही नहीं, अपितु किसी भी समय वापस बुलाने या पद से हटाने की व्यवस्था होगी;
2. किसी का वेतन श्रमिक के वेतन से अधिक नहीं होगा;
3. सभी के द्वारा नियंत्रण और निरीक्षण को तुरन्त लागू किया जाएगा, ताकि कुछ समय के लिए सभी नौकरशाह बन जाएँ और इसलिए कि कोई भी नौकरशाह न बन सके। **लेनिन** (Lenin) ने बार–बार कहा कि नौकरशाहों की अपेक्षा श्रमिक तथा किसान अधिक अच्छी प्रकार शासन चलाएगें। पुरानी राज्य–शक्ति के कार्यों को इतना सरल बना दिया जाएंगे, ताकि कोई भी साधारण श्रमिक कार्यकर्ता का वेतन लेकर उनको आसानी से कर सके। इन कार्यों से न विशेषाधिकारों की प्रत्येक परछाई पर सरकारी शान–शौकत की किसी भी समानता को हटा देना जरूरी होगा।

मार्क्स के वितरित **लेनिन** के सामने 1917 के उपरांत रूस में साम्यवादी सरकार का नेता होने के नाते समाजवादी पुननिर्माण की यथार्थ समस्याओं से जूझने का कार्य था। यद्यपि वे इस बात का दावा करते थे कि हमने नौकरशाही के विरूद्ध लड़ाई में जो कार्य किया है, किसी भी अन्य राज्य ने नहीं किया था। हमने इसको इसकी बुनियादों तक नष्ट कर दिया है। किन्तु फिर भी वह इस बात से जागरूक थे कि ये कार्य बहुत मुश्किल है। इस यंत्र के बिना नई सरकार भी काम नहीं कर सकती थी, जैसा कि उन्होंने एक बार कहा, सरकार की प्रत्येक शाखा ऐसे यंत्र की मांग उत्पन्न करती है। वे सोवियत समाज में इंजीनियरों और अन्य विशेषज्ञों की आवश्यकता को स्वीकारते थे और उन्होंने कहा, यही वर्कशापों को चलाना जानते हैं, कोई और दूसरा नहीं जानता, कोई और दूसरी ईंट नहीं है जिससे निमार्ण किया जा सकता हो। यहाँ तक कि उन्होंने बूर्जुआ विशेषज्ञों के लिए अधिक अच्छा सलूक और उच्च

वेतन देने के लिए संघर्ष किया जो वेतन मजदूरों और यहाँ तक कि पार्टी नेताओं के वेतन से भी अधिक था।

यह स्पष्ट है कि एक मार्क्सवादी सिद्धान्तवादी होने के नाते **लेनिन** ने नौकरशाही पर अपने जो विचार बताए, उनमें तथा राज्य का प्रशासन चलाने के कार्य में लगे हुए सोवियत सरकार के नेता के विचारों में विरोधाभास था। उन्होंने यह कहकर विरोधाभास को दूर करने का यत्न किया कि नौकरशाही के भूतपूर्व कार्य जबकि वे बूर्जुआ वर्ग के साधन के रूप में काम कर रही थी, समाप्त हो गए हैं, किन्तु नौकरशाही व्यवस्था के प्रभाव अभी बचे हुए हैं। **लेनिन** जानते थे कि सोवियत रूस में लोक–कर्मचारियों की बढ़ती हुई संख्या एक बड़ी नौकरशाही का रूप धारण कर रही है और समाजवादी क्रांति इसको समाप्त नहीं कर पाई है। उन्होंने इस कठिनाई का स्पष्टीकरण यह कहकर दिया कि नौकरशाही को तभी पराजित किया जा सकता है यदि समूचे लोगों को राज्य के प्रशासन में भाग लेने के लिए जुटाया जाए। नौकरशाही को पराजित कर दिया गया है, शोषकों को समाप्त कर दिया गया है। किन्तु लोगों को सांस्कृतिक स्तर को ऊपर नहीं उठाया जा सका। अतः नौकरशाही अपने पुराने पदों पर आज भी लगे हुए है। इनको तभी जबर्दस्ती हटाया जा सकता है यदि श्रमिक–वर्ग और किसानों को इतने बड़े स्तर पर संगठित किया जाए जो इससे पहले नहीं किया गया।

नौकरशाही एक नए वर्ग के रूप में

(Bureaucracy as a New Class)

ट्राटस्की के विचार (Trotsky's Views)

ट्राटस्की इस मार्क्सवादी विचारधारा से सहमत है कि नौकरशाही शासनकर्ता बूर्जुआ वर्ग के हितों का पालन करती है। 1923 के उपरांत उन्होंने जो लेख लिखे (जैसे उनकी पुस्तक The Revolution Betrayed) उनमें नौकरशाही ही उनके ध्यान का मुख्य केन्द्र थी। उन्होंने कहा कि नौकरशाही का होना प्रत्येक वर्गशासन की विशेषता होती है। इसकी शक्ति प्रतिबिम्बित प्रकार की होती है। नौकरशाही बाध्यकारी रूप से शासन करने वाले अधिक वर्ग के साथ बँधी हुई होती है जो इस वर्ग की सामाजिक जड़ों से अपना प्राप्त करती है और इसी वर्ग के साथ ही यह अपने आपको कायम रखती है या इसके साथ की गिरती है। नौकरशाही एक साधन या यंत्र है जो शासक वर्ग का किराए का नौकर है और जिसको प्रत्येक वर्ग–समाज में देखा जा सकता है। उनका विश्वास था, चूंकि नौकरशाही बूर्जुआ राज्य के साथ जुड़ी हुई है, ऐसे राज्य के विरूद्ध श्रमिक क्रांति ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न कर देगी जो नौकरशाही को समाप्त करने के लिए अनिवार्य होती है।

ट्राटस्की यह मानते थे कि नौकरशाहीवाद एक सामाजिक घटना है। यह लोगों और वस्तुओं के प्रशासन की एक निश्चित व्यवस्था है। यह एक विशिष्ट अभिनिर्धारिणीय सामाजिक स्तर अर्थात् नौकरशाही का कार्य करने का ढ़ंग है, व्यवहार करने के ठेठ तरीके और एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक बनावट है। उन्होंने नौकरशाहीवाद के फैलने के विरूद्ध काम किया जो कि अतीत के वर्षों में संयोजित प्रशासनिक आचार–रूपों और कार्य–पद्धतियों को पार्टी को सौंप देने का परिणाम था।

ट्राटस्की के अनुसार नौकरशाही केवल साम्यवादी समाज में ही लुप्त हो जाएगी जहाँ न कोई वर्ग–भेद रहेंगे और न शोषण। यह निरथरर्त्राक या फालतू बन जाएगी। यह समाज में लुप्त हो जाएगी और प्रशासनिक कार्य अपनी शोषक प्रकृति को छोड़ देंगे। नए समाज में प्रशासनिक व्यवस्था वस्तुओं के प्रशासन का कार्य करेंगी, न कि लोगों के प्रशासन का जैसे कि बूर्जुआ और नौकरशाही में होता है।

1930 के उपरान्त ट्राटस्की इस बात पर बल देते रहे कि अक्टूबर क्रांति के साथ विश्वासघात किया गया है, यह विश्वासघात स्वार्थी नौकरशाह वर्ग के द्वारा किया गया है जो श्रमिक वर्ग के सच्चे संरक्षक बोलशेविक पार्टी को नष्ट करने में सफल हुआ है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वे नौकरशाहीवाद के फैलने के विरूद्ध कार्य करते रहे। वह नौकरशाही के तानाशाही के विरूद्ध थे। उनको इस बात का दृढ़ विश्वास था कि व्यावसायिक नौकरशाही के विशेषज्ञ सुविधा–प्राप्त निश्चित समूह के साथ–साथ राज्य के ढाँचे को भी अंततः समाप्त कर दिया जाएगा। किन्तु अंतरिम समय में नौकरशाही को रखना जरूरी है। अपर्याप्त संसाधनों के लिए संघर्ष में मध्यस्थता करने, अधिकतम उत्पादन को प्रोत्साहित करने और जब तक अपवाद तथा अभाव मौजूद है, विभाजन को नियंत्रित और रखवाली करने के लिए इसकी आवश्यकता है; और जब तक इन कार्यों को करने की आवश्यकता है, वेतन–प्रलोभन जैसे पूंजीवादी तत्त्वों को रखना पड़ेगा, ताकि अधिक काम करने के लिए नौकरशाहों को उत्साहित किया जा सके।

एक सच्चे मार्क्सवादी होने के नाते **ट्राटस्की** इस विचार पर डटे रहे कि नौकरशाही एक स्वतंत्र वर्ग नहीं है, यद्यपि ऐसा हो जाने का भय, उनको कभी–कभी रहता था। यदि सोवियत संघ में प्रभुत्वकारी नौकरशाही एक नया शासक वर्ग है, तो श्रमिक वर्ग को वंचित कर दिया गया है और यह एक नए प्रकार के शोषक समाज का अस्तित्व कायम हुआ है। उन्होंने कहा, यदि वोनापार्टिस्ट कुड़ा–कर्कट एक वर्ग है तो इसका अर्थ यह हुआ कि गर्भपात नहीं, अपितु इतिहास का एक सोने योग्य बच्चा है। यदि इसकी लूटमार की परजीविता शब्द के वैज्ञानिक अर्थ में शोषण है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि नौकरशाही का शासक वर्ग के रूप में एक एतिहासिक भविष्य है जो किसी अर्थव्यवस्था के लिए अनिवार्य है। **ट्राटस्की** रूस में स्टालिन के शासक के आलोचक थे और वे मानते थे कि बूर्जुआ समाज को समाजवादी समाज के ढाँचे में ढालने की प्रक्रिया में यह एक घृणामीय पूर्व स्थिति में लौटाना है। यदि दूसरी ओर

स्टालिन का शासन एक नया शोषक समाज का पहला चरण है तो नौकरशाही एक ना शोषक वर्ग बन जाएगी। सोवियत राज्य में इन प्रवृत्तियों के बावजूद और सोवियत नौकरशाही को बहुत राजनीतिक शक्ति, आर्थिक सुविधाएँ तथा बड़े पैमाने पर स्वतंत्रता प्राप्त होने के बावजूद भी वे इनको एक स्वतंत्र वर्ग नहीं मानते थे। उत्पादन में नौकरशाही की कोई स्वतंत्र भूमिका नहीं है और न ही उत्पादन के साधनों में इसकी कोई सम्पत्ति है। इसके पास न स्टॉक है, न पूंजीपत्र। प्रशासनिक पदसोपान के रूप में इसकी भर्ती–सहायता तथा पुनर्नवीनता अपने किसी भी विशेष सम्पत्ति–सम्बन्धों से स्वतंत्र होती है। कोई भी एक नौकरशाही राज्य को शोषक उपक्रम में अपने अधिकारों को अपने उत्तराधिकारियों के लिए नहीं छोड़ सकता..... यह एक वर्ग नहीं है। **ट्राटस्की** यह मानते थे कि केवल एक वर्ग ही स्वतंत्र ऐतिहासिक हो सकता है। निश्चित रूप से यह उस समाज को लूटती है जिसमें यह रहती है, किन्तु जब तक यह उन सम्पत्ति–सम्बन्धों के आधार पर ऐसा करती जो कि आधुनिक पादरी वर्ग, यह बूर्जुआ शोषण की भांति वर्ग–शोषण नहीं है।

नया वर्ग सिद्धान्तवादियों के दो दृष्टिकोण

(Two Angles of New Class Theorists)

मार्क्सवादी भले ही स्वीकार न करें, क्योंकि ऐसा करना **मार्क्स** का खंडन करना होगा, किन्तु नौकरशाही के तकनीकी दृष्टि से परिशिक्षित और विशेषीकृत समूह के रूप में उभरने को एक 'नया वर्ग' के रूप में देखा जाने लगा। एक ओर तो विश्वभर का नया वर्ग सिद्धान्तवादी है और दूसरी ओर समाजवादी विचारक।

संसारवर्ती नए वर्ग सिद्धान्तवादियों में अधिक प्रसिद्ध हैं **लौराट** (Laurat) **रिजी** (Rizzi) **बर्नाहम** (Burnaham) आदि–आदि। रिजी (Rizzi) उन पहले विचारों में से थे जिन्होंने यह तर्क दिया कि नौकरशाही उसी प्रकार सम्पत्ति की स्वामी है, जैसे कि पूंजीवादी होते थे। जब यह श्रमिकों का शोषण करती है, तो यह उसका स्वामी है और श्रमिक जो उत्पादन करते हैं, उसका अतिरिक्त मूल्य छीन लेती है; यद्यपि ऐसा व्यक्तिगत रूप में नहीं, किन्तु सामूहिक रूप में किया जाता है। रिजी (Rizzi) यह स्वीकार करते हैं कि स्वामीत्व का यह तरीका बूर्जुआ स्वामित्व के भिन्न है, किन्तु फिर भी यह स्वामित्व ही है। वक यह मानते हैं कि जो नौकरशाही रूप में शासन कर रही है, वह एक वर्ग की है और यह समाज के सभी क्षेत्रों पर प्रभुत्व रखती है। उनका आगे चलकर यह भी कहना है कि "रूस में नौकरशाही शासन ने पहले कम्युनिस्ट पार्टी और थर्ड इन्टरनेशनल (Third International) को बलिदान किया और फिर स्वयं लाल सेना (Red Army) का।" उनका कहना है कि इस प्रकार के बड़े कार्य गुटों, सलाहकारों अथवा क्लर्कों के द्वारा नहीं किए जा सकते; केवल वर्ग ही ये कार्य कर सकते हैं।

नए वर्ग के विचारकों की दूसरी श्रेणी साम्यवादी राज्यों के अन्दर सहमति रखने वालों की है। इनमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण युगोस्वालिया के **मिलोवन दिलास** (Milovan Djilas) है। **दिलास** (Djilas) ने नौकरशाहीवाद और नौकरशाही पर 1948 में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन में फूट पड़ जाने और 1949 के रजिक (Rajik) मुकदमें के उपरान्त सोवियत रूस पर युगोस्वालिया आलोवकों के रूप में लिखना शुरू किया था। उनका तर्क था कि सर्वहारा वर्ग का तानाशाही शासन दो में से एक दिशा में चल सकता है– या तो स्वयं समाप्त हो जाएगा अथवा नौकरशाही को विशेषाधिकार प्राप्त जाति में परिवर्तित करने ओर मजबूत करने की दिशा में, जो समूचे समाज की लागत या खर्च पर जीवित रहता है। उन्होंने कहा कि रूसी नौकरशाही में परम्परागत शासक वर्गों की सभी विशेषताएँ हैं, अर्थात् विभाजन तथा उत्पादन पर एकाधिकार नियंत्रण, अधिशेष के अधिक हिस्से को अपने लिए बटोरना तथा उत्पादकों की लागत पर जीवित रहना। फिर भी उन्होंने कहा कि नौकरशाही एक जाति है, वर्ग नहीं, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर इसका स्वामित्व नहीं है।

किन्तु इसके बाद उनके विचारों में और स्पष्टता आई। उन्होंने कहा कि शासक नौकरशाही राजनीतिक नेतृत्व का दर्जा रखती है और बाकी सामाजिक स्तर के अधीन हैं। सम्पत्ति के स्वामित्व के सम्बन्ध में उन्होंने कहा, सम्पत्तिका अभिप्राय भौतिक सामान का प्रयोग, उपभोग तथा प्रबन्ध करना है। नया वर्ग अपनी शक्ति विशेषाधिकारों, विचारधारा और अपने रीति–रिवाजों को एक विशेष प्रकार के स्वामित्व जिसमें वर्ग ही राष्ट्र और समाज के नाम पर प्रशासिक और वितरित करता है।

'नया वर्ग' सिद्धान्त के अन्य समर्थक हैं; संयुक्त राज्य अमेरिका के **मैक्स स्बैक्टमैन** (Max Sbakhtman), पोलेण्ड के जैसिक कुरून (Jacek Kuron) तथा **कैरोल मोजलियुस्की** (Karol Modzelewski) तथा यूगोस्लाविया के **स्वीटोजॉर स्टोजैमोविक** (Svetozar Stojamovic)। ये सभी इस बात पर सहमत है कि अक्टूबर की क्रांति श्रमिकों की ही एक क्रांति थी, किन्तु इसके साथ विश्वासघात किया गया है। नौकरशाही भ्रष्टता के कारण एक नया शासक वर्ग सत्तारूढ़ हो गया है।

दोनों दृष्टिकोणों में अन्तर
(Difference between the Two Angles)

संसारवती नया वर्ग सिद्धान्तवादी **(Global New Class Theorists)**	समाजवादी नया वर्ग सिद्धान्तवादी **(Socialist News Class Theorists)**
1. यह संसारव्यापी घटना अथवा स्थिति की पहचान करके उसको स्पष्ट करने का दावा करता है।	1. इसकी महत्वाकांक्षा बहुत सीमित तथा यथार्थ है।
2. औद्योगिक प्रबन्ध तथा इसी प्रकार के कार्यकर्ता,	2. नया वर्ग उस राजनीतिक नौकरशाही पर आधारित

शासक वर्ग के स्थान ले रहे हैं।	है जो साम्यवादी दल के इर्द–गिर्द बन जाता है।
3. नया वर्ग विकसित संसार में उन्नत पूंजीवाद का उत्तराधिकारी बनने की स्थिति है।	यह नए वर्ग को संसार को कम विकसित क्षेत्रों में तेजी से औद्योगीकरण लाने के साधन के रूप में देखता है।

नौकरशाही पर मैक्स वेबर के विचार

(Max Weber on Bureaucracy)

नौकरशाही का व्यवस्थित अध्ययन जर्मनी के समाजशास्त्री **मैक्स वेबर** (Max Weber) के साथ आरम्भ हुआ। **वेबर** ने नौकरशाही पर जो कुछ लिखा है, उसने जितना प्रभाव डाला है और जितने वाद–विवाद को उत्साहित किया है, उस दृष्टि से यह अनेक विज्ञानों के सामूहिक योगदान भी अधिक महत्वपूर्ण है। **हॉलिवी** लिखते हैं, **मार्क्स** की भांति **वेबर** सिद्धान्त पर भी विस्तृत और निरंतर आलोचना हुई है और इस आलोचना का मुख्य निशाना उनकी नौकरशाही की धारणा है। किन्तु वास्तव में यह इस सिद्धान्त के प्रभाव का संकेत है। आमतौर पर अनावश्यक सिद्धान्तों की अवहेलना कर दी जाती है और उनको शीघ्र ही भुला दिया जाता है। केवल वही सिद्धान्त, जो अध्ययन–शास्त्र के विकास के महत्वपूर्ण घटना–चिन्हों का काम करते हैं, को ही बार–बार आलोचना के लिए चुना जाता है और जितना उन पर अधिक आक्रमण होता है, उतना ही वे अधिक लचीला बन जाते हैं। **वेबर** (Weber) का नौकरशाही का सिद्धान्त इस प्रकार का एक स्पष्ट उदाहरण है। नौकरशाही पर अनेक समकालीन लेखक उनके सिद्धान्त की आलोचना से आरम्भ करते हैं फिर भी यही लेखक **वेबर** (Weber) के सिद्धान्त से परे हटने का प्रयोग अपने विचारों का स्पष्टीकरण करने के लिए करते हैं। केवल यह दिखाने के लिए कि उनके विचार उससे कितने भिन्न हैं। यद्यपि यह टिप्पणी थोड़ी लम्बी है, फिर भी साहित्य में **वेबर** (Weber) के नौकरशाही सिद्धान्त और महत्व को ठीक–ठीक चित्रित करती है।

वेबर ने प्रशासन पर बड़ा विस्तृत और व्यवस्थित विचार अपनी पुस्तक इकॉनोमी एण्ड सोसाइटी (Economy ans Society) के अन्तर्गत प्रभुत्व के समाज विज्ञान में किया है। इस विषय पर उनके विचार जानने का एक और साधन उनकी एक अन्य पुस्तक है। पार्लियामेन्ट एण्ड गवर्नमेन्ट इन द न्यूली ऑरगेनाइज्ड जर्मनी (Parliament and Government in the Newly Organised Germany)।

शक्ति, सत्ता तथा नौकरशाही

(Power, Authority and Bureaucracy)

नौकरशाही पर **वेबर** (Weber) की धारणा की शक्ति, प्रभुत्व तथा सत्ता पर व्यक्त किये गए उनके विचारों में देखा जा सकता है। **वेबर** (Weber) ने शक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है, "सम्भावना है कि सामाजिक संबंधों के अन्तर्गत एक व्यक्ति विरोध होने के बावजूद इस स्थिति में होगा कि वह अपनी इच्छा को लागू कर सकता है। अधिकारिक नियंत्रण अथवा प्रभुत्व पदानुक्रम में शक्ति है इस बात की संभावना है कि यदि इसमें विशिष्ट सार हो तो व्यक्तियों के समूह में इसका पालन किया जाएगा। सत्ता के प्रयोग में यह अनिवार्य है कि एक व्यक्ति अपने अधीनस्थ समूह को सफलतापूर्वक आदेश जारी करता है और वह इसका पालन इस विश्वास के साथ करता है कि आदेश विधिवत् हैं। अतः विधिवत् होना या वैधता ही शक्ति और प्रभुत्व को सत्ता में बदल देती है।

वेबर (Weber) ने सत्ता का वर्गीकरण वैधता पर इसके दावे के आधार पर किया है, क्योंकि इसी पर ही या आश्रित है कि उसका पालन किस तरह होता है, किस प्रकार का प्रशासनिक स्टॉफ इसके लिए उपयुक्त है और किस ढंग से सत्ता का प्रयोग होता है। यह वर्गीकरण तीन प्रकार का है–

परम्परागत सत्ता (Traditional Authority)– इसकी वैधता इस बात पर है कि यह अतीत में बहुत समय से चली आ रही है। यह प्राचीन परम्पराओं की पवित्रता में स्थापित विश्वास तथा उन लोगों के स्तर पर वैधता पर आधारित है जिनके अधीन वे सत्ता का प्रयोग करते हैं।

चमत्कारित सत्ता (Charismatic Authority)– इस सत्ता की वैधता प्रयोग करने वाले व्यक्ति की उत्कृष्ट व्यक्तिगत नेतृत्व की विशेषताओं पर आधारित होती है। इसका आधार एक व्यक्ति के आदर्शात्मक चरित्र अथवा शौर्य के प्रति आसाधारण पवित्रता और भक्ति है तथा मूल्यों की व्यवस्था होती है जिसकी स्थापना उसने रखी है।

कानूनी विवकेशील सत्ता (Legal Rational Authority)– इसकी वैधता का आधार यह है कि यह उचित औपचारिक नियमों के अनुकूल होती है और सत्तारूढ़ व्यक्तियों के इस आधार पर कि उनको नियमों के अधीन आदेश जारी करने का अधिकार है। यह इन नियमों की वैधता के विश्वास पर आधारित है।

सत्ता का जो वर्गीकरण **वेबर** (Weber) ने किया, उससे उसे संगठनों का वर्गीकरण करने का आधार प्राप्त हो गया। जैसा कि उन्होंने कहा, "सारी सत्ता की बुनिया और इस प्रकार आदेशों का सभी प्रकार का पालन सम्मान में विश्वास पर आधारित है, जो शासक अथवा शासकों के लाभ के लिए कार्य करती है। सत्ता की वैधता में विभिन्न प्रकार के विश्वासों के साथ विभिन्न सत्ता के ढाँचे और संगठनात्मक स्वरूप जुड़े हुए होते हैं।

परम्परागत सत्ता परम्परागत संगठनों का आधार होती है। चमत्कारित सत्ता चमत्कारित आंदोलनों का आधार बनती है। कानूनी विवकेशील सत्ता आधुनिक संगठनों का आधार है जिनके साथ लगातार बढ़ता हुआ नौकरशाही प्रशासनिक स्टॉफ जुड़ा होता है।

वेबर का आदर्श प्रारूप

(Weber's Ideal Type)

वेबर (Weber) ने 'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग एक निश्चित प्रकार कि प्रशासनिक संगठन को बताने के लिए किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि पत्र के रूप में आधुनिक नौकरशाही संगठन स्वयं स्वाभाविक है। उन्होंने कभी इस प्रकार स्पष्ट तौर पर नौकरशाही की व्याख्या नहीं की, जैसा की वर्ग अथवा स्तर समूह की व्याख्या की है। **मालटिन एलबरो** (Maltin Albro) का अर्थ नियुक्त किए गए कर्मचारियों का समूह है। वे ऐसे कर्मचारियों को नौकरशाही में सम्मिलित नहीं करते जो निर्वाचित हैं अथवा जिनका चयन लाटरी कि द्वारा किया गया है। नौकरशाही कर्मचारियों की अनिवार्य विशेषता यह है कि वह एक नियुक्त अधिकारी होता है। **वेबर** (Weber) नौकरशाही को ऐसे अधिकारियों के समूहों के लिए सामूहिक शब्दावली मानते थे जो एक निश्चित तथा अलग समूह होता है और जिसका प्रभाव सभी बढ़े संगठनों, जैसे–राज्य, चर्च, राजनीतिक दल, मजदूर संघ, व्यापारिक उपक्रम, विश्वविद्यालय आदि में देखा जा सकता है। इसके अपने ही अलग प्रकार के कार्य होते हैं।

वैध विवकेशील सत्ता अमुक संबंधित विश्वासों पर आधारित होती हैः

1. एक विधि संहिता तैयार की जा सकती है जो संगठन के सदस्यों के आदेश पालन का दावा कर सकती है।
2. प्रशासन संगठन के हितों को कानून के दायरे में रहकर संगठन के हितों की देखभाल करता है, कानून काल्पनिक नियमों का वह समूह है जो विशिष्ट मुकदमों अथवा घटनाओं पर लागू होता है।
3. जो व्यक्ति सत्ता का प्रयोग करता है, वह भी इस अवैयक्तिक आदेश का पालन करता है।
4. एक सदस्य कानून का पालन सदस्य के रूप में ही करता है।
5. अन्त में, वफादारी उस व्यक्ति के प्रति नहीं होती जिसके हाथ में सत्ता है, अपितु उस अवैयक्तिक विधि अथवा आज्ञा के प्रति होती है जिसने उसको उस पद पर नियुक्त किया है।

रमेश अरोड़ा ने बड़े सुन्दर ढंग से कानूनी विवकेशील सत्ता के अधीन प्रशासनिक स्टाफ जिसका वर्णन **वेबर** ने किया है, की विशेषताओं और सिद्धान्तों को निष्कर्षित किया है। ये विशेषताएँ हैं–

1. अपने विशुद्ध रूप में कानूनी सत्ता नौकरशाही प्रशासनिक स्टाफ का प्रयोग करती है।
2. नौकरशाहों की विशेषताएँ इस प्रकार है (पीछे दिए गए संगठन के सिद्धान्तों पर अध्याय को भी दिखाए)–
   i. वे केवल अपने पद की हैसियत में ही सत्ता के अधीन होते हैं।
   ii. वे पदानुक्रम अथवा पदसोपान के रूप में संगठित होते हैं।
   iii. प्रत्येक पद की निश्चित की गई योग्यता होती है।
   iv. पदों पर नियुक्तियाँ आजाद चयन के द्वारा की जाती है।
   v. अधिकारियों की नियुक्तियाँ उनकी तकनीकी योग्यता के आधार पर की जाती है।
   vi. उनका वेतन धन में दिया जाता है, यह वेतन निश्चित होता है और इनके वेतन क्रम स्तरों के रूप में होते हैं। इनको पेंशन भी दी जाती है।
   vii. उनका पद अथवा नौकरी ही उनका प्राथमिक व्यवसाय होता है।
   viii. नौकरशाही जीवनकालिक उन्नति प्रदान करती है जिसमें पदोन्नति वरिष्ठता और/अथवा उपलब्धि के आधार पर होती है।
   ix. कर्मचारी के प्रशासन के साधनों से अलग कर दिया जाता है।
   x. अपने पद का कार्य करते हुए कर्मचारी अनुशासन के अधीन होते हैं।
3. नियुक्ति एवं महत्वपूर्ण विशेषता है, क्योंकि निर्वाचन से पदानुक्रम–संबंधी अनुशासन में बाधा पड़ती है।
4. यद्यपि नौकरशाही का सर्वोच्च अध्यक्ष एक नौकरशाही नहीं होता, फिर भी विशेषकृत ज्ञान को अति अनिवार्य समझा जाता है।
5. अपने विशुद्ध रूप में प्रशासनिक नौकरशाही स्टॉक तानाशाही प्रकार का होता है।
   i. मनुष्यों पर आदेशक नियंत्रण रखने के लिए यह अति उत्तम विवेकपूर्ण साधन है।
   ii. इसकी उच्चता का प्राथमिक स्त्रोत इसका तकनीकी ज्ञान है।
   iii. वह वर्तमान नौकरशाही सत्ता से तभी बच सकता है यदि किसी अन्य नौकरशाही सत्ता की स्थापना करे।
   iv. पूंजीवाद नौकरशाहीवाद की दिशा में एक मुख्य प्रेरणा रहा है।
   v. नौकरशाही के विकास के सामाजिक बराबरी को बढावा मिलता है और सामाजिक बराबरी नौकरशाही का समर्थन करती है और नौकरशाही के पक्ष में होती है।

आदर्श प्रकार की नौकरशाही की इन विशेषताओं को **वेबर** ने प्रशासन के प्रशासनिक सिद्धान्तों और यूरोप के प्रशासनिक इतिहास से लिया। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि यह एक आदर्श प्रारूप है (लक्ष्य नहीं) जिसको विशुद्ध अथवा अभिसिप्त रूप में वास्तविकता में नहीं पाया जा सकता। पश्चिमी औद्योगिक देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाएँ काफी हद तक इस आदर्श प्रारूप से

मिलती है। जब **वेबर** किसी निश्चित वास्तविक प्रशासनिक संगठन के संबंध में लिखते हैं तो वे इनको नौकरशाहियों का नाम देते हैं। यद्यपि उनमें से किसी में भी इन सभी अथवा इन्हीं विशेषताओं को न पाया जाता हो। **वेबर** इस बात पर **मार्क्स** और **लेनिन** से सहमत नहीं है कि नौकरशाही पूंजीवाद के साथ जुड़ी हुई होने के कारण लुप्त हो जाएगी, जबकि समाजवादी क्रांति के द्वारा पूंजीवाद को नष्ट कर दिया जाएगा। वह इस बात पर बल देते हैं कि नौकरशाही एक स्वतंत्र इकाई है और समाज चाहे पूंजीवादी हो या समाजवादी, यह फिर भी जीवित रहेगी। इसके दो कारण हैंः प्रथम, क्योंकि नौकरशाही का उदय उन तत्वों के कारण हुआ है जिन्होंने आधुनिक समाज की स्थापना की है, जैसे– पूंजीवाद, केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों तथा जनसमूह– लोकतंत्र। यह ऐसी परिस्थितियां हैं जिनको समाप्त नहीं किया जा सकता। **वेबर** नौकरशाही को ऐसे समाज का एक अभिन्न हिस्सा मानते हैं जो श्रमजटिल विभाजन, केन्द्रित प्रशासन तथा मुद्रा–अर्थव्यवस्था पर बना है। इसको किसी हालत में नष्ट किया जा सकता। वेबर का कहना है, बाकी सभी शर्तों के एक जैसा होते हुए, यदि तकनीकी दृष्टि से नौकरशाही प्रशासन सदा ही सर्वाधिक विवकेशील प्रकार का है, तो जन–समूह–प्रशासन की आवश्यकताएँ आज इसको पूर्णतया अनिवार्य बना देती है। प्रशासन के क्षेत्र में नौकरशाही और पल्लवग्राहिता (ललित कलाओं का प्रशंसक) के बीच ही चुनाव करना होगा।

वेबर ने केवल आधुनिक राज्यों और निजी पूंजीवादी उपक्रमों में ही नौकरशाही प्रवृत्तियों को देखते हैं, अपितु आधुनिक सेना, चर्च तथा विश्वविद्यालयों में भी इन प्रवृत्तियों को पाते हैं। उनका कहना है कि सेना, चर्च तथा विश्वविद्यालयों में धीरे–धीरे प्राचीन तत्व समाप्त हो गए हैं। स्थायी सेनाएँ भौतिक धन और परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र की बढती हुई भूमि का संचार के आधुनिक साधन, वयस्क मताधिकार, जनसमूह, राजनीतिक दलों का उदय जैसे राजनीतिक तत्त्व सभी नौकरशाहीवाद की दिशा में काम करते हैं।

वेबर मानते हैं कि विकसित नौकरशाही की अनिवार्यता आधुनिक युग का केन्द्रीय राजनीतिक सत्य है। एक व्यक्तिगत नौकरशाह, "निरन्तर चलते रहने वाले यंत्र–रचना में शक्तिहीन पुर्जा होता है जो उसके लिए चलने का एक निश्चित मार्ग कर देता है। जो भी कोई शक्ति को प्राप्त करता है, इस संगठन के बिना शासन नहीं कर सकता।

न केवल नौकरशाही अपरिहार्य है, अपितु इसके प्रभाव से बचा नहीं जा सकता। Martin Krygier का कहना है कि एक प्रशासनिक संगठन के रूप में जो हर प्रकार के उपक्रम में पाया जाता है, इसका प्रभाव आधुनिक संसार में विवकेशीलता के किसी भी अन्य वाहक की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत है और प्रशासनिक संगठन के रूप से सबसे अधिक विकसित होने के कारण यह अधिक शक्तिशाली है और संगठन के पिछले किसी भी रूप की अपेक्षा इसके प्रभाव से बचना अधिक कठिन है।

नौकरशाही तथा पूंजीवाद

(Bureaucracy and Capitalism)

जैसा की ऊपर कहा गया है, **वेबर** नौकरशाही को उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था से नहीं बाँधते। इनमें कोई संदेह नहीं कि वे नौकरशाही के उदय के पूंजीवादी व्यवस्थ की प्रकृति के संदर्भ में व्याख्या करते हैं (जहां कहीं पूंजीवाद पनपता है, नौकरशाही का उदय होता है), किन्तु पूंजीवाद तो नौकरशाही की उत्पत्ति के कई कारणों में से एक कारण है। नौकरशाही की उत्पत्ति अथवा बने रहना तो अन्य परिस्थितियों जैसे समाजवाद में भी हो सकता है। एक समाजवादी क्रांति का परिणाम श्रमिक वर्ग के तानाशाही शासन के रूप में नहीं हो सकता। आधुनिक जनसमूह समाज में इसका परिणाम नौकरशाहों के तानाशाही शासन के दृढ़ीकरण में ही हो सकता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था पर आधारित समाज में नौकरशाही अखंडित अचल ढाँचा बन जाता है।

पूंजीवादी को विकास के वर्तमान रूप में नौकरशाही की आवश्यकता है, दूसरी ओर पूंजीवाद नौकरशाही प्रशासन का सर्वाधिक विवकेशील आर्थिक आधार है और इसको सर्वाधिक विवकेशील रूप में विकसित करने के योग्य बनता है। यदि पूंजीवाद को समाप्त कर दिया जाए, नौकरशाही तो भी रहेगी। पूंजीवादी समाज में निजी और लोक नौकरशाहियाँ कुछ हद तक एक–दूसरे को रोकती हैं। किन्तु यदि निजी पूंजीवाद समाप्त कर दिया जाए, तो ये नौकरशाहियाँ एक ही पदानुक्रम में मिल जाएँगी, तब केवल राज्य की नौकरशाही ही शासन करेगी और **वेबर** ऐसी परिस्थिति को पसन्द नहीं करते थे।

नौकरशाही के परिणाम

(Consequences of Bureaucracy)

वेबर को वर्तमान युग में नौकरशाही के प्रति विरोधहीन फैलाव के सामाजिक और राजनीतिक परिणामों से बहुत चिन्ता थी। **मार्टिन क्रीगियर वेबर** की चिन्ता के दो कारण मानते हैंः प्रथम सारे समाज का नौकरशाहीकरण, जिसका अभिप्राय है– नौकरशाही मूल्यों, विचार प्रवाहों और व्यवहार का सारी जनसंख्या के बीच प्रसार। **वेबर** की चिन्ता का दूसरा कारण यह था कि जाक नौकरशाही संगठनों में पदाधिकारी हैं, वही राज्य का वास्तविक शासक बन बैठे। **बेंग्ट बआहमसन** (Bengt Abrahmsson) कहते हैं कि वेबर इस बात की सम्भावना को देखते थे कि एक नौकरशाही मशीन अपने शासकों के विरूद्ध विद्रोह कर उठे। उसका कारण यह है कि नौकरशहियों के पास उच्च तकनीकी तथा व्यावहारिक ज्ञान होता था तथा महत्वपूर्ण सूचना को इकट्ठा करने और प्रसारित करने पर प्रभुत्व रखने की योग्यता भी, होता है। नौकरशाही प्रशासन का अभिप्राय है– ज्ञान के द्वारा मौलिक प्रभुत्व।

आगे चलकर **वेबर** कहते हैं कि यदि नौकरशाही राजनीतिक कार्यवाही करना चाहे, तो इसके शासक आसानी से इसके शिकार बन सकते हैं। उसका कारण यह है कि राजनीतिक शासकों के पास आवश्यक विशेषज्ञता का अभाव होता है। जिसे नौकरशाही की लगाम करना स्थायी अधिकारियों के लिए कहीं ज्यादा आसान होता है। इसके विपरित उन अधिकारियों के नाम–मात्र वरिष्ठ अर्थात् कैबिनेट मंत्री के लिए इतना आसान नहीं होता। एक और स्थान पर **वेबर** चेतावनी देते हैं कि नौकरशाही के पास शक्ति के बहुत अधिक संसाधन होते हैं और यदि उनको राजनीतिक नियंत्रण के अधीन न रखा जाए तो वे स्वयं शासन करने के योग्य बन सकते हैं।

हॉलिवी दो अन्य, किन्तु इनसे जुड़े हुए, परिणामों का उल्लेख करते हैं जिनको संबंध में **वेबर** को चिन्ता थी। उन्होंने नौकरशाही के भीतर व्यक्ति अर्थात् नौकरशाही एक ऐसे व्यक्ति को पैदा करते हैं जो एक बड़ी मशीन में एक छोटा सा पुर्जा होता है और एक बड़ा पुर्जा बनने का यत्न करता है। पूंजीवाद और नौकरशाही दोनों ही एक तकनीकी विशेषज्ञ को पैदा करते हैं जो अतीत के सुसंस्कृत व्यक्ति का स्थान लेता है जिसको अपने उच्चता में विश्वास होता था। **वेबर** का कहना है कि "भावना के बिना विशेषज्ञ, ह्रदय के बिना विलासी, यह शून्यता समझती है कि यह सभ्यता के उस स्तर पर पहुंच गया है जहाँ वह पहले कभी नहीं पहुंचा था।" नौकरशाही के आलोचक इसको मानवताहीन व्यक्ति का नाम देते हैं। **वेबर** की दृष्टि में नौकरशाही का एक और परिणाम, जिसके उल्लेख हानिवी ने किया है, वह संगठन की अधिकता जो स्वतंत्रता के पूर्णतया विपरित होती है।

नौकरशाही सिद्धान्त का मूल्यांकन

(Evalution of the Bureaucracy Theory)

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक दृष्टि से वेबर की आलोचना करते हैं। वह यह मानते हैं कि वेबर का सिद्धान्त समाज पर पूंजीवादी प्रभुत्व को उचित ठहराता है। उनका तर्क है कि वेबर के तथाकथित 'इतिहास का दर्शन' (Philosophy of History) का इरादा सत्ता या प्रभुत्व को विधिसंगत बनाना था और इसके द्वारा गृहयुद्ध या वर्ग–संघर्ष को केवल 'शक्ति की राजनीति' का रूप देना था..... सामाजिक यथार्थता (प्रभुत्व) को रहस्यपूर्ण बनाना पैगम्बरों का पेशा रहा है। किसी के लिए यह समझना कठिन नहीं है कि क्या वैबरवाद एक विज्ञान है या भविष्यवाणी। विज्ञान के नाम पर कल्पना का प्रचार करना पूंजीवाद की ऐतिहासिक आवश्यकता है।

यह भी कहा जाता है कि वेबर ने नौकरशाही का जाक विश्लेषण किया है, वह अपूर्ण है, विशेषतया नौकरशाहियों के भीतर जीवन के व्यवहारात्मक पक्षों की दृष्टि से। यह भी कहा जाता है कि नौकरशाही के पदसोपान पर आधारित सत्ता के ढांचे और अवैयक्तिक कार्यविधियां ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर सकती हैं जो सहायक के तौर पर कार्य करने की इसकी योग्यताओं को कम कर दे या सीमित कर दें। मर्टन का तर्क है कि "नियमों और पदसोपान पर आधारित

सत्ता–सम्बन्धों के द्वारा नियंत्रण पर नौकरशाही जो बल देती है, उसका उद्देश्य भले ही विश्वस्ता और पूर्वसूचनीयता को बढाना हो, किन्तु उससे सारे संगठन में व्यक्तिगत और समूह स्तरों पर व्यावहारिक कट्टरता, जाखिक–भरे निर्णय करने से कतराना और बचाव के सामान्य रवैये को प्रोत्साहन मिलता है।"

यह भी कहा जाता है कि बाहर से अच्छे व्यवस्थित और अनुशासित दिखाई देने वाले नौकरशाही के औपचारिक ढांचे के भीतर स्थिति और शक्ति के लिए सर्वत्र फैले हुए संघर्ष की वास्तविकता छिपी पड़ी है।

नौकरशाही एक अपूर्ण औजार है–

1. यह बहुत अधिक व्यावसायीकृत कर्मचारियों की आवश्यकताओं के लिए उचित नहीं, क्योंकि इसकी संरचना में सत्ता ऊपर से नीचे की ओर आती है।
2. आज की विज्ञान पर आधारित सभ्यता में प्रभावी कार्य करने के लिए भागेदारी का जो वातावरण होना चाहिए, वह इसमें नहीं होता, क्योंकि परंपरागत नौकरशाही पदसोपान पर आधारित है, पदो ंके लिए प्रयत्नशील रहती है ओर धारणा में तानाशाह है।
3. अपनी व्यावहारिक विशेषताओं के कारण विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक समाजिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है।

1.2.4 निष्कर्षः–

अन्त में यह जरूर कहना पड़ेगा कि यदि आधुनिक संगठन आमने सामने के सरल सम्बन्धों से अधिक जटिल है, तो उन सभी में नौकरशाही के तत्व सर्वव्याप्त हैं। सरकार बड़े–बड़े व्यापारिक संगठन, विशविद्यालय, धार्मिक संस्थान, राजनीतिक दल आदि अधिकत्तर नौकरशाही धारणाओं पर आधारित है। यद्यपि नौकरशाही के अन्त की भविष्यवाणी कई बार की गई, फिर भी इसका कोई विकल्प ढूंढा नहीं जा सके जो इतने अच्छे तरिके से जटिल संगठन में व्यवस्था की स्थापना कर सके। मानव जाति पर नौकरशाही का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है, किन्तु यह संगठन के प्रति सम्पूर्ण सिद्धान्त होने से अभी बहुत पीछे है। यही कारण है कि प्रतिनिधि नौकरशाही, भागेदारी नौकरशाही, संतुलित नौकरशाही आदि भिन्न–भिन्न प्रकार के संशोधनों का सुझाव दिया गया है, ताकि उसको अधिक जीवनसंगत (Viable) बनाया जा सके।

संगठन का शास्त्रीय सिद्धान्त तीन धाराओं में विकसित हुआः नौकरशाही सिद्धान्त, प्रशासनिक सिद्धान्त तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध। वे लगभग एक ही समय पर विकसित हुए (सन् 1900–1950), किन्तु इनका समर्थन करने वाले लेखक तीन पृथक समूहों से सम्बन्धित थे एक–दूसरे से लगभग स्वतंत्र रूप से काम कर रहे थे।

नौकरशाही सिद्धान्त का विकास अधिकतर समाजशास्त्रीयों ने किया जिनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत वर्णनात्मक, विद्वतापूर्ण तथा अनासक्त था। दूसरी ओर दोनों अन्य सिद्धान्तों–प्रशासनिक सिद्धान्त और वैज्ञानिक प्रबन्ध सिद्धान्त, का विकास ऐसे लेखकों ने किया जिनकी प्राथमिक रूचि प्रत्यक्ष रूप से प्रशासनिक व्यवहार में सुधार करना था। केवल संगठनों का वर्णन करके, संगठनों की क्रियाशीलता बढाने के लिए नियम और व्यवहार निर्धारित करके ही वे संतुष्ट नहीं थे। वैज्ञानिक प्रबन्ध का सिद्धान्त एक सूक्ष्म सिद्धान्त है। कार्य की भौतिक क्रियायें इसके विश्लेषण की इकाई हैं। प्रमुखतया इसकी रूचि श्रमिक तथा उसके कार्य के साथ एसके सम्बन्ध में हैं। इसमें मनुष्य–मशीन सम्बन्धों पर बल दिया जाता है जिसका उद्देश्य ऐसे उत्पादन कार्यों की क्रियाशीलता में सुधार करना है जो रोजमर्रा के और पुरावृत्ति वाले हैं। इसके विपरित नाकरशाही सिद्धान्त और प्रशासनिक सिद्धान्त मानवीय संगठन के ढांचे और प्रक्रियाओं पर बल देते हैं। वे बड़े (Macro) सिद्धान्त हैं।

1.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. नौकरशाही
2. कर्मिक प्रशासन
3. मैक्स वैबर नौकरशाही
4. विकास प्रशासन

1.2.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. नौकरशाही से क्या अभिप्राय है?
2. विकास प्रशासन में नौकरशाही की क्या भूमिका है?
3. भारत मं नौकरशाही की क्या प्रकृति है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. मैक्स वैबर की नौकरशाही की अवधारणा को आलोचनात्मक तरिके से व्याख्या करें।
2. नौकरशाही के सिद्धान्त तथा प्रकारों पर विस्तृत नोट लिखिए।
3. भारत के प्रशासन में नौकरशाही की क्या भूमिका है? आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।

सन्दर्भ सूची

1. मैक्स वेबर, दी प्रोटेस्टेण्ट एथिक्स एण्ड दी स्पीरिट ऑफ केपिटलीजम, 1958
2. मैक्स वेबर, फरोम मैक्स वेबर : असेज इन सोसिओलोजी, 1946
3. मैक्स वेबर, पोलिटिक्स एज ए एवोकेसन, 1965

4. मार्टन एलबरो, ब्यूरोक्रेसी, न्यूयार्क, 1970
5. पीटर एम. ब्लाऊ, ब्यूरोक्रेसी इन मार्डन सोसाइटी, न्यूयार्क, 1962
6. राबर्ट मर्टन, रीडिंग इन ब्यूरोक्रेसी (सम्पा०), फरी प्रैस, 1952
7. के. शिशाध्री, मार्कसिस्ट इन्टरप्रेटेशन, एडमिनिस्ट्रेटिव चेंज, वाल्यूम 9, नं० 2, 1982
8. एम. जे. हिल, दी सोशिओलोजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, 1972
9. जे. डोनाल्ड किंग्जले, रिप्रजेन्टेटिव ब्यूरोक्रेसी, न्यू जर्सी, 1974
10. एन. के. सिंह, ब्यूरोक्रेसी, पोजिसन्स एण्ड पर्सन्स, नई दिल्ली, 1977
11. सी.पी. भाम्भरी, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिक्स इन इण्डिया, विकास, 1971
12. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
13. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
14. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
15. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
16. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
17. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.2

मन्त्री–लोक सेवक सम्बन्ध

(Minister-Civil Servants Relations)

1.2.1 परिचयः–

संसदात्मक प्रजातंत्र में मंत्रियों और लोकसेवकों के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहते हैं। इन्हें प्रशासनिक यान के दो पहिए कहा जा सकता है। मंत्रियों द्वारा निर्मित प्रशासनिक नीतियों के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व लोकसेवकों पर रहता है। लोकसेवकों का कार्य नीति के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है वरन् वह उनको बनाने में भी (मंत्रियों को) अपनी विशिष्ट सलाह देते हैं।

मन्त्री अपने विभाग की प्रशासकीय नीति बनाता है, प्रशासनिक ढाँचें का निर्धारण करता है, वह अपने विभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा स्थिति तथा अनुशासन की समस्याएँ नियंत्रण भी उसी के माध्यम से परिचालित होता है। यह मंत्री प्रशासक से अपनी भर्ती, योग्यता, राजनीतिक प्रकृति तथा उत्तरदायित्व सभी से भिन्न होता है। प्रशासक या लोक सेवक जो मंत्री के विपरित विशेषज्ञ, योग्य, स्थायी, गैर–राजनीतिक एवं नियुक्ति प्राप्त व्यक्ति होते हैं। भारतवर्ष में जहाँ ब्रिटिश पद्धति की राजनीति का प्रशासन सदियों से रहा है विशेषज्ञ एवं अपरिपक्व लोग पूरक के रूप में अपनी भूमिकाएं निभाते रहे हैं। (स्वतांत के बाद इस सम्बन्ध में ज्यादा जटिलता आई है) उसके अनेक कारण हैं। प्रशासन का भीमकाय विस्तार, मन्त्रियों की दुर्बल स्थिति, प्रशासन का केन्द्रीय स्वरूप, राजनीतिकरण का जोश, विशेषज्ञों का प्रशासन में पदार्पण आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिन्होंने मनी प्रशासक सम्बन्धों में कुछ उलझनें उत्पन्न की हैं। मन्त्री यह माँग करने लगे हैं कि प्रशासक उनके इतने अधीन होने चाहिए कि वे अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित करवा सकें और उनकी तटस्थता या योग्यता राजनीतिक विकास के मार्ग में बाधा न बने।

1.2.2 उदेश्यः–

1. भारतीय विकास प्रशासन की प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका की भूमिका को समझना।
2. भारतीय प्रशासन के सन्दर्भमें लोक सेवकों की कार्य संस्कृति की विशेषताओं को जानना।
3. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मंत्रियों का विशिष्ट ज्ञान ना होने से उत्पन्न समस्याओं की जानकारी प्राप्त करना।
4. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मंत्री–लोक सेवक सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करना।

5. मंत्री–लोक सेवकों के संबंधों में सुधार की अवधारणा व प्रयासों से अवगत होना।

1.2.3 मन्त्री लोक सेवक सम्बन्ध :–

मंत्रियों की प्रशासनिक अनभिज्ञता

मंत्री यद्यपि अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, तथापि विभाग के वास्तविक अनुभवों और प्रशासनिक बारीकियों का उन्हें प्राय ज्ञान नहीं होता। मंत्रिगण तकनीकी विषयों अथवा प्रशासन की गहराईयों में पहुंचने की सामर्थ्य नहीं रखते। यद्यपि मंत्रियों को भी जनता की समस्याएँ पृथक् रूप से जानने का अवसर प्राप्त होता है, तथापि वे अनका सर्वेक्षण उतने तीक्ष्ण तथा विशलेषणात्मक रूप से नहीं कर पाते जितना की असैनिक कर्मचारी करते या कर सकते हैं। मंत्रियों के लिए ऐसा होना निम्नलिखित कारणों से स्वाभाविक भी है–

प्रथम, मंत्री–पद पर उनकी नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है। राजनीतिक दल में उनकी स्थिति, उनके व्यक्तित्व, उनकी व्यवहारिक एवं सामान्य योग्यता, प्रधानमंत्री की दृष्टि में उनका महत्व आदि के आधार पर उन्हें मंत्री–पद दिया जाता है न कि उन्होंने कोई विशिष्ट प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण की है।

दूसरे, मंत्रीगण अस्थाई रूप से अपने पद पर रहते हैं। उनका कार्यकाल अनिश्चित होता है और वे किसी विभाग के स्थाई अध्यक्ष नहीं होते। वे आते हैं और चले जाते हैं अतः अपना सारा समय और श्रम लगाकर उनसे विभाग की बारिकियों को जानने की आशा नहीं की जा सकती। एक समय में उनके लिए प्रशासन का पूरा–पूरा ज्ञान कर सकना सम्भव नहीं होता।

तीसरे, मंत्रिगण राजनीतिक प्रपंचों और गतिविधियों में इतने फँसे रहते हैं कि प्रशासन के वास्कविक कार्य को संचालित करने का उन्हें बहुत कम हो पाता है। मंत्रियों को संसद में, जनता में एवं अन्य स्थानों पर विभिन्न उत्तरदायित्वों को पूर्ण करना पड़ता है। इस सबके बाद उनके पास इतना अधिक समय नहीं बच पाता कि वे प्रशासनिक मामलों में अधिक रूचि ले सकें अथवा गहराई से जाँच कर सकें।

उक्त कारणों से मंत्रियों को नौसिखिए या अविशेषज्ञ कहा जाता है। दूसरे शब्दों में वे ऐसे व्यक्ति हैं जो पेशेवर प्रशासक नहीं होते, जिन्हें प्रशासन सम्बन्धी कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता है और जिन्हें प्रायः प्रशासन का पर्याप्त अनुभव नहीं होता। वे केवल राजनीतिक प्रशासक होते हैं।

मंत्रियों की इस प्रशासनिक अनभिज्ञता के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक रोचक बातें बतायी हैं। मनरो ने लिखा है, "कई अवसरों पर ब्रिटेन का युद्ध मंत्री कोई दर्शनिक या प्रान्त का नौसेना मंत्री कोई व्यापारी या बैरिस्टर और व्यापार मंत्री विद्यालय का कोई प्रोफेसर रहा है। वित्त मंत्री के सम्बन्ध में तो यह आशा की जानी चाहिए कि इस पद पर ऐसा कोई व्यक्ति नियुक्त किया जाए

जो अर्थ (Finance) की बारिकीयों से परिचित हो, पर नहीं, अनेक बार अर्थ–मंत्रियों के पद पर ऐसे व्यक्ति भी रह चुके हैं जो पेशेवर राजनीतिक या वकिल थे।"

मंत्रिपद के लिए कोई प्रशासनिक ज्ञान या प्रतियोगी परीक्षा में उत्तीर्णता आदि का आधार नहीं होता, इस पर प्रकाश डालते हुए सिडनी लो ने कहा है, "वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए नवयुवक को अंकगणित की परिक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ेगा, पर वित्त मंत्री अधेड़ उम्र का एक ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो अंकों को थोड़े बहुत ज्ञान को भूल चुका हो जो उसने ईटन अथवा ऑक्सफोर्ड में प्राप्त किया हो और जब दशमलव अंकों में लेखा उसके सामने पहली बार रखा जाए तो वह उन छोटे–छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिए उत्सुक हो।" यहाँ यह स्मरणीय है कि अब यह माना जाने लगा है कि मन्त्रिगण प्रशासन के विशेषज्ञ नहीं होते हैं।

मंत्री लोक सेवक सम्बन्ध

(Minister-Civil Servants Relations)

मन्त्री अपने विभाग की प्रशासकीय नीति बनाता है, प्रशासनिक ढाँचें का निर्धारण करता है, वह अपने विभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा स्थिति तथा अनुशासन की समस्याएँ नियंत्रण भी उसी के माध्यम से परिचालित होता है। यह मंत्री प्रशासक से अपनी भर्ती, योग्यता, राजनीतिक प्रकृति तथा उत्तरदायित्व सभी से भिन्न होता है। प्रशासक या लोक सेवक जो मंत्री के विपरित विशेषज्ञ, योग्य, स्थायी, गैर–राजनीतिक एवं नियुक्ति प्राप्त व्यक्ति होते हैं। भारतवर्ष में जहाँ ब्रिटिश पद्धति की राजनीति का प्रशासन सदियों से रहा है विशेषज्ञ एवं अपरिपक्व लोग पूरक के रूप में अपनी भूमिकाएं निभाते रहे हैं। स्वतांत के बाद इस सम्बन्ध में जाम जटिलता आई है उसके अनेक कारण हैं। प्रशासन का भीमकाय विस्तार, मन्त्रियों की दुर्बल स्थिति, प्रशासन का केन्द्रीय स्वरूप, राजनीतिकरण का जोश, विशेषज्ञों का प्रशासन में पदार्पण आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिन्होंने मनी प्रशासक सम्बन्धों में कुछ उलझनें उत्पन्न की हैं। मन्त्री यह माँग करने लगे हैं कि प्रशासक उनके इतने अधीन होने चाहिए कि वे अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित करवा सकें और उनकी तटस्थता या योग्यता राजनीतिक विकास के मार्ग में बाधा न बने। इसी प्रकार राजनीतिक विकास के बाद अपनी केन्दीय स्थिति से अपदस्थ किए जाने वाले प्रशासक ये कहने लगे हैं कि राजनीतिक नियंत्रण का अर्थ राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। प्रशासनिक स्वायत्ता का नारा राजनीतिज्ञों द्वारा प्रशासनिक गैर जिम्मेदारी कहा जा रहा है और इसी प्रकार मन्त्रियों द्वारा कठोर नियंत्रण की बात प्रशासकों द्वारा राजनीतिक अराजकता कही जाने लगी है। इस नियंत्रण के प्रश्न के चार पहलू हैं–

1. **मन्त्री की नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में भूमिकाः** मन्त्री के नियंत्रण को प्रशासकीय अध्यक्षता का स्वरूप कहा जा सकता है जिसमें नीति निर्माण और नीति क्रियान्वित सम्बन्धी अन्तिम शब्द कहने का अधिकार केवल मन्त्री को ही है। प्रशासक सलाहाकार हो सकता है; किन्तु उसकी सलाह चेतावनी अथवा धमकी का रूप नहीं ले सकती। नीति का हर स्तर मन्त्री द्वारा नियमित किया जाना चाहिए और प्रशासन व मन्त्री में यदि मतभेद हैं तो प्रशासक को उसी सीमा तक अपने कदन वापिस हटाने पड़ेंगे।
2. **संसदीय जनतन्त्र एवं प्रदत्त विधायनः** इस नियंत्रण का एक अन्य आधार एक ओर संसदीय जनतंत्र की व्यवस्था है तथा दूसरी ओर प्रदत्त विधि के प्रावधान हैं। सत्ता सेसद की थी, उसने मन्त्री को दी और मन्त्री ने प्रशासन को। अतः प्रशासन को प्रत्यक्ष रूप से किसी के प्रति अनिवार्य रूप से उत्तरदायी होना चाहिए। फिर मन्त्री प्रशासन की तुलना में अधिक सच्चा प्रतिनिधि है और संसद, दल तथा जनता उसे नियन्त्रित करने के लिए पर्याप्त है। अतः मन्त्री प्रशासन को नियन्त्रित करेगा, प्रशासन मन्त्री को नहीं। जनतांत्रिक के म में प्रशासन स्थयीतत्व का प्रतीक है और मन्त्री निरंतरता का। अतः प्रशासन को मन्त्री के निर्देश लेने और मानने होंगे।
3. **प्रशासनिक सिद्धान्त और कार्मिक नीति का निर्धारण एवं सम्पादनः** इस नियंत्रण का परिचालन मुख्य रूप से विधि निर्माण, निर्देश, कर्मचारी प्रशासन तथा पोस्टकॉर्ड विधियों से होता है। सारे नियम मन्त्री के माध्यम से वेधानिकता प्राप्त करते हैं। वह प्रशासन को स्थायी और विस्तृत निर्देश दे सकता है। प्रशासनिक क्रियाओं का पर्यवेक्षण, समन्वय, संगठन, बजट तथा नियंत्रण के अन्य यन्त्र मन्त्री के माध्यम से संचालित होते हैं। अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, सेवा–स्थिति स्वयं मन्त्री द्वारा निर्धारित नीति का परिणाम होते हैं।

मन्त्री–प्रशासनिक सम्बन्धों में समन्वयः इस प्रकार मन्त्रीय–नियंत्रण प्रशासनिक दृष्टि से यद्यपि आवश्यक और व्यावहारिक माना जाता है कि मन्त्री का नियंत्रण उनकी तटस्थता को तोड़ते हैं, उनमें अनुशासनहीनता जगाता है और उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेप का शिकार बनाकर अकार्यकुशलता और भ्रष्टाचार की तरफ मोड़ता है। इसके विपरित मन्त्री का पक्ष यह कहकर समर्थित किया जाता है कि मन्त्री के कठोर नियंत्रण के बिना प्रशासक नीति की अनुपालना नहीं करते और स्वयं निहित स्वार्थों के प्रतिनिधि बन जाते हैं। जनतंत्र की प्रगति को धीमा करते हैं और समाज को राजनीतिक ह्रास की ओर ले जाते हैं। इन जटिल समस्याओं से जूझने और उबरने के लिए जो मार्ग दिखलायी देता है वह केवल यही है कि राजनीति और प्रशासन में समन्वय स्थापित किया जाए दोनों अभिनेताओं पर व्यवस्था के अलग–अलग नियंत्रण प्रभावशाली बनायें जाएं और उनकी योग्यता एवं भूमिका का असन्तुलन इतना न बढ़ने दिया जाए कि व्यवस्था की वैधता टूट जाये। मन्त्री को उसके दल समाचार–पत्रों, जनमत तथा चुनाव प्रक्रियाओं के द्वारा अनुशासित व्यवस्था

बदली जाए। इसी प्रकार प्रशासकों को परम्पराओं द्वारा तथा लोक सेवा सुधारों द्वारा ऐसी स्थिति में लाया जाए कि उनकी योग्यता अनुशासनहीनता का असन्तुलन रोक सके। जब तक राजनीतिज्ञों के धरातल अथवा बौद्धिक स्तर ऊंचा नहीं होता अथवा प्रशासकों का "एलिटिज्म" (अभिजनवाद) घटकर उन्हें जनप्रतिनिधियों के समीप नहीं लाता तब तक यह कहा जाता है कि प्रतिबद्ध नौकरशाही का विचार भारतीय प्रशासन में भारतीय राजनीति के प्रभाव के प्रतिकूल है जो सामान्य रूप से समाजवादी विचारधारा की परछायी लगती है। सोवियत रूस के मॉडल (प्रतिमान) में नौकरशाही का स्वरूप योग्यता आधारित सेवावर्ग होने की अपेक्षा विचारधारा से अनुप्राणित तक "काडर ब्यूरोक्रेसी" का विचार है जिसे राजनीति के यन्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। प्रशासन के राजनीतिकरण को सोवियत रूस राजनीतिक नियंत्रण का एक आवश्यक अंग मानता और वहां पर प्रशासकों की भूमिका नीति निर्माण में सलाह न देना होकर उसे कुशलतापूर्वक क्रियान्वित करना है। देखना यह है कि वर्तमान सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोब की बहु–चर्चित "खुलापन" (Glasnost) "पुनर्रचना" (Perstroika) और "सोच के नए तरीके" (Novonye Myshlene) की नीतियों का वहां के प्रशासकों पर क्या प्रभाव पड़ता है। अमेरीका में यह नियंत्रण वहां के प्रशासनतां को अर्ध–राजनीतिक बना का पूरा किया गया है। वहाँ प्रत्येक राष्ट्रपति और राज्यपाल अपने राजनीतिक सहयोगियों के साथ–साथ अपने प्रशासन कर्मियों को भी एक अवधी विशेष के लिए नियुक्ति द्वारा लाता है और उनकी व्यक्तिगत निष्ठा और स्वामिभक्ति, उनकी नियुक्ति पद्धति द्वारा स्वयंमेव निर्धारित होती है। अंग्रेजी व्यवस्था में प्रशासनतन्त्र कार्यकारिणी का नियंत्रण मानकर चलता है और उसकी विशेषज्ञता उसके मार्ग में बाधा नहीं बनती। इंग्लैण्ड ने जिस प्रकार के प्रशासन का विकास किया उसमें प्रतिबद्धता के लिए कोई स्थान नहीं है। ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था प्रशासक को तटस्थ, अनाम, बेनाम और सामान्यज्ञ मानकर चलती है और उससे यह अपेक्षा करती है कि वह नीति निर्माण और नीति क्रियान्वित दोनों में प्रभावी भूमिका निभाए। प्रतिबद्धता इस दिशा में सेवा का राजनीतिकरण करती है जिसके फलस्वरूप मन्त्रिमण्डलीय नियंत्रण एक दुविधा और विडम्बना बन सकता है।

भारत के सम्दर्भ में, मन्त्री के नियंत्रण अथवा मन्त्री प्रशासन के सम्बन्धों के लिए जो तर्क दिए जाते रहें हैं वे ब्रिटिश परम्परा के परंपरावादी तर्क थे। सिद्धान्त यह था कि प्रशासक राजनीति से तटस्थ, मन्त्री का परामर्शदाता बन सके। यद्यपि भारत में एक दल प्रधान व्यवस्था ने इस स्थिति को सुदृढ़ करने में काफी सहायता की, किन्तु जैसे–जैसे विकास प्रशासन का कार्य सामने आने लगाा वैसे–वैसे ही मन्त्री व प्रशासन के बीच नीति एवं भूमिका सम्बन्धी मतभेद पैदा होने लगे। तटस्थता का सिद्धान्त टूटा और शासन और प्रशासन दोनों ही यह अनुभव करने लगे कि मन्त्रीय नियंत्रण और प्रशासकीय सवायत्तता

का सामंजस्यवादी ब्रिटिश सिद्धान्त भारत के सन्दर्भ में पुनर्निरीक्षण चाहता है। कुछ ऐसे तत्व जिन्होंने इन सम्बन्धों में दरार अथवा कटुता उत्पन्न की निम्नलिखित थेः

1. प्रशासन तंत्र के विकास के साथ मन्त्री वर्ग ने सेवाओं को अपना साम्राज्य मानकर कार्मिक नीतियों को इस तरह बनाना शुरू किया कि लोक प्रशासन या तो मन्त्री के चाटुकार बनकर रह गए अथवा उनमें और मन्त्री में इतना गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया कि सुयोग्य प्रशासक मन्त्री नियंत्रण को हस्तक्षेप बतलाने लगे।
2. भारत के सन्दर्भ में योजनाबद्ध विकास ने नीति सम्बन्धी प्रश्न इस रूप में खड़े किए कि प्रशासकों ने राजनीति के दबाव को स्वीकारने से इन्कार कर दिया। कितने ही उदाहरण उद्धत किए जा सकते हैं जब राजनीतिक दबाव आर्थिक प्रशासन में राजनीतिक निर्णय लेना चाहते थे और प्रशासकों ने अपनी तटस्थता के नाम पर उनका विरोध किया। परिणाम यह निकला कि मन्त्रीयों ने सारी की सारी नौकरशाही को प्रतिबद्ध घोषित कर विकास कि असफलता के लिए उन्हें दोषी ठहराया और जनसाधारण के सामने उनका "एलिटिस्ट" (Elitist Meritocrat) का रूप प्रस्तुत करते हुए उन्हें निहित स्वार्थ घोषित किया।
3. तीसरे, भारतीय प्रशासन में, बहुत से अर्न्तविरोध की प्रक्रिया के द्वारा स्वतः ही सामने आए। यह संकट वैधता का संकट था, जिसमें प्रशासक यह समझता था कि राजनीतिज्ञ या मन्त्री एक अवैध तत्व है, जो उसे काम करने से रोकता है। चुंकि राजनीति में मन्त्री का नियंत्रण वैध रूप से स्वीकृत नहीं था, अतः मन्त्री ने भी यह प्रयास किया कि वह लोक प्रशासन के अधीन सिद्ध कर उसे उसी जगह बतला दे। द्वन्द्व की यह स्थिति मन्त्री की विजय के रूप में परिणित हुई और कार्यकारिणी ने यह अपेक्षा की कि लोक–प्रशासन प्रतिबद्ध हो।

प्रतिबद्धता शब्द के आशय यदि लोक–प्रशासन की अधीनस्थता से है तो उस पर कोई विवाद नहीं हो सकता। सभी प्रशासक यह चाहेंगे कि कार्यकुशलता, दक्षता, परिणाम प्राप्ति या उत्पादन आदि क्षेत्रों में वे सम्पूर्ण निष्ठा के साथ प्रतिबद्ध हों इसी प्रकार से यदि प्रश्न यह है कि वे संविधान के मूल आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध हों तो इनमे भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। राजनीति को नीति निर्माण के रूप में अपना नियंत्रक मानना भी उन्हें प्रतिबद्धता नहीं लगती किन्तु प्रतिबद्धता के क्षेत्र में वास्तविक विरोध जिस प्रश्न पर है वह यह है कि क्या प्रतिबद्धता पद विशेष से जुड़कर व्यक्ति विशेष के प्रति हो सकती है तथा दूसरे, क्या प्रतिबद्धता के नाम पर नौकरशाही का जानबूझकर किसी विशेष विचारधारा के अनुसार काम करने के लिए विवश किया जा सकता है।

जो तर्क राजनीतिज्ञ या मन्त्रीयों की ओर से दिये जाते रहे हैं वे सारांश रूप में यह मानते हैं कि नौकरशाही का कार्य करने का अपना एक क्षेत्र है, किन्तु अन्ततोगत्वा उसकी ऐसी कोई भूमिका

नहीं है जो उसे राजनीतिज्ञ या मन्त्री से श्रेष्ठ या उच्चतर सिद्ध कर सके। यह भी कहा जाता है कि मन्त्री का हस्तक्षेप जैसी कोई चीज नहीं होती चूंकि मन्त्री का प्रत्येक कार्य उसके विभाग में उचित एवं वैध है। इतना ही नहीं जो लोक प्रशासक मन्त्री के आदर्शों की अवहेलना करें, उन्हें दण्डित किया जाना चाहिए चूंकि प्रशासनिक अनुशासन ऐसा चाहता है और यदि मन्त्री की नीतियों को योग्य प्रशासक अव्यावहारिक बतलाकर उनका मखौल उड़ाए तो यह स्थिति जनतंत्र का उपहास है। कुशल से कुशल प्रशासक को इस आधार पर राजनीति की अधीनस्थता स्वीकारनी होगी। जनतंत्र में राजनीति का वर्चस्व एक पूर्व स्थिति है। मन्त्रियों का यह कहना रहा है कि उनकी जननीतियों को वे प्रशासक क्रियान्वित नहीं कर सकते जो जनसाधारण के सम्पर्क नहीं है। दूसरे शब्दों में, जो प्रशासनतंत्र प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं है, यदि वह जनप्रतिनिधियों का कहना नहीं मानते तो अनुत्तरदायी प्रशासन, अनुत्तरदायी शासन का स्वरूप धारण कर लेगा। अतः मन्त्री चाहे वह कैसा ही राजनीतिज्ञ हो वह लोक प्रशासकों की योग्यता एवं तटस्थता का सम्मान करते हुए उनके अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण को केवल उनकी योग्यता के आधार पर स्वीकार नहीं कर सकता।

इसके विपरित, लोक प्रशासकों का कहना है कि उनमें तथा उनके रातनीतिज्ञ झगड़ों के बीच बड़ी खाई है कि उनसे किसी भी प्रकार का राजनीतिक संवाद करना असम्भव है। राजनीतिज्ञ इतनी लघु दृष्टि रखते हैं कि वे लोकहित के नाम पर लोक–हानि को उचित बतलाते हैं। वे नीति निर्माता हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विशेषज्ञों के पक्ष की अवहेलना करें। दूसरे शब्दों में प्रशासन राजनीति पर एक नियंत्रण के रूप में होना चाहिए और प्रतिबद्ध नौकरशाही राजनीतिज्ञों को गुमराह कर सकती है। प्रशासकों का यह कहना है कि हस्तक्षेप और नियंत्रण शब्द की सीमा–रेखाएं कानून से खींची जा सकती हैं और मन्त्री यदि चाहे तो प्रतिबद्धता का सवाल उठाए बिना प्रशासकों का सवाल उठाये बिना प्रशासकों को यह बतला सकता है कि उनसे क्या–क्या अपेक्षित है और कौन–कौन से क्षेत्र में उसका कितना प्रभाव उन्हें मानना होगा। प्रशासन–प्रतिबद्धता का भारत में इसलिए भी विरोध है कि इससे सेवाओं का राजनीतिकरण जिस गति से होगा वह राजनीति में अस्थिरता ला सकता है, व्यवस्था को तोड़ सकता है और प्रशासकों के मनोबल को गिराकर उन्हें सार्वजनिक लूट और भ्रष्टाचार की ओर उन्मुख कर सकता है। प्रतिबद्धता का विचार सेवकों की तटस्थता पर आघात है और उनकी योग्यता के लिए एक भारी खतरा बन सकता है। प्रशासक राजनीति का सम्मान करते हैं, किन्तु वे यह नहीं चाहते कि नियंत्रण के नाम पर उनकी स्थिति दासता की बन जाए।

भारतवर्ष में समाजवादी व्यवस्था के अभ्युदत के साथ प्रतिबद्ध नौकरशाही नारे ने बल पकड़ा। जब प्रतिबद्ध न्यायपालिका का विचार भारती राजनीति को दिया जाने लगा है तो ऐसा लगता है कि प्रशासन की प्रतिबद्धता तो होनी चाहिए। कितने ही प्रशासक भी अपनी इस भूमिका को बदलने और स्वीकार करने के लिए सामने आयें हैं। कुछ का मत है कि यदि समाजवादी

नियुक्तियां और प्रशासन चलता है तो ब्रिटेन जैसे तटस्थता एवं राजनीतिक निष्पक्षता सम्भव नहीं हो सकती। वे यह भी कहने लगे हैं कि एक वकील की भान्ति प्रशासक को भी एक सलाहकार या कन्सलटेन्ट बन जाना चाहिए। वह यह भी जानते हैं कि कौन सी नीतियां गलत हैं, अपनी बात विशेषज्ञ के रूप में कहे और उनका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मन्त्री पर छोड़ दें। यदि राजनीतिज्ञ आवश्यकता से अधिक दलगत राजनीति में फसें हैं तो वैसे भी प्रशासक की सलाह उन्हें अच्छी नहीं लगेगी। अतः नीतियों को प्रभावित करने की सलाह का आदर करें। हस्तक्षेप प्रशासकों का नारा है तो प्रतिबद्धता मन्त्रियों की माँग है। भारत के प्रशासन में संसदीय राजनीति इस भूमिका को और भी जटिल बनाती है कि प्रतिबद्धता सामान्यज्ञ या विशेषज्ञ में से किस में अधिक हो सकती है, यह प्रश्न भी नियंत्रण की सीमा रेखा में घसीट कर लाया जा सकता है।

वैसे जो सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ अपने आप में भारतीय प्रशासन की एक ऐतिहासिक एवं ज्वलन्त समस्या है, किन्तु सामान्यज्ञ सेवाओं का यह कहना है कि यदि प्रतिबद्धता जैसी स्थिति राजनीति के साथ समन्वय करने के लिए आवश्यक है तो उसे एक सामान्य प्रशासक ही सरलता में ला सकता है। विशेषज्ञ एक सलाहकार के रूप में अथवा नीति–क्रियान्वय के रूप में एक ऐसा व्यक्ति होता है जो राजनीति के वैचारिक दबावों को सरलता से न समझ सकता है और न स्वीकार कर सकता है। अपने क्षेत्र में उसका बौद्धिक धरातल जिस स्तर पर होता है वह उसके व्यक्तित्व को अजनतांत्रिक प्रदान करता है। उसे अपने व्यवसाय में इतनी निष्ठा होती है कि वह व्यक्ति और नीतियों के प्रतिबद्ध नहीं हो सकता। अतः यह तर्क कर दिया जाता है कि यदि भारतीय मन्त्री प्रशासन को कठोरता से नियन्त्रित करना चाहता है तो उसे प्रशासन के उच्च स्तरों पर विशेषज्ञों को नहीं रखना चाहिए चूंकि मतभेद की खाई एवं विरोध तथा अवज्ञा की स्थिति विशेषज्ञ के साथ अधिक गहरी और गम्भीर होगी।

इसके विपरित विशेषज्ञों का यह तर्क है कि प्रतिबद्धता का अर्थ यदि मन्त्री की अनुरूपता है तो सलाहकार जैसी कोई स्थिति नहीं रहती। सामान्यज्ञ जो अपना विषय नहीं जानते स्वयं राजनीतिज्ञ की तरह अनभिज्ञ लोग हैं और उन्हें यदि प्रतिबद्धता की सीमा में और बांध दिया गया तो वह मन्त्रियो के अनुचर मात्र बनकर रह जायेंगे। प्रतिबद्धता लोचशीलता चाहती है तो उसे अपने आप में एक सन्तुलनकारी स्थिति लाने में भी सहायक होना चाहिए। अतः सामान्यज्ञ प्रशासक का तर्क उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता बना सकता है चूंकि प्रतिबद्धता की योग्यता के नाम पर भूमिका निभा सकेगा जिसके लिए वह अपने आपको उपयुक्त पात्र समझता है।

सामान्यज्ञ विशेषज्ञ प्रतिस्पर्धा या विरोध ने एक ओर जबकि सेवाओं की असमानता को सामाजिक प्रतिष्ठता के प्रश्नों के साथ जोड़ दिया जाता है वहां दूसरी ओर उसका एक केन्द्रीय तत्व यह भी है कि मंत्री की सलाह कौन देगा? अखिल भारतीय सेवाओं ने इस भूमिका पर एकाधिकार कर रखा है और मन्त्री को सलाह देने के नाम पर वे अपना वर्चस्य बनाये हुए हैं। प्रतिबद्धता का जबकि वे स्वयं नकारते हैं तो दूसरी ओर वे अपने आपको विशेषज्ञों की तुलना में अधिक प्रतिबद्ध

बदलाते हैं। यह स्थिति संक्रमणकाल का लाभ उठाने की है जिसमें एक ओर सामान्यज्ञ सेवाएं राजनीति में दयनीय हैं तो दूसरी ओर विशेषज्ञ सेवाओं की समानता की मांग को कुचलना चाहती है। मन्त्री संसदीय राजनीति का आधार स्तम्भ है और वह नीति निर्माता, नीति नियंत्रक व नीति क्रियान्वयक है। प्रशासक उनका सलाहकार (चाहे वह अप्रतिबद्ध सामान्यज्ञ हो या प्रतिबद्ध विशेषज्ञ या इसके विपरित सभी स्थितियों में प्रश्न यह है कि मन्त्री किस सीमा तक प्रशासन तंत्र को किस प्रकार नियन्त्रित करें समाजवादी देशों ने प्रशासन की सवायत्तता छीन कर राजनीति और विचारधारा के वर्चस्व को मन्त्री के नियंत्रण के रूप में देखा है। ब्रिटिश मॉडल अथवा फ्रेंच प्रतिमान जो सेवाओं को एक विशेषाधिकार की स्थिति में रखकर राजनीतिकरण कि प्रक्रिया से उन्हें बचाना चाहते हैं, ब्येरोक्रेसी को पॉलिटिक्स का नियांक व सन्तुलक मानते हैं। भारतवर्ष रूस की स्थिति में नहीं है, किन्तु ब्रिटेन की स्थिति भी अब इतिहास बन चुकी है। अमेरीकी अर्द्ध–राजनीतिक प्रशासन संसदीय व्यवस्था से तालमेल नहीं खाता। अतः भारत के सन्दर्भ में मन्त्री प्रशासक सम्बन्धों का एक ऐसा प्रतिमान बनाना या विकसित करना होगा जो ब्रिटेन से अधिक राजनीतिक हो और सोवियत रूस कम प्रतिबद्ध तथा अमेरीका की तरह अर्द्ध–राजनीतिक एवं फ्रांस की तरह राजनीति का सन्तुलनकर्त्ता बन सके। इस प्रतिमान के कुछ निश्चित सिद्धान्त नहीं हो सकते; किन्तु राजनीतिक आवश्यकताओं, दबाओं एवं अपरिहार्यकारणों के प्रसंग में यह स्थिति स्वयं उभरेगी और भारतीय प्रतिमान इस दृष्टि से सबका मिश्रण होते हुए भी सबके पृथक तथा स्वतंत्र हो सकता है।

मन्त्री लोक सेवक सम्बन्धों में सुधार हेतु सुझाव

मन्त्री लोक सेवक सम्बन्धों को समुचित स्तर पर लाने के लिए अनेक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। भारतीय सन्दर्भ में इन सम्बन्धों के गिरते हुए स्तर को देखते हुए ऐसा किया जाना आवश्यक भी है। एस. पी. अय्यर ने अपने राजनीति और प्रशासन और प्रशासन विचार चित्र में राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों के मध्य अधिक विचार–विमर्श तथा अनुभव का आदान–प्रदान करने का सुझाव दिया है। प्रो. सी. पी. भाम्भरी ने प्रधान मन्त्री एवं नौकरशाही के सम्बन्धों तथा अन्य राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का विशलेषण करते हुए बतलाया है कि मन्त्री की राजनीतिक स्थिति दुर्बल होने पर नौकरशाही हावी हो जाती है। शक्तिशाली नौकरशाही ने दलीय नेताओं के साथ पारस्परिक लाभों के लिए समझौता किया है। स्वयं नौकरशाही ने अपने अपको शासक दल के उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन बना दिया है असन्तुष्ट एवं अवमानित अधिकारियों ने प्रेस, संसद तथा विरोधी दलों का भी सहारा लिया है। इस दुरावस्था के निस्तर पाने के लिए दो उपाय सुझाये गये हैं। प्रथम, मंत्री को अपने कार्यों के निष्पादन हेतु शक्तिशाली बनाकर, तथा द्वितीय, लोक प्रशासन को सार्वजनिक बनाकर। मन्त्री को सामान्य नौकरशाही से अलग दल तथा बाहर से विशेषज्ञ सलाहकारों को निर्णय, नीति–निर्माण, क्रियान्वयन के मूल्यांकन आदि में शामिल करने का अधिकार दिया जाना चाहिए ताकि वह नौकरशाही सचिव की प्रभुत्ता से छुटकारा पा

सके। इस व्यवस्था का संस्थीकरण कर मन्त्रीयों को सचिवालय प्रदान किया जाता चाहिए। प्रशासन में मंत्री एवं सचिव के मध्य अमानत एवं गोपनीय कार्य व्यापार नहीं रहना चाहिए। प्रशासन का "सार्वजनिक" या लोक–स्वरूप विभिन्न संस्थाओं जैसे, सतर्कता आयोग, लोक–पाल आदि के द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए।

यह भी अनुभव किया गया है कि सत्ता परिवर्तन होने, सरकारों के अस्थायित्व तथा मिले–जुले रूप और मन्त्रीयों के अज्ञान के कारण लोक–सेवक हावी हो जाते हैं। इटली, फ्रांस तथा भारत की 1967 की मिली–जुली सरकारों का अनुभव तथा भारत में जनता पार्टी का शासन नौकरशाही की बढ़ती हुई शक्तियों का परिचायक रहा है। अपने सम्बन्धों को छिपाने के लिए सरकारों के बनने से पूर्व पुरानी पत्रावलियों को जला दिया जाता है। इसका मूल–कारण मन्त्री लोक सेवक के मध्य स्वार्थपूर्ण सांठ–गांठ है। इस सांठ–गांठ का कारण यह दोषपूर्ण धारण है कि उनमें परस्पर पूर्ण निष्ठा, सहयोग या लगाव होना चाहिए। उनमें एकता व प्रतिबद्धता राजनीतिज्ञ का नौकरशाहीकरण तथा नौकरशाही तथा नौकरशाही का राजनीतिकरण करा देती है। उन दोनों में एक दूरी होती है, वह बनी रहनी चाहिए। इस दूरी को बनाये रखने का दायित्व प्रधानमंत्री और केबिनेट सचिव पर होता है।

मन्त्री द्वारा सचिव के बाहर विशेषज्ञ अधिकारियों को शामिल करने से एक ओर लोक–सेवक की तटस्थता बलवती बनेगी, दूसरी ओर मन्त्री की कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। फिर भी उनमें अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि लोक–सेवकों में एपलबी के शब्दों में "शासनिक भावना" हो, और उनका सत्ता के क्रियान्वयन के क्षेत्र में अधिकाधिक प्रत्यायोजन किया जाए। साथ ही मन्त्रियों में एक प्रशासनिक भावना (Espirit de-Corps) भी होना चाहिए। यदि राजनीतिक क्षेत्र में जैसा कि ग्रेट–ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरीका आदि देशों में होता है, मन्त्री को राजनीतिक कार्यकर्ता, विधायक, पार्षद, सांसद, समिति सदस्य आदि सीढ़ियों को क्रमशः पर कर मन्त्री बनाने परम्परा विकसित हो सके तो उस स्थिति में प्रशासन में नौकरशाही का काफी ज्ञान प्राप्त हो जाने की सम्भावना होगी। "प्रशासनिक भावना" मन्त्री के अति उत्साह, अहं और सन्तुलित कर देने क्षमता रखती है।

विभिन्न भ्रष्टाचार काण्डों के सन्दर्भ में मन्त्री लोक–सेवक सम्बन्ध एक जिज्ञासा, घृणा, शंका और अनैतिकता का विषय बन चुके हैं। इस विषय से विधान मण्डलों एवं समितियों, न्यायालयों तथा अन्य न्यायिक अभिकरणों, और स्वयं जनता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड़ा है। अतएव संसदीय स्तर एक "विशेषज्ञ समिति" बनायी जानी चाहिए, जो तब तक प्राप्त शासनिक एवं प्रशासनिक अनुभव के आधार पर मन्त्री लोक–सेवक सम्बन्धों को तीन वर्गों में विभाजित करें–

1. **प्रथम वर्ग में चार उपक्षेत्र हैं–**

1. **कानूनी दायित्व का क्षेत्रः** इसमें आने वाले विषयों के लिए मन्त्री तथा सचिव दोनों कानूनी रूप से उत्तरदायी हों,
2. **राजनीतिक दायित्व का क्षेत्रः** इसमें मन्त्री को मंत्रिमण्डलीय नीतियों के साथ संयुक्त किया जाए अर्थात् वह सबके साथ संयुक्त रूप से उत्तरदायी मानी जाए,
3. **विभागीय दायित्व का क्षेत्रः** इसमें मन्त्री अपने विभाग के लिए बनायी गई नीतियों के लिए, चाहे उनके निर्माण में सचिवों के परामर्श का योगदान रहा हो, उत्तरदायी रहें, किन्तु उसका उत्तरदायित्व राजनीतिक माना जाए तथा
4. **प्रशासनिक दायित्व का क्षेत्रः** इसमें सचिवों को नीतियों तथा स्पष्ट निर्णयों के अतिरिक्त किए गए कार्यों के लिए कानूनी एवं प्रशासनिक रूप से उत्तरदायी समझा जाए।

2. द्वितीय वर्ग में वाले परम्पराओं, परिपाटिओं, रिवाजों आदि के रूप में स्पष्ट किए जाए। ये विभागिय मानकों को अभिव्यक्त करता है। इन्हें सामान्य रूप से चलने दिया जाए, किन्तु उनके दुष्परिणामों के लिए सचिव को उत्तरदायी ठहराया जाए। इन्हें सचिव कि लिए कानूनी रूप से बाध्य मानना आवश्यक नहीं है।
3. तृतीय वर्ग में स्वविवेक एवं विधि विषयों को शामिल किया जाए। इनको सदिच्छा बने रहने तक विशेषाधिकार के रूप में सभी के हस्तक्षेपों से मुक्त रखा जाए। सभी सम्बद्ध पक्षों को उनके विषय में अधिक पूछताछ या घुसपैठ करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

1.2.4 निष्कर्षः–

निःसन्देह इस प्रकार का वर्गीकरण व्यवहार में किया जाना कठिन है, किन्तु इस योजना को मूर्त–रूप देना असम्भव नहीं है। आज राजनीति प्रशासन को ही आच्छादित कर रही। उसकी गतिविधियां इतनी अधिक व्यापक व जटिल हो गई है कि मन्त्री एक बालक से समान 'हां' या 'नां' करने के लिए विवश हो गया है। उसकी 'हां' या 'नां' के परिणाम इतने अधिक प्रभावशाली हो गये हैं कि सम्बद्ध पहले से ही ज्ञात होना चाहिए कि कौन कितनी मात्रा में और किस स्तर पर उन निर्णयों के लिए उत्तरदायी है। संसदीय शासन व्यवस्था, विकास की आवश्यकताएं, तथा क्रियाविधि–उन्मुख प्रशासन ऐसे वर्गीकरण की मांग करते हैं। इससे न केवल लोक–सेवकों की मन्त्री के साथ अपने सम्बन्धों के स्वस्थ विकास में सहायता मिलेगी, अपितु विभिन्न न्यायिक एवं अर्द्ध न्यायिक निकायों की जांच के समय उत्तरदायित्वों का निर्धारित करने में सुविधा होगी एक ओर विधान मण्डल, मन्त्री के प्रति अधिक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपना सकेंगे, तो दूसरी ओर सामान्य जनता को मन्त्री तथा लोक सेवक से अपेक्षा रखते समय निराशाओं का सामना नहीं करना पड़ेगा। यदि इसे "कौन क्या कर सकते हैं?" कार्यक्रम के अन्तर्गत सामाजिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण विषय बना लिया जाए तो अनेक प्रशासनिक व्याधियों से छूटकारा पाया जा सकता है। अब समय आ गया है कि सार्वजनिक हित में मंत्री लोक–सेवक सम्बन्धों का कानूनी निर्धारण किया जाए तथा उनके मध्य सम्बन्धों की समस्या का समाधान किया जाए।

इसी तरह सन्दर्भ में प्रशासनिक सुधार आयोग ने भारत सरकार कि प्रशासनिक तंत्र के सम्बन्ध में कतिपय महत्वपूर्ण सिफारिशें रखी हैं–

1. जहां सरकार की नीति स्पष्ट न हो या नीति से हटना पड़े या मन्त्री किसी महत्वपूर्ण मामले में सचिव से विमत हो, ऐसे सभी निर्णयों के कारण सहित संक्षेप में लिखा जाना चाहिए,
2. मन्त्री को वरिष्ठ अधिकारियों के मध्य निडरता तथा न्याय का वातावरण विकसित करना चाहिए तथा उन्हें स्पष्ट और निष्पक्ष परामर्श देने के लिए उत्साहित करना चाहिए। उन्हें अपने आदेश एवं नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए सचिवों का मार्ग निर्देशन भी करना चाहिए,
3. प्रधानमन्त्री को चाहिए कि वह मन्त्री तथा लोक–सेवक के मध्य अस्वस्थ्य व्यक्तिगत निष्ठा या लगाव के विकास को रोकने का प्रयास करे।
4. मन्त्री को चाहिए कि वह गम्भीर अन्याय, भारी चूक या कुशासन के मामलों को छोड़कर, दिन–प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप न करे। जहां कोई नागरिक प्रार्थना या शिकायत नियम, कार्यविधि या नीति में परिवर्तन की मांग करती है, वहां ऐसे व्यक्तिगत मामले में ढ़ील देने की बजाय उन पर पुनर्विचार करके परिवर्तन किया जाना चाहिए।
5. सचिवों तथा अन्य लोक–सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि वे मन्त्रियों की कठिनाईयों को अच्छी तरह से समझें तथा उनके प्रति अधिक जागरूकता दिखलावें। वे एक ओर तो छोटे सामान्जस्य तथा दूसरी ओर सेवाओं की कार्य–कुशलता एवं मनोबल पर दूरगामी प्रभाव डालने वाले आधारभूत नियमों में परिवर्तन के बीच अन्तर करना सीखें,
6. सचिव का मन्त्री के प्रति सरकारी सम्बन्ध निष्ठा का तथा मन्त्री का सचिव के प्रति विश्वास होना चाहिए।

1.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. लेक सेवक
2. मन्त्री
3. लोक प्रशासन
4. कार्य संस्कृति

1.2.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. लोक सेवक किसे कहते है?
2. कार्य संस्कृति से क्या अभिप्राय है?
3. मंत्री–लोक सम्बन्धों में कोई दो रूकावट बताइए।

(दीर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारतीय प्रशासन में मंत्री–लोक सेवक सम्बन्धों पर विस्तृत नोट लिखिए तथा आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मंत्रीयों को विशिष्ट ज्ञान ना होना प्रशासनिक सफलता के रास्ते में रूकावट के तौर पर देखा जाता है, इस विषय पर अपने आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।

सन्दर्भ सूची

1. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
2. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
3. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
4. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
5. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
6. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
7. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
8. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
9. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
10. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
11. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
12. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
13. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
14. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
15. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

इकाई–2

वित्तिय प्रशाासनः बजट और बजट निर्माण

2.0 इकाई का परिचयः–

आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों के रूप में भारत के सम्बन्ध में वित्तियप्रशासन महत्वपूर्ण बिन्दू हैं। सरकार का वित्तिय बजट निर्माण विभिन्न मंत्रालयों का सामूहिक प्रयास होता है और उसमें सरकार का देश के प्रति विचार नजर आता है कि वो देश को किस तरफ से जाना चाहते हैं। भारत में बजट निर्माण को प्रक्रिया व्यवस्थित तथा अपने आप में पूर्णता की परिचालक है। परम्परागत बजट के अलावा इसमें निष्पादक बजट और कार्यक्रम बजट की भावना पीड़ित है। सरकार का मुख्य ध्यान वित पर संसदीय नियन्त्रण से भी अभिप्ररित है कि जनता के की से लिया गया पैसा सरकारी भ्रष्टाचार का शिकार न हो जाए। इस इकाई में हम यह सब चर्च करेगें।

बजट को तैयार करने का कार्य आगामी वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने से छः या आठ मास पूर्व हो जाता है। भारत में वित्तीय वर्ष प्रथम अप्रैल से शुरू होता है अतएव अगस्त–सितम्बर के मास से बजट की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। वित्त मन्त्रालय जुलाई–अगस्त के महीने में विभिन्न विभागों के अध्यक्षों को आय एवं व्यय के प्राक्कलन अलग–अलग तैयार करने के लिए नियत फार्म भेज देता है। विभागाध्यक्ष इन फार्मों को भुगतान अधिकारियों के पास भेज देता है जो प्रारम्भिक प्राक्कलन तैयार करते हैं। प्राक्कलन तैयार करने का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है। पी० के० वाटल (P. K. Wattal) के शब्दों में, "यह एक सरल गणितीय प्रक्रिया नहीं है, जिसमें पिछले वर्षों का औसत निकालकर सुरक्षित आँकड़े रख देते हैं, जो पिछले साल की पुनरावृति से प्रतीत हों। इन आंकड़ों की पृष्ठभूमि में प्रशासन की वास्तविकता विद्यमान रहती है, किसी भी वर्ष की स्थितियाँ बिल्कुल दूसरे वर्ष जैसी नहीं होती और फिर भी वे नितांत असमान भी नहीं होती। इसलिए समानताओं और असमानताओं का मूल्य आंकने में अपनी निर्णायक शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है और उनका उचित औसत निकालना होता है।" अतएव प्राक्कलनों को तैयार करने में प्रत्येक सावधानी बरती जानी चाहिए। प्राक्कलन तैयार करते समय भुगतान अधिकारियों को निर्धारित फार्म के चार खाने भरने होते हैं–

1. पिछले साल के वास्तविक आँकड़े,
2. चालू वर्ष के लिए स्वीकृत प्राक्कलन,
3. चालू वर्ष के संशोधित प्राक्कलन एवं
4. आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन।

इन प्राक्कलनों को तीन भागों अर्थात् भाग I, भाग IIA, तथा भाग IIB, में तैयार किया जाता है। भाग I राजस्व एवं स्थायी खर्चों जैसे स्थायी कर्मचारी, यात्रा भत्तों आदि से सम्बन्धित होता है। भाग IIA चालू योजनाओं जैसे सामग्री क्रय से सम्बन्धित होता है। भाग IIB पूर्णतः व्यय की गई योजनाओं से सम्बन्धित होता है।

कभी–कभी बजट प्राक्कलनों तथा वास्तविक व्यय की धनराशि में काफी अन्तर होता है। इसके दो महत्वपूर्ण कारण है। प्रथम, प्राक्कलन कोई अठारह मास पूर्व तैयार किए जाते हैं, दूसरे, भारतीय अर्थव्यवस्था मानसून पर निर्भर करती है और प्राक्कलन मानसून से काफी पूर्व तैयार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा श्री अशोक चन्दा ने कहा है, "नयी प्रयोजनाओं को बजट में शामिल करते समय उनके प्राक्कलन तैयार करना प्रायः कठिन कार्य है। दिए हुए प्राक्कलन प्रायः अन्दाजन लिखे जाते हैं– किसी ठोस और विधेयात्मक आधार नहीं। फिर भी बजट में शामिलन करने के लिए जब तक वित्त मन्त्रालय को कुछ आंकड़े नहीं भेजे जाते, योजना को परिपक्कव होने पर क्रियान्वित नहीं किया जा सकेगा।"

2.1 उदेश्यः–

1. वित्तिय प्रशासन के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना ताकि भारत जैसे विकासशील देश में जनता के कर से इक्कठा हुआ पैसा ठिक जगह पर प्रयोग किया जा सके।
2. भारत में बजट निर्माण प्रकिया की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
3. निष्पादक बजट व कार्यक्रम बजट की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करना।
4. सरकार विधानपालिका तथा कार्यपालिका द्वारा सरकारी वित पर कैसे नियन्त्रण रखती है, इसकी जानकारी से अवगत होना।
5. सरकार की उन समितियों की जानकारी प्राप्त करना जो सरकारी वित पर नियन्त्रण रखने में सहयोग करती है।
6. संसद में बजट पास करने की प्रकिया को कैसे व्यवस्थित किया गया है, उसकी जानकारी प्राप्त करना।

2.2

वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration)

2.2.1 परिचयः–

प्रशासन तथा वित्त शरीर और उसकी छाया की भाँति जुड़े हैं। सभी प्रशासकीय कार्यों में धन व्यय होता है, क्योंकि प्रशासकीय कृत्यों के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति तो आवश्यक ही है। प्रशासकीय इंजन का ईंधन वित्त है। पहले का परिचालन दूसरे के बिना असम्भव है। अतः **कौटिल्य** ने ठीक ही कहा हैः "सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं।" अतः कोषागार (Treasury) पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

दृढ़ वित्तीय व्यवस्था का शासन के लिए बहुत महत्व है। राजस्व निर्धन नागरिक से भी प्राप्त किया जाता है अतः सरकार का नैतिक कर्त्तव्य है कि उस धन की कुशलता तथा मितव्ययता से व्यय करे। अकुशल वित्तीय व्यवस्था के कारण शासन जनता से दूर हो जाता है और अन्त में शासन का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है। प्रजातन्त्र में ठोस वित्तीय व्यवस्था के पक्ष में निश्चित भावना होनी चाहिए। इसके अभाव में अपव्यय तथा अन्य बुरी बातों का दोष जनता प्रजातन्त्र पर ही मढ़ देती है और परिणाम यह होता है कि जनता ऐसे प्रजातन्त्र से ही घृणा करने लगती है। इस प्रकार का वित्तीय प्रशासन स्वयं प्रजातन्त्र के भविष्य पर तुषारापात कर देता है। एक अन्य बात भी है जिसके कारण वित्तीय प्रशासन का आज बड़ा महत्व है। आधुनिक समय में शासकीय व्यय में असाधारण वृद्धि के कारण यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी उत्तम सिद्धान्तों, उपकरणों एवं पद्धति का विकास किया जाए एवं हर शासन द्वारा उनका पालन किया जाना चाहिए। वित्तीय प्रशासन बड़े निकट से जनता के सामाजिक–आर्थिक आचरण को प्रभावित करता है। टॉस्क फोर्स (Task Force), **हूवर कमीशन** के शब्दों में, "आधुनिक शासन के अन्तःस्थल तक पहुँच गया है।" बजट सार्वजनिक नीति के नट और बोल्ट है।

निष्पादकीय प्रबन्धन तथा विधायी नियन्त्रण का सबसे महन्वपूर्ण उपकरण होने के साथ ही बजट वित्तीय प्रशासन का प्रधान उपादान है। इस दृष्टि से यह प्रजातान्त्रिक सरकार का आधार कहा जा सकता है। बजट बनाते समय वित्तीय निर्णय करने के दौरान सर्वाधिक प्रश्न नीति विषयक होते हैं। यदि शब्द विन्यास किया जाए तो 'Budget' शब्द की उत्पत्ति पुराने अंग्रेजी शब्द

Bougette से हुई है जिसका अर्थ है थैला या झोला, जिसमें से ब्रिटेन का राजकोष महामात्र (Chancellor of the Exchequer), शासन की आगामी वर्ष की वित्तीय योजना के कागजात संसद के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु, निकाला करता था। अब 'बजट' शब्द वित्तीय कागजात का निर्देश करता है, न कि झोला इत्यादि का।

2.2.2 उदेश्यः–

1. वितिय प्रशासन की जानकारी प्राप्त करना।
2. भारत में बजट निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करना।
3. भारत व इग्लैंण्ड के बजट निर्माण प्रक्रिया की विशेषताओं की तुलनात्मक जानकारी प्राप्त करना।
4. भारत में बजट पास करने के चरणों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
5. वित पर सरकारी नियन्त्रण के संस्थानों की जानकारी प्राप्त करना।

2.2.3 वित्तिय प्रशासन : बजट और बजट निर्माण :–

वित्तीय प्रशासन में वे समस्त क्रियाएं आती हैं जो लोक सेवाओं पर व्यय हेतु आवश्यक धनराशी की प्राप्ति, व्यय तथा लेखांकन से सम्बन्ध रखती हैं। ये क्रियाएं एक नियन्त्रण श्रृंखला के रूप में कार्य करती हैं तथा निम्नलिखित अभिकरणों द्वारा सम्पादित होती हैंः

1. कार्यपालिका (Executive), जिसे धन की आवश्यकता होती है।
2. विधानमण्डल (Legislature), जिसे अकेले ही धनराशी को स्वीकार करने का अधिकार होता है।
3. वित्त मन्त्रालय (Ministry of Finance) (या ब्रिटेन में कोषागार), जो विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत धनराशी के व्यय पर नियन्त्रण रखता है।

कार्यपालिका तथा विधानमण्डल

इन विभिन्न अभिकरणों का कार्य योजना बनाना, निश्चय करना, निष्पादन तथा नियन्त्रण करना है। कार्यपालिका शाखा द्वारा वर्षभर के लिए अपना कार्यक्रम बना लिया जाता है, और वही विधानमण्डल को सरकार की वार्षिक वित्तीय आवश्यकताओं के बारे में सूचित करती है। इस प्रकार बजट बनाने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका का है। "क्राउन द्वारा द्रव्य की माँग की जाती है" (The Crown Demands The Money)। इससे कार्यपालिका के बजट सम्बन्धी दायित्व स्पष्ट हो जाते हैं। विधानमण्डल धनराशी उपलब्ध कराने तथा उसका अनुदान करने वाली संस्था है। संसदीय सरकार में कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के बीच कैसे वित्तीय सम्बन्ध होने चाहिए, इस

पर **सर थॉमस एर्स्किन मे** (Sir Thomas Erskine May) ने उत्तम ढंग से प्रकाश डाला है। उनका कथन है:

"क्राउन जो अपने उत्तरदायी मन्त्रियों की मन्त्रणा से कार्य करता है, कार्यपालिका शक्ति होने के नाते देश में समस्त राज्स्व का प्रधान तथा लोक सेवा के लिए सभी देशों का प्रभारी है। इस प्रकार क्राउन प्रथमावस्था में तो कॉमन्स सभा (House of Commons) को शासन की धन सम्बन्धी आवश्यकताओं से अवगत कराता है और कॉमन्स सभा उन प्रदायों एवं अनुदानों को स्वीकार करती है जो इन माँगों की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं तथा करों एवं सार्वजनिक आय के अन्य साधनों द्वारा वह ऐसे उपाय व साधनों का प्रबन्ध करती है जिनसे स्वीकृत माँगों की पूर्ति की जा सके। इस प्रकार क्राउन द्रव्य की माँग करता है, कॉमन्स सभा उसको स्वीकार करती है, और लॉर्ड सभा (House of Lords) उस स्वीकृति पर अनुमति प्रदान करती है। किन्तु कॉमन्स सभा द्रव्य के लिए उस समय तक मतदान नहीं करती जब तक क्राउन उसकी माँग नहीं करता, और न वह उस समय तक कर ही लगाती है या उनमें वृद्धि करती है जब तक कि क्राउन अपने संवैधानिक परामर्शदाताओं के माध्यम से उसे जनहित के लिए आवश्यक घोषित न कर दे।

भारत में यही स्थिति है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के समक्ष वित्तीय वर्ष के लिए भारत सरकार के व्यय तथा अनुमानित आय का एक वितरण प्रस्तुत कराता है। इसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहते हैं। इसमें भारत की संचित निधि (Consoladated Fund) पर व्यय–भार वाली धनराशियों तथा अन्य व्ययों हेतु आवश्यक धनराशियों का उल्लेख होता है। संचित निधि पर व्यय–भार के लिए मतदान नहीं होता है, किन्तु शेष व्ययों पर मतदान होता है। मतदान वाले अनुमानों (Estimates) को लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। लोकसभा को अनुदान की अनुमति देने और उन्हें अस्वीकार या कम करने का अधिकार है। अनुदानों तथा कर–प्रस्तावों के सम्बन्ध में सभी माँगें कार्यपालिका प्रस्तुत करती है, व्ययों की स्वीकृति केवल संसद द्वारा ही दी जा सकती है। यह पवित्र सिद्धान्त 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' (No Taxation Without Representation) के विचार में निहित है। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में करदाता के हितों तथा अधिकारों की अभिरक्षा के लिए भारतीय संविधान में तीन मूलभूत प्रावधान किये गए हैं:

1. कोई भी कर कानून की सत्ता के बिना नहीं लगाया जा सकता और न एकत्र ही किया जा सकता है। 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' का यही प्रसिद्ध सिद्धान्त है।
2. सार्वजनिक कोष में से कोई भी व्यय तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि वह संविधान में बताए गए तरीके के अनुरूप तथा विधि के अनुसार न हो; अर्थात् जब तक संसद ने उसका अनुमोदन न कर दिया हो तब तक कोई व्यय नहीं किया जा सकता।

3. संसद द्वारा स्वीकृत नीति के अनुसार ही धन का व्यय करने के लिए कार्यपालिका बाध्य है। संसद यह नियन्त्रण लेखा नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General) के माध्यम से करती है।

वित्त मन्त्रालय

वित्त मन्त्रालय सरकार के वित्त का प्रशासन करता है। वस्तुतः वित्तीय प्रशासन का सम्पूर्ण ताना–बाना इसी मन्त्रालय के चारों ओर बुना हुआ है। वित्त मन्त्रालय का यह उत्तरदायित्व है कि वह अन्य प्रशासकीय मन्त्रालयों के साथ परामर्श करके 'वार्षिक वित्तीय विवरण' तैयार करे। बजट पर संसद का अनुमोदन प्राप्त हो जाने के पश्चात् वित्त मन्त्रालय सरकार के सम्पूर्ण व्यय का नियन्त्रण करता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा सार्वजनिक धन के व्यय में मितव्ययता बरती जाए।

लेखा–परीक्षण

द्रव्य का व्यय हो चुकने के पश्चात् सम्पूर्ण व्यय पर एक स्वतन्त्र लेखा–परीक्षण (Audit) के द्वारा सर्चलाइट रूपी दृष्टि डाली जाती है अर्थात् उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है ताकि व्यय की वैधता तथा औचित्य का निर्धारण किया जा सके। यह जानने के लिए कि संसद के आदेशों का पालन किया गया है या नहीं, यदि कोई प्रभावशाली व्यवस्थ न की जाए तो कर लगाने तथा व्यय स्वीकार करने के सम्बन्ध में संसदीय अनुमोदन का कोई अर्थ नहीं रह जाता न उसका कोई मूल्य ही है। स्वतन्त्र लेखा–परीक्षण यही ज्ञात करने की युक्ति है। शासकीय अनुदानों पर संसद द्वारा मतदान कर चुकाने पर लेखा–नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक निरीक्षक करता है और यह देखता है कि विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) में स्वीकृत अनुमानित मद के अनुसार ही व्यय किया गया है या नहीं। दूसरे, वह यह भी देखता है कि व्यय की राशि स्वीकृत धनराशि से अधिक तो नहीं है। लेखा–नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक कार्यपालिका से स्वतन्त्र रहकर कार्य करता है। यह केवल संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। इस अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह जनता की प्रतिनिधि को उन व्ययों के विषय में सूचना दे दे जो संसद के घोषित मन्तव्यों के अनुरूप नहीं हैं, और अनुदान के दुरूपयोग पर प्रकाश डालें।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो कार्यपालिका से स्वतन्त्र एक ऐसी संस्था के रूप में, जो प्रत्यक्षतः संसद के समक्ष ही प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, लेखा–परीक्षक का उद्भव सर्वप्रथम ब्रिटेन में 1866 में उस समय हुआ था जब राजकोष एवं लेखा–परीक्षा विभाग अधिनियम (Exchequer and Audit Department Act) पारित किया गया था। भारत में स्वतन्त्र लेखा–परीक्षण का प्रश्न सर्वप्रथम 1912 में उठा था। **सर गाई फ्लीटवुड विल्सन** (Sir Guy Fleetwood Wilson) ने, जिनके पास उन दिनों भारतीय वित्त का दायित्व था, महालेखापरीक्षक को कार्यपालिका से स्वतन्त्र रखने सम्बन्धी

तर्क प्रस्तुत किए थे। उन्होंने दृढतापूर्वक कहा था कि "ईमानदार एवं सुद्ढ वित्त हमारे अस्तित्व के लिए सदैव ही आवश्यक रहा है, और ऐसे ईमानदार तथा दृढ़ वित्त को सुनिश्चित करने का एकमात्र मार्ग यह है कि व्यय की जाँच स्वतन्त्र लेखा–परीक्षक के अधीन होनी चाहिए। यह विचार भारत सरकार के द्वारा प्रस्तुत विचार के विपरित होते हुए भी भारत सचिव को अधिक उपयुक्त हुआ था। सम्भवतः इसी कारण 1913 से भारत में लेखा–परीक्षण की स्वतन्त्रता सामान्य रूप से मान्य है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 से 151 लेखा नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक के कार्यों तथा स्थिति को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। लेखा–नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक केवल संसद के प्रति उत्तरदायी हैं।"

लेखा–नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक अपने प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करता है, जो "उन्हें संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखने के उत्तरदायी है। समयाभाव के कारण संसद केन्द्रीय सरकार के सभी लेखाओं (Accounts) की जटिलताओं को समझने, उनके विषय में महालेखापरीक्षक की टिप्पणीयों पर ध्यान देने तथा नीतियों के क्रियान्वयन के दौरान सरकार के द्वारा प्रयुक्त मितव्ययता तथा कार्यकुशलता पर समुचित ध्यान देने में असमर्थ रहती है। फलस्वरूप, संसद ने दे समितियों–लोग लेखा समिति (Public Accounts Committee), तथा अनुमान समिति (Estimates Committee)– का निर्माण किया है। वित्तीय प्रशासन की संरचना में लोक लेखा समिति का कार्य अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों के प्रकाश में यह निम्नलिखित बातों की पुष्टि से केन्द्रीय सरकार के लेखाओं का परीक्षण करती है:

1. लेखाओं में जाम भुगतान दिखाया गया है, क्या वह उस सेवा या प्रयोजन के लिए ही है जिसके कारण वह धन खर्च किया गया है, तथा वैध रूप से प्राप्य है और उपयोग किया गया है; तथा
2. क्या व्यय उस सत्ता के अनुरूप है जो उसको नियन्त्रित करती है?

अनुमान समिति को हम 'एक निरन्तर मितव्ययता समिति' कह सकते हैं। यह सरकार के उद्देश्यों तथा नीति के अधीन व्यय सम्बन्धी मितव्ययता का झुकाव देती है। आगे इन दोनों समितियों पर चर्चा की जाएगी।

बजट (Budget)

निष्पादकीय प्रबन्धन तथा विधायी नियन्त्रण का सबसे महन्वपूर्ण उपकरण होने के साथ ही बजट वित्तीय प्रशासन का प्रधान उपादान है। इस दृष्टि से यह प्रजातान्त्रिक सरकार का आधार कहा जा सकता है। बजट बनाते समय वित्तीय निर्णय करने के दौरान सर्वाधिक प्रश्न नीति विषयक होते हैं। यदि शब्द विन्यास किया जाए तो 'Budget' शब्द की उत्पत्ति पुराने अंग्रेजी शब्द *Bougette* से हुई है जिसका अर्थ है थैला या झोला, जिसमें से ब्रिटेन का राजकोष महामात्र

(Chancellor of the Exchequer), शासन की आगामी वर्ष की वित्तीय योजना के कागजात संसद के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु, निकाला करता था। अब 'बजट' शब्द वित्तीय कागजात का निर्देश करता है, न कि झोला इत्यादि का।

उत्तर–मध्य युग में बजट प्रणाली का विकास हुआ था। इस काल में इंग्लैण्ड तथा यूरोप में स्वेच्छारी शासन–पद्धति पायी जाती थी। बजट राजस्व तथा व्यय का विवरण होता था, परन्तु वह राजा का व्यक्तिगत विषय तथा राजकीय रहस्य माना जाता था। इसका कारण यह था कि राजस्व राजा की अपनी ही भू–सम्पदा से प्राप्त होता था। परन्तु युद्धकाल में करों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता था। फलस्वरूप, ऐसे समय में अमीरों को राजस्व साधनों पर, विशेषतः युद्ध पर, अपने विचार तथा प्रक्रियाएं प्रकट करने का अवसर राजा द्वारा प्रदान किया जाता था। 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' के सिद्धान्त को 1688 की क्रान्ति के समय ही मान्यता प्राप्त हुई थी। किन्तु उस समय सभी प्रशासकीय व्यय संसदीय नियन्त्रण के अधीन नहीं थे। वित्त पर पूर्ण विधायी नियन्त्रण तो इसी शताब्दी में स्थापित हुआ है। इस प्रकार, वित्तीय निर्देशन तथा नियन्त्रण के केन्द्रीय उपकरण के रूप में बजट की अवधारणा अपेक्षाकृत नवीन है।

बजट प्रणाली कुशल राजस्व (Fiscal) प्रबन्ध का आधार है। समाज–विज्ञान विश्वकोश (Encyclopaedia os Social Science) के अनुसार, "बजट प्रणाली का वास्तविक महत्त्व इस कारण है कि यह किसी सरकार के वित्तीय मामलो के क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था करता है।" राजस्व सम्बन्धी प्रबन्ध में अनेक क्रियाओं की एक निरन्तर श्रृंखला रहती है, जैसे राजस्व तथा व्यय का अनुमान, राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों का लेखा, लेखा–परीक्षण तथा प्रतिवेदन। इन क्रियाओं का संचालन किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन **डब्ल्यू० एफ० विलोबी** ने इस प्रकार किया है: "पहले तो एक निश्चित समय–प्रायः एक वर्ष के लिए सरकारी प्रशासन को ठीक चलाने हेतु जिन व्ययों की आवश्यकता होती है, उनका अनुमान लगाया जाता है, और इन व्ययों की पूर्ति हेतु धन के प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं। इस अनुमान के आधार पर राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम पारित किए जाते हैं, जो स्वीकृत कार्यों के लिए वैध अधिकार प्रदान करते हैं। इसके आधार पर निभिन्न कार्यरत विभागों द्वारा राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों के अनुसार राजस्व एवं विनियोजन लेखे खोले जाते हैं, और इस प्रकार स्वीकृत द्रव्य का व्यय प्रारम्भ होता है। लेखा–परीक्षण तथा लेखा–विभाग यह देखने के लिए इन लेखाओं का परीक्षण करता है कि वे ठीक हैं या नहीं, वास्तविक तथ्यों से संगति रखते हैं या नहीं, और विधि के सभी प्रावधानों के अनुरूप हैं या नहीं। तदुपरान्त इन लेखाओं से प्राप्त सूचनाओं का सारांश निकाला जाता है और प्रतिवेदनों के रूप में उनको प्रकाशित किया जाता है। अन्त में इसके आधार पर अगले वर्ष के लिए नए अनुमान तैयार किए जाते हैं, और फिर वही चक्र पुनः आरम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया में बजट ही वह तन्त्र है जिसके द्वारा एक ही समय में कई क्रियाएं पारस्परिक रूप से सम्बन्ध की जाती हैं, और अनकी तुलना तथा परीक्षा की जाती है। इस प्रकार बजट राजस्वों तथा व्ययों का

अनुमान मात्र न होकर कुछ और अधिक होता है। यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा प्रस्ताव, एक प्रलेख होना चाहिए जिसके माध्यम से मुख्य कार्यपालिका, जो सरकारी प्रशासन के वास्तविक संचालन के लिए उत्तरदायी सत्ता है, धन एकत्र करने तथा विधियों को स्वीकार करने वाली सत्ता (संसद) के समक्ष इस आशय का सम्पूर्ण प्रतिवेदन उपस्थित करती है कि किस ढंग से उसने तथा उसके अधीनस्थों ने विगत वर्ष के दौरान प्रशासनिक कार्य किया है। साथ ही साथ, वह सार्वजनिक कोषागार की वर्तमान दशा का एक विवरण भी प्रस्तुत करती है। इस सूचना के आधार पर कार्यपालिका आगामी वर्ष के लिए अपना कार्यक्रम बनाना प्रारम्भ करती है, और ऐसे कार्यों के लिए वित्तीय प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करती है।

अतः बजट कार्य सम्बन्धी एक योजना है। वह आगामी वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम को प्रतिबिम्बित तथा स्पष्ट करता है। यह सरकार के राजस्व तथा व्यय के वितरण मात्र से कहीं अधिक व्यापक वस्तु है। इसके तीन कार्य हैः नियन्त्रण, प्रबन्धन और नियोजन।

भारत में बजट निर्माण प्रक्रिया

(Budgetary Process in India)

किसी भी देश की बजटीय प्रक्रिया में चार भिन्न क्रियाएं निहित होती हैं–

1. बजट की तैयारी अर्थात् आगामी वित्त वर्ष के लिए आय–व्यय के प्राक्कलन तैयार करना;
2. बजट का विधिकरण अर्थात् राजस्व अधिनियमों एवं विनियोग अधिनियमों के रूप में विधानमण्डल द्वारा इसकी स्वीकृति;
3. बजट का क्रियान्वयन अर्थात् राजस्व अधिनियमों एवं विनियोग अधिनियमों को लागू करना; दूसरे शब्दों में टैक्सों को इकट्ठा करना तथा व्यय करना जैसा संसद ने अधिकृत किया है; तथा
4. बजट का विधायी नियंत्रण अर्थात् विधानमण्डल की ओर से लेखा परीक्षा द्वारा वित्तीय क्रियाओं की समीक्षा एवं उनका नियंत्रण।

इस अध्याय में प्रथम तीन क्रियाओं का अण्ययन किया जाएगा। चौथी प्रक्रिया का वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

भारत में बजट निमार्ण

(The Preparation of Budget in India)

बजट निर्माण में निम्नलिखित क्रियाएं क्रमशः निहित हैं–

1. भुगतान अधिकारियों द्वारा प्रारम्भिक प्राक्कलन तैयार करना;

2. नियंत्रण अधिकारियों द्वारा इन प्राक्कलनों की समीक्षा एवं छानबीन;
3. प्रशासकीय विभाग एवं महालेखाकार द्वारा संशोधित प्राक्कलनों की छानबीन एवं समीक्षा;
4. इन संशोधित प्राक्कलनों की वित्त विभाग द्वारा छानबीन एवं समीक्षा;
5. मंत्रिमण्डल द्वारा इन एकत्रित प्राक्कलनों पर अन्तिम विचार।

1. **भुगतान अधिकारियों द्वारा तैयारी (Preparation by the Disbursing Officers)**: बजट को तैयार करने का कार्य आगामी वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने से छः या आठ मास पूर्व हो जाता है। भारत में वित्तीय वर्ष प्रथम अप्रैल से शुरू होता है अतएव अगस्त–सितम्बर के मास से बजट की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। वित्त मन्त्रालय जुलाई–अगस्त के महीने में विभिन्न विभागों के अध्यक्षों को आय एवं व्यय के प्राक्कलन अलग–अलग तैयार करने के लिए नियत फार्म भेज देता है। विभागाध्यक्ष इन फार्मों को भुगतान अधिकारियों के पास भेज देता है जो प्रारम्भिक प्राक्कलन तैयार करते हैं। प्राक्कलन तैयार करने का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है। पी० के० वाटल (P. K. Wattal) के शब्दों में, "यह एक सरल गणितीय प्रक्रिया नहीं है, जिसमें पिछले वर्षों का औसत निकालकर सुरक्षित आँकड़े रख देते हैं, जो पिछले साल की पुनरावृति से प्रतीत हों। इन आंकड़ों की पृष्ठभूमि में प्रशासन की वास्तविकता विद्यमान रहती है, किसी भी वर्ष की स्थितियाँ बिल्कुल दूसरे वर्ष जैसी नहीं होती और फिर भी वे नितांत असमान भी नहीं होती। इसलिए समानताओं और असमानताओं का मूल्य आंकने में अपनी निर्णायक शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है और उनका उचित औसत निकालना होता है।" अतएव प्राक्कलनों को तैयार करने में प्रत्येक सावधानी बरती जानी चाहिए। प्राक्कलन तैयार करते समय भुगतान अधिकारियों को निर्धारित फार्म के चार खाने भरने होते हैं–
   1. पिछले साल के वास्तविक आँकड़े,
   2. चालू वर्ष के लिए स्वीकृत प्राक्कलन,
   3. चालू वर्ष के संशोधित प्राक्कलन एवं
   4. आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन।

   इन प्राक्कलनों को तीन भागों अर्थात् भाग I, भाग IIA, तथा भाग IIB, में तैयार किया जाता है। भाग I राजस्व एवं स्थायी खर्चों जैसे स्थायी कर्मचारी, यात्रा भत्तों आदि से सम्बन्धित होता है। भाग IIA चालू योजनाओं जैसे सामग्री क्रय से सम्बन्धित होता है। भाग IIB पूर्णतः व्यय की गई योजनाओं से सम्बन्धित होता है।

कभी–कभी बजट प्राक्कलनों तथा वास्तविक व्यय की धनराशि में काफी अन्तर होता है। इसके दो महत्वपूर्ण कारण है। प्रथम, प्राक्कलन कोई अठारह मास पूर्व तैयार किए जाते हैं, दूसरे, भारतीय अर्थव्यवस्था मानसून पर निर्भर करती है और प्राक्कलन मानसून से काफी पूर्व तैयार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा श्री अशोक चन्दा ने कहा है, "नयी

प्रयोजनाओं को बजट में शामिल करते समय उनके प्राक्कलन तैयार करना प्रायः कठिन कार्य है। दिए हुए प्राक्कलन प्रायः अन्दाजन लिखे जाते हैं– किसी ठोस और विधेयात्मक आधार नहीं। फिर भी बजट में शामिलन करने के लिए जब तक वित्त मन्त्रालय को कुछ आंकड़े नहीं भेजे जाते, योजना को परिपक्कव होने पर क्रियान्वित नहीं किया जा सकेगा।"

2. **नियंत्रण अधिकारियों द्वारा समीक्षा (Scrutiny and Review by Controlling Officers):** स्थानीय अधिकारी अपने प्राक्कलनों को अपने–अपने नियंत्रण अधिकारियों को समीक्षा एवं जाँच–पड़ताल हेतु भेजते हैं। यह समीक्षा पूर्णतः प्रशासकीय ढंग की होती है। नियंत्रण अधिकारी अपने विभाग के विभिन्न प्रभागों और शाखाओं द्वारा भेजे गए प्रस्तावों के सापेक्ष महत्व की जाँच करता है ताकि इनको विभाग के लिए संभावित अनुदान के प्रकाश में नए व्यय के अन्तर्गत शामिल किया जा सके। अतएव वह उन प्रस्तावों में से कुछ को स्वीकार कर लेता है तो कुछ को नामंजूर कर देता है। तदुपरान्त वह अपने विभाग के प्राक्कलनों को इकट्ठा करता है और अक्टूबर के प्रारम्भ तक इन्हें बजट अधिकारियों के पास पहुंचा देता है।
3. **महालेखाकार तथा प्रशासकीय विभाग द्वारा समीक्षा (Scrutiny and Review by the Accountant-General and the Administrative Department):** नियंत्रक अधिकारियों से प्राक्कलन फार्मों के आ जाने के बाद, प्राक्कलनों का पार्ट। जो राजस्व एवं स्थायी व्यय से सम्बन्धित होता है महालेखाकार तथा सामान्य प्रशासन विभाग को समीक्षा हेतु चला जाता है। सामान्य समीक्षा के अतिरिक्त, महालेखाकार का कार्यालय ऋण, निक्षेप जमा और विप्रेषण (Remittances) शीर्षकों के अधीन प्राक्कलनों को भी तैयार करता है। नवम्बर के मध्य तक ये प्राक्कलन वित्त मंत्रालय के बजट विभाग को पहुंच जाते हैं।
4. **वित्त मंत्रालय द्वारा समीक्षा (Scrutiny by the Ministry of Finance):** विभिन्न विभागों से प्राप्त प्राक्कलनों की वित्त विभाग द्वारा समीक्षा की जाती है। आवश्यक संशोधनों के बाद इन्हें भारत सरकार के बजट का रूप दे दिया जाता है। पी० के० वाटल के शब्दों में, "वित्त मंत्रालय द्वारा समीक्षा का रूप प्रशासकीय विभाग द्वारा समीक्षा के रूप से भिन्न होता है। प्रशासकीय विभाग व्यय की नीति या इसकी आवश्यकता या इसके औचित्य से सम्बन्धित होता है परन्तु वित्त विभाग मुख्यता बचत से सम्बन्धित है। अतएव उसे विभिन्न विभागों की माँगों को उपलब्ध धनराशि की सीमा के अन्दर रखना पड़ता है। प्रशासकीय विभागों एवं वित्त विभाग के बीच मतभेद को मन्त्रिमण्डल के निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार वित्त मन्त्रालय की समीक्षा वित्तीय अर्थात् बचत, निधियों की उपलब्धि के दृष्टिकोण से होती है। वित्त मन्त्रालय नए खर्चे की पूरी समीक्षा करता है। यह उन प्रश्नों से विदित है जो यह ऐसे खर्च की समीक्षा करते समय सामने रखता है–
   1. क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में जरूरी है?

2. यदि जरूरी है तो इसके बिना अब तक काम कैसे चलता रहा और अब इसकी जरूरत क्यों है?
3. अन्य स्थान पर क्या व्यवस्था है?
4. इसकी लागत क्या होगी और यह धन कहाँ से आएगा?
5. इसके फलस्वरूप किस विभाग की राशि कम हो जाएगी?
6. क्या नए विकास इसको अनावश्यक कर देंगे?

तदुपरान्त वित्त मंत्रालय भारत सरकार की आय और व्यय का कुल अनुमान तैयार करता है। अनुमानित व्यय के आधार पर करों के नए प्रस्ताव तैयार किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में बजट दो भागों में विभक्त होता है आय भाग तथा व्यय भाग। दिसम्बर के अंत तक बजट तैयार हो जाता है।

5. **मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृति (Approval by the Cabinet)**: वित्त मन्त्री जनवरी मास में बजट पर विचार करता है। वह प्रधानमन्त्री से परामर्श करके टैक्सों आदि के बारे में अपनी वित्तीय नीति को तैयार करता है। ऐसा हो जाने के बाद बजट मन्त्रिमण्डल के विचार हेतु प्रस्तुत किया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि मन्त्रिमण्डल सामान्य नीति निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी है। जब मन्त्रिमण्डल बजट को स्वीकृति प्रदान कर देता है तो यह संसद में प्रस्तुत किए जाने के लिए तैयार है।

बजट के तत्व (The Contents of the Budget): भारत में बजट को 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहते हैं। इसके दो भाग होते हैं–

1. वित्तमंत्री का बजट भाषण; तथा
2. बजट प्राक्कलन।

बजट भाषण (Budget Speech): वितमन्त्री के बजट भाषण में ये बातें शामिल होती हैं– देश की सामान्य आर्थिक दशा के बारे में सूचना; सरकार की वित्तीय नीति के बारे में सूचना, चालू वर्ष के प्राक्कलनों और संशोधित प्राक्कलनों में अन्तर का कारण तथा तदर्थ नई माँगों का कारण। राष्ट्र की वार्षिक कार्यवाहियों में वित्तमन्त्री के बजट भाषण का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी न केवल व्यापारिक समुदाय अपितु समाज का प्रत्येक वर्ग बेचैनी से प्रतीक्षा करता है।

बजट प्राक्कलन (Budget Estimates): भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का यह दायित्व है कि वह संसद को वार्षिक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करे जिसमें भारत की संचित निधि से किए जाने वाले व्यय तथा सार्वजनिक लेखाओं से किए जाने वाले खर्च को अलग–अलग

दिखलाया जाए। धारा 112 के अनुसार भारत की संचित निधि पर निम्नलिखित व्यय 'भारित' व्यय घोषित किए गए हैं–

1. राष्ट्रपति के वेतन और भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्धित दूसरा खर्चा;
2. राज्य सभा के सभापति तथा उपसभापति एवं लोक सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते;
3. ऋण का खर्चा;
4. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन;
5. भारत में महालेखा परीक्षक के वेतन, भत्ते तथा पेंशन;
6. किसी भी न्यायालय के निर्णय या डिग्री के अनुसार दिए जाने वाला धन; तथा
7. संविधान या संसद द्वारा घोषित किया गया ऐसा ही कोई दूसरा खर्च।

इन समस्त खर्चों पर संसद को मतदान का अधिकार नहीं है, हालांकि वह इन पर बहस कर सकती है। अन्य सभी व्यय संसद की मतदान शक्ति के अधीन हैं।

ऊपर हमने दो शब्दों 'संचित निधि' तथा 'पब्लिक एकाउंट' का प्रयोग किया है। इन शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट कर दिया जाए। संविधान की धारा 266(1) के अन्तर्गत संचित निधि का अर्थ है "भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, सरकार द्वारा लिए गए सभी ऋण, ऋणों के भुगतान में प्राप्त सभी धन अग्रिम धन समेत।" 'पब्लिक एकाउंट' में राज्य प्रावीडेंट फंड, सरकारी विभागों के रिजर्व फंड, पोस्टल सेविंग्ज बैंक धन, पोस्ट आफिस कैश तथा अन्य बचत सर्टिफिकेट, पोस्टल जीवन बीमा फंड, सरकार द्वारा राजस्व या अन्य प्रकार से निर्मित तदर्थ फंड, विविध निवेश जमा तथा विप्रेषण धन आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि पब्लिक अकाउंट में पड़ा धन सरकार का नहीं होता क्योंकि यह किसी समय पर लोगों को वापस भुगतान किया जाता है। पब्लिक एकाउंट से भुगतान के लिए संसद में कोई माँग प्रस्तुत नहीं की जाती। दूसरे शब्दों में, विनियोग ऐक्ट द्वारा विनियोजन केवल संचित निधि के बारे में जरूरी है, ऐसा पब्लिक एकाउंट के लिए जरूरी नहीं है।

बजट का विधिकरण

(Enactment of the Budget)

संसद में बजट पाँच अवस्थाओं से गुजरता है, अर्थात् 1. पेश होना, 2. सामान्य चर्चा, 3. अनुदानों की माँगों पर मतदान, 4. विनियोग अधिनियम को पास करना, तथा 5. वित्त अधिनियम पर विचार करना और उसे पास करना।

1. **बजट का पेश होना (Introduction of Budget):** भारतीय संसद का बजट अधिवेशन फरवरी के मध्य में आरम्भ होता है। बजट संसद में दो भागों रेलवे बजट और सामान्य बजट में पेश किया जाता है। रेलवे बजट में रेलों की आय और उनके व्यय का विवरण करता है और यह रेल मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। सामान्य बजट रेलवे को छोड़कर शेष अन्य सभी विभागों की माँगों से सम्बन्धित होता है। यह संसद में वित्त मन्त्री द्वारा पेश किया जाता है। रेलवे बजट और सामान्य बजट की प्रक्रिया लगभग समान ही है। पहले रेलवे बजट पेश किया जाता है। बाद में सामान्य बजट पेश होता है जो फरवरी के अन्तिम दिन सायं पांच बजे प्रस्तुत किया जाता है। बजट तथा वित्त मन्त्री के भाषण की प्रतिलिपियाँ सब सदस्यों में बाँट दी जाती हैं।
2. **सामान्य चर्चा (General Discussion):** संसद के कार्य–संचालन नियमों की नियम संख्या 130 के अनुसार बजट जिस दिन संसद में प्रस्तुत होता है उस दिन उसके सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की जाएगी। इसलिए स्पीकर सामान्य चर्चा की तारीख निश्चित कर देता है। यह तारीख साधारणतया बजट पेश होने के एक सप्ताह बाद की होती है और चार दिन चर्चा के लिए नियत किए जाते हैं। चर्चा व्यय की सभी मदों, संचित निधि पर भारित व्यय की मदों पर भी होती है। यह चर्चा बजट से सम्बन्धित सिद्धान्तों और नीति तक ही सीमित रहती है, इसमें प्रशासन की आलोचना करने और जनता की कठिनाइयों को प्रस्तुत करने का भी अवसर रहता है। यह चर्चा राजनीतिक अधिक होती है, वित्तीय कम। इस अवस्था में कोई प्रस्ताव नहीं रखा जाता और न ही मतदान के लिए बजट संसद के सम्मुख रखा जाता है। यह ध्यान रहे कि बजट पर सामान्य चर्चा संसद के दोनों सदनों में साथ–साथ चलती है। चर्चा के अन्त में वित्त मन्त्री सामान्य उत्तर देता है।

माँगों पर मतदान (The Voting of Demands): सामान्य चर्चा समाप्त हो जाने पर लोक सभा अनुदानों की उन माँगों पर मतदान का कार्य आरम्भ करती है जो भारत की संचित निधि पर भारित व्यय नहीं है। माँगों पर मतदान पूर्णतया लोकसभा का विशेषधिकार है, राज्य सभा इसमें कोई भाग नहीं लेती। अनुदानों की माँगों पर वोट करते समय लोकसभा सदन के रूप में ही बैठती है, यह सदन की सम्पूर्ण समिति के रूप में नहीं बैठती जैसा की ब्रिटेन की कामन सभा में व्यवस्था है। ब्रिटेन की भान्ति भारत में भी माँगों पर मतदान के लिए छब्बीस दिन रखे गए हैं। इस थोड़े से समय की व्यवस्था से यह स्पष्ट है कि अनेक माँगें बिना किसी चर्चा के पास हो जती हैं। अध्यक्ष सदन के नेता की सलाह से यह नियत कर देता है कि किस माँग या माँग समूह के लिए और बजट के सम्पूर्ण खर्च वाले भाग के लिए कितना समय होगा। जैसे ही नियत समय सीमा समाप्त हो जाती है उस माँग को तत्काल मतदान के लिए प्रस्तुत कर दिया जाता है चाहे उस पर चर्चा हुई हो या न हुई हो। इसी प्रकार अन्तिम दिन पाँच बजे शाम को बची हुई सारी माँगों को अध्यक्ष मतदान के लिए प्रस्तुत कर देता है चाहे उन पर चर्चा हुई हो या न हुई।

1993–94 वर्ष के बजट में विभिन्न विभागों की माँगों पर विस्तृत विचार करने हेतु संसदीय समिति प्रणाली आरम्भ की गई है। इस प्रयोजन हेतु 17 समितियों का निर्माण किया गया है जिनमें विभिन्न विभागों की माँगों को विभक्त कर दिया गया है। प्रत्येक समिति में 45 सदस्य होंगे जिनमें 30 लोकसभा एवं 15 राज्यसभा के सदस्य होंगे। इन समितियों के कार्यों में अनूदान माँगों की समीक्षा, अधिनियमों का परीक्षण एवं राष्ट्रीय आधारमूलक दीर्घकालीन नीतियों पर विचार को सम्मिलित किया गया है। संसदीय प्रणाली होने के कारण विरोधी पक्ष का कटौती करने का कोई प्रस्ताव सरकार में अविश्वास का सूचक होता है। अतः सदन में माँगों पर चर्चा वित्तीय दृष्टिकोण से बजट के मदों की चर्चा नहीं होती अपितु किसी विशेष विभाग के विरूद्ध जनता की शिकायतों की चर्चा होती है। ज्योंहि व्यय की कोई मद चर्चा के लिए प्रस्तुत की जाती है, सदन का कोई सदस्य उठकर उसके अनुमानों में एक या एक सौ रूपयों की कटौती का प्रस्ताव रखता है, तदुपरान्त यह उस विभाग, जिसके वह मद सम्बन्धित है, की आलोचना शुरू करता है। सम्बन्धित मन्त्री को उसके विभाग के विरूद्ध की गई सभी आलोचना का उत्तर देना पड़ता है। प्रत्येक माँग पर चर्चा पूर्ण हो जाने के बाद माँग को सदन के मतदान हेतु रखा जाता है कि "एक रकम जो..... रु० से अधिक न हो, राष्ट्रपति को मार्च 19..... को समाप्त होने वाले वर्ष की अवधि में..... (माँग का विषय) के सिलसिले में आने वाले खर्च के लिए, अनुदान रूप में दी जाए।" स्वीकृत होने के बाद माँग अनुदान बन जाती है। यह ध्यान रहे कि सदन किसी माँग की राशि को घटा या नामँजूर कर सकता है परन्तु यह इसे बढ़ा नहीं सकता। यदि व्यय के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़े तो पूरक अनुदानों या आकस्मिक निधि में से व्यय करने का अधिकार दिया जा सकता है।

4. **विनियोग अधिनियम को पास करना (Passage of the Appropriation Bill):** अगली अवस्था वार्षिक विनियोग अधिनियम को विधि में पारित करना है। लोकसभा द्वारा पास की गई सभी माँगों तथा भारत की संचित निधि पर भारित सभी व्यय को एक अधिनियम में इकट्ठा किया जाता है जिसे वार्षिक विनियोग अधिनियम कहते हैं। संविधान की धारा 114 (5) में लिखा गया है, कि (1) लोकसभा द्वारा पास की गई सभी माँगों तथा (2) भारत की संचित निधि पर व्यय को पूरा करने के लिए भारत की संचित निधि से धन निकालने के लिए एक अधिनियम प्रस्तुत किया जाएगा। तदनुसार लोकसभा में विनियोग अधिनियम प्रस्तुत किया जाता है। वाद–विवाद को केवल उन्हीं बातों तक सीमित रखा जाता है जिन पर चर्चा की अवस्था में पहले चर्चा नहीं हुई है। यह अधिनियम भी उसी क्रियाविधि का अनुसरण करता है, जैसे अन्य वित्त विधेयक सिवाय इस बात के कि सदन द्वारा पहले से जिस माँग पर मत दिया जा चुका है, उस अनुदान या संचित निधि में परिवर्तन सम्बन्धी कोई संशोधन किसी भी सदन में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। लोकसभा द्वारा पारित हो

जाने के बाद उसे प्रमाणित कर देता है कि यह वित्त विधेयक है और तब यह विधेयक राज्यसभा के पास भेज दिया जाता है।

राज्यसभा के पास विनियोग विधेयक को न तो नामंजूर करने और न संशोधित करने की शक्ति है। यह केवल उस पर चर्चा कर सकती है और 14 दिन के अन्दर इसे लोकसभा को अपनी सिफारिशें भेजनी होती हैं। लोकसभा इन सिफारिशों को मंजूर या नामंजूर कर सकती है। यदि लोकसभा राज्यसभा के सुझावों को अस्वीकृत कर देती है तो विधेयक उसी रूप में दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायेगा जिस रूप में लोकसभा ने इसे पारित किया है। यदि चौदह दिनों के अन्दर राज्यसभा कोई सिफारिश नहीं करती, उस स्थिति में, उस अवधि की समाप्ति पर दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाएगा।

पारित होने के बाद विनियोग विधेयक राष्ट्रपति को उसकी मंजूरी के लिए भेजा जाता है। यह केवल औपचारिक मात्र है क्योंकि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार हेतु वापस नहीं भेज सकता। विनियोग कानून सरकार को सार्वजनिक निधि से धन निकालने तथा इसको अधिकृत रूप में व्यय करने की शक्ति प्रदान करता है। ऐसी शक्ति के बिना सरकार कोई व्यय नहीं कर सकती और महालेखाकार एवं लेखा परीक्षक ऐसे व्यय को जिसकी संसद ने अनुमति नहीं दी थी अनधिकृत या गैरकानूनी घोषित कर देगा। धारा 114 (3) में लिखा है कि 'संचित निधि से कोई भी धन बिना विनियोग के नहीं लिकाला जा सकता।' अतएव विनियोग ऐक्ट का पास होना बजट निर्माण में एक आवश्यक चरण है।

वित्त अधिनियम (Finance Act): विनियोग कानून सरकार को संचित निधि से धन निकालने की शक्ति प्रदान करता है परन्तु अभी तक यह व्यवस्था नहीं की गई है कि यह धन कहाँ से आएगा। अतः करारोपण द्वारा धन इकट्ठा करने की व्यवस्था की जाती है। इस उद्देश्य हेतु एक वित्त विधेयक सदन के सामने रखा जाता है। इस विधेयक में आगामी वर्ष के लिए सरकार के वित्तीय प्रस्ताव शामिल होते हैं। इसे भी संसद के सामने बजट के साथ पेश किया जाता है। इस पर धन विधेयक जैसी प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रवर समिति में इस विधेयक पर पूर्ण विस्तार से विचार होता है। समिति की रिपोर्ट आने पर सदन में इस पर धारावाहिक विचार होता है। संशोधन केवल किन्हीं करों को कम करने या समाप्त करने के बारे में ही रखे जा सकते हैं। वित्तीय प्रस्ताव उसी समय लागू हो जाते हैं ज्योंहि बजट पेश होता है। वित्त विधेयक अप्रैल का महीना समाप्त होने से पूर्व पारित होना चाहिए। इसके पारित होने के बाद ही सरकार करों को इकट्ठा करने की अधिकारी बनती है।

विनियोग बिल एवं वित्त बिल पास हो जाने के बाद बजट की विधिकरण प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

बजट में सामान्य वार्षिक अनुमान होते हैं जो वार्षिक व्यय का अधिकांश भाग होते हैं। बजट के समय अनदेखी परिस्थितियों पर व्यय को पूरा करने के लिए अन्य चार प्रकार के अनुदान

लोकसभा को पारित करने के लिए कहा जा सकता है। इन अनुदानों को (1) अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grants), (2) लेखा मतदान (Vote on Account), (3) विशेष अनुदान (Exceptional Grants), तथा (4) उधार पर मतदान (Vote on Credit) कहते हैं।

अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grants): यदि साल के विनियोग अधिनियम द्वारा प्राधिकृत धनराशि किसी के लिए कम पड़े या किसी नई सेवा के लिए खर्च आवश्यक हो जाए या किसी सेवा में बजट में नियत धनराशि से अधिक खर्च हो जाए तो हमारे संविधान की धारा 115 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि पूरक प्राक्कलनों का एक पूरक वित्तीय विवरण संसद के सामने पेश करवाए। यह विनियोग विधेयक की क्रियाविधि के अनुसार पारित किया जाएगा।

लेखा अनुदान (Votes on Account): संविधान की धारा 116 (1) (ए) के अन्तर्गत लोकसभा विधेयक पारित होने तक वित्तीय वर्ष के किसी भाग के लिए अनुमानित व्यय के वास्ते अग्रिम अनुदान पारित कर सकती है। चूंकि विनियोग विधेयक पारित होने का कार्य 31 मार्च तक पूर्ण नहीं होता, अतएव लोकसभा के लिए आवश्यक हो जाता है कि यह उस अवधि तक के लिए अनुदान मंजूर करे जब तक बजट पास नहीं होता। विनियोग विधेयक पास होने तक कार्यपालिका को काम चलाने के लिए जो अनुदान स्वीकृत किया जाता है उसे लेखा अनुदान कहते हैं। यह ध्यान रहे कि लेखा अनुदान ऐसी सेवाओं के लिए ही सीमित है जिनको संसद की स्वीकृति मिल चुकी है। इसे प्रायः नई सेवाओं के लिए नहीं मांगा जाता। अनुमानित माँगें कुल वर्ष की जरूरतों का प्रायः 1/12 भाग होती है। विशेष परिस्थितियों में यह अधिक भी हो सकती हैं यदि खर्च को सारे साल पर समान रूप से नहीं फैलाया गया है।

विशेष अनुदान एवं ऋण पर मतदान (Exceptional Grants and Votes on Credit): धारा 116 (बी) में लिखा है, "लोकसभा को किसी अप्रत्याशित मांग जो सेवा की विशालता या उसके अनिश्चित स्वरूप के कारण पहले से नहीं आँकी जा सकी और जिसके ब्यौरे वार्षिक वित्तीय विवरण में शामिल नहीं किए जा सके, को स्वीकृत करने का अधिकार होगा।" इसी धारा के अनुच्छेद (सी) में लिखा है, "लोकसभा को विशेष अनुदान पारित करने का अधिकार होगा जो वित्तीय वर्ष की किसी चालू सेवा का कोई भाग नहीं है।" ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं के व्यय को भारत की आकस्मिक निधि में से राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अग्रिम धन से पूरा किया जाता है। इन अग्रिम धनों को बाद में संसद द्वारा अधिकृत कराया जाता है।

बजट का क्रियान्वयन

(The Execution of the Budget)

बजट के पास हो जाने के बाद बजटीय प्रक्रिया का अगला चरण इसका क्रियान्वयन है। बजट को क्रियान्वित करना कार्यकारिणी का दायित्व है क्योंकि विधानमण्डल द्वारा इसको ही अनुदान राशि दी जाती है। बजट के क्रियान्वयन के दो महत्वपूर्ण नियम हैं–

1. यह विनियोग विधेयक की धाराओं के अनुसार हो; तथा
2. धन अत्यधिक ईमानदारी, दक्षता और सच्चाई से व्यय किया जाए। कोई खर्च अनुचित अथवा अनावश्यक न हो। आवश्यकता और किफायत का ध्यान रखा जाए।

बजट की क्रियान्वयन प्रक्रिया में निम्नलिखित क्रियाएँ सम्मिलित हैं–

1. **कर निर्णय एवं वसूली (Assessment and Collection):** करों को इकट्ठा करने से पूर्व यह निर्णय करना होता है कि विधानमण्डल द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों से कितनी कर राशि इकट्ठी की जानी है। इस प्रकार के निर्णय में करदाता–व्यक्तियों की सूची तैयार की जाती है और यह भी निर्णय किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति एवं निकायों को कितना कर देना है। तदर्थ कार्यकारिणी को कर निर्णय का कार्य करने के लिए उपयुक्त संयंत्र की व्यवस्थ करनी होती है। ऐसे संयंत्र की व्यवस्था करते समय करों के अपवचन (Evasion) को रोकने का प्रयत्न किया जाए।
   करों का निर्णय हो जाने के बाद सरकारी अधिकारी व्यक्तियों से वाजिब करों को इकट्ठा करते हैं। कर इकट्ठा करने का ढंग कर के स्वरूप के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। कुछ मामलों में जैसे आयात कर की वसूली ठीक वहीं करनी पड़ती है, जहाँ लाया हुआ सामान पकड़ा जाता है। दूसरे मामलों में करदाता व्यक्तियों को बिल भेज दिया जाता है और उन्हें निकटतम राजकोष में कर जमा कराने के लिए कहा जाता है। वेतनादि के करों को वेतन वितरण के कार्यालय में ही वेतन बिल से काट लिया जाता है। कुछ मामलों में सरकार के अधिकारी या एजेंट सीधे करदाता व्यक्ति के पास जाकर उससे वसूली करते हैं और इस प्रकार एकत्रित धन को वे राजकोष में जमा करा देते हैं।
   राजस्व विभाग सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों पर दो सांविधिक बोर्डों, अर्थात् केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड द्वारा नियंत्रण एवं निगरानी करता है। कभी–कभी यह प्रश्न उठता है कि क्या कर निर्णय एवं कर इकट्ठा करने के दोनों कार्य एक ही अधिकारियों को या अलग–अलग अधिकारियों को दिए जाएँ। जो व्यक्ति पहले विचार का समर्थन करते हैं उनके तर्क हैं कि–
   1. इस प्रणाली के अन्तर्गत अधिक ईमानदारी और उचित व्यवहार होगा;
   2. इससे सरकार को कर इकट्ठा करने पर अधिक नियन्त्रण प्राप्त होगा; तथा
   3. इससे लेखा परीक्षण में सुविधा रहेगी।

   परन्तु यह प्रणाली दोषपूर्ण भी है क्योंकि

1. दोनों प्रकार की क्रियाएँ भिन्न–भिन्न स्वरूप की हैं, अतः उनके लिए विभिन्न संगठन होने चाहिए; तथा
2. यदि एक ही अधिकारी को दोनों कार्य करने हैं तो उस पर कार्यभार अधिक हो जाएगा।

उत्तम ढंग यही है कि दोनों कार्य एक अकेली सेवा के अन्तर्गत गठित किए जाएँ परन्तु उस गठन में दो अलग प्रभाग हों जो दोनों क्रियाओं को अलग–अलग करें। भारत में यही प्रणाली है। केन्द्र तथा राज्यों में वित्त मन्त्री के अधीन राजस्व विभाग है जो केन्द्रीय राजस्व बोर्ड (Central Board of Revenue) के माध्यम से देश के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों के प्रशासन का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करता है।

1. **निधियों का सुरक्षण (Custody of Funds):** सभी राजस्व को जो इकट्ठा किया जाता है सुरक्षित प्रकार से रखना होता है। इस प्रबन्ध व्यवस्था में दो मुख्य बातें देखनी होती हैः प्रथम, गबन की कोई संभावना न रहे, दूसरे, अदायगी की सुविधा हो, उसमें कोई देर न हो।

   पुराने समय में सार्वजनिक धन को राजकोष में विशेष रूप से बने मजबूत संदूकों में रखा जाता था। परन्तु बैंकिंग प्रणाली के विकास के साथ अब ऐसा करना आवश्यक नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त अब यह भी जरूरी नहीं है कि सभी वित्तीय लेन–देन नकद धन द्वारा हो क्योंकि अधिकांश कार्य चैकों द्वारा किया जा सकता है जिसने गबन की सम्भावना कम हो जाती है। अधिकांश देशों में सरकार की ओर से लेन–देन का कार्य एक केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जा सकता है। लन्दन में इस कार्य के लिए 'बैंक आफ लन्दन' है। परन्तु भारत में बैंकिंग सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में नहीं है। अतः सरकार की ओर से रुपया लेने देने के लिए केन्द्रीयकृत प्रणाली की व्यवस्था सम्भव नहीं है। भारत में रिजर्व बैंक या जहाँ पर रिजर्व बैंक की कोई शाखा नहीं है वहाँ स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया भारत सरकार के कोष सम्बन्धी कार्य को करता है। कुछेक राष्ट्रीयकृत बैंकों को भी सरकार की ओर से राजस्व प्राप्ति का अधिकार दिया गया है। परन्तु चूंकि सभी स्थानों पर इन बैंकों की शाखाएँ नहीं हैं, अतः अब भी लगभग 1200 सब–ट्रेजरी तथा उन पर निगरानी हेतु 300 जिला कोष कार्य करते हैं।

निधियों का भुगतान (Disbursement of Funds): विविध देयों की अदायगी के लिए भुगतान कोष से धन निकालने की प्रक्रिया है। अवैध एवं अनुचित देयों की निकासियों के विरूद्ध प्रत्येक सावधानी बरती जानी चाहिए। अतः वित्त मन्त्रालय द्वारा व्यय पर विशेष नियन्त्रण रखा जाता है। विधानमण्डल सरकार को समग्र रूप से, तकनीकी तौर से राष्ट्रपति को न कि अलग–अलग विभागों को अनुदान स्वीकृत करता है। वित्त मन्त्रालय

विभाग के अध्यक्ष को उसके विभागीय व्यय के बारे में नियन्त्रक अधिकारी मनोनित करता है। ये अधिकारी भुगतान–अधिकारियों को अनुदान नियत कर देते हैं। भुगतान अधिकारी कार्यालयों के अध्यक्ष होते हैं। नियन्त्रक एवं भुगतान अधिकारियों को अनुदानों की सूचना बजट पास होने के पुरन्त बाद दे दी जाती है। अनुदान को व्यय की विभिन्न मदों में जैसे अधिकारियों के वेतन, प्रतिष्ठान व्यय, आकस्मिक व्यय आदि में विभक्त कर दिया जाता है। इन विनियोगों को वित्तीय नियन्त्रण हेतु इससे भी आगे उपशीर्षकों में वर्गीकृत कर देते हैं। व्यय के नियन्त्रण की मूलभूत इकाई 'उपशीर्षक' (Sub-Head) है। भुगतान अधिकारी को विनियोगों के कुछ उपशीर्षकों का भार दे दिया जाता है। वह कोष से धन भी निकाल सकता है।

भुगतान अधिकारी पर बड़ा दायित्व है। धन निकालने से पूर्व उसे देखना होता है कि–

1ण किया जाने वाला व्यय ऐसे व्यय को अधिकृत करने वाली एजेन्सी या अधिकारी द्वारा स्वीकृत व्यय है।

2ण किया जाने वाला व्यय विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत राशि की सीमा के भीतर है।

3ण देयों की अदायगी उचित है।

उसे विभिन्न लेन–देनों का लेखा भी रखना होता है। इनके बारे में वह विभागाध्यक्ष एवं महालेखाकार को रिपोर्ट भी भेजता है। कोषाधिकारी को भी अदायगी करते समय काफी चौकन्ना रहना होता है कि अदायगी के वारन्ट, चालान या चैक पर अधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर हैं या नहीं। उसे सभी वसूलियों एवं भुगतानों का भी लेखा रखना होता है।

विभागाध्यक्ष की व्यय के ऊपर नियन्त्रण शक्ति भुगतान अधिकारियों को धन अनुदान विभक्त करके समाप्त नहीं हो जाती। वह अपने विभाग के व्यय के ऊपर सतत नियन्त्रण रखता है। भुगतान अधिकारियों को अपने विभाग के नियन्त्रणकर्त्ता को मासिक लेखा प्रस्तुत करने होते हैं। नियन्त्रणकर्त्ता इन लेखों को विभिन्न शीर्षकों एवं उपशीर्षकों में वर्गीकृत कराता है जिससे उसे अपने विभाग की समग्र वित्तीय स्थिति का पता लग जाता है। वह इन लेखों की प्रतिलिपि महालेखाकार को भी भेजता है और वित्त मन्त्रालय को भी। विभागीय लेखों का कोषों से प्राप्त लेखों के साथ मिलान किया जाता है। इससे नियन्त्रक अधिकारी को अपने विभाग में व्यय पर निगरानी रखने का मौका मिलता है और वह फिजूलखर्ची या असावधानी को रोक सकता है। इस प्रकार नियन्त्रक अधिकारी (विभागाध्यक्ष) भुगतान अधिकारी (कार्यालय अध्यक्ष) तथा कोषाधिकारी निधियों के उचित भुगतान से सम्बन्धित हैं।

4. **लेखा (Accounting):** लेखा का अर्थ है कि वित्तीय लेन–देनों का क्रमबद्ध रिकार्ड रखा जाए। समुचित बजटीय नियन्त्रण के लिए एक अच्छी प्रणाली अनिवार्य है। रसीदों एवं व्ययिक पर्चों (Vouchers) के आधार पर तैयार किए क्रमबद्ध लेखाओं के द्वारा ही

लेन–देनों की वैधता एवं ईमानदारी की जाँच हो सकती है। दूसरे, इन लेखाओं के द्वारा ही यह पता लग सकता है कि क्या बजट की धाराओं का ठीक प्रकार से पालन किया गया है या नहीं। तीसरे, लेखाओं से नीति–निर्माण और प्रोग्राम बनाने के लिए आवश्यक वित्तीय स्थितियों एवं क्रियाओं के बारे में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। फ्रांसिस आके (Francis Oakey) के अनुसार, "लेखा वित्तीय स्थितियों एवं क्रियाओं से सम्बन्धित तत्वों को तुरन्त और स्पष्ट प्रस्तुत करने का विज्ञान है जिनकी प्रबन्ध के आधार रूप में आवश्यकता होती है।" डॉ० एल० डी० व्हाइट (L.D. White) के शब्दों में, "लेखा प्रणाली के प्रमुख कार्य हैं– वित्तीय रिकार्ड रखना, निधियों से सम्बन्धित व्यक्तियों का संरक्षण, संगठन की वित्तीय दशा को प्रकट करना, व्यय की दरों में आवश्यक रद्दो–बदल को सुविधाजनक बनाना, अधिकारियों को सुचना देना जिसके आधार पर वे भावी वित्तीय एवं क्रियागत प्रोग्रामों का निर्धारण कर सकें तथा लेखा परीक्षण में सहायता देना।"

5. **लेखा परीक्षण (Audit):** बजट के क्रियान्वयन में अंतिम चरण लेखा परीक्षण है। लेखा परीक्षण की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि यह "इस बात का पता लगाने की प्रक्रिया है कि क्या प्रशासन ने अपनी निधियों को उस विधान जिसने धनराशि विनियोजित की थी, के अनुसार खर्च किया है या कर रहा है।" यह दायित्व को लागू करने का साधन है। लेखा विभाग का अधिकारी महालेखा परीक्षक होता है। उसका कार्य केवल यही देखना नहीं है कि व्यय को सीमा के भीतर किया गया है जो सीमा संसद ने निर्धारित की थी तथा व्यय करते समय वित्तीय नियमों का पालन किया गया है अपितु अपने को इस बारे में भी विश्वस्त करना है कि धन को सोच–समझकर मितव्ययिता से खर्च किया गया है। महानियन्त्रक एवं लेखा परीक्षक संसद के एजेन्ट के रूप में कार्य करते हैं। संसद अपनी तीन समितियों–सार्वजनिक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति तथा सार्वजनिक उद्योगों की समिति द्वारा व्यय पर नियन्त्रण करती है। इन समितियों का वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

इंग्लैण्ड में बजटीय प्रक्रिया

(Budgetary Process in England)

इंग्लैण्ड में बजट की तैयारी प्रत्येक वर्ष शरद ऋतु में आरम्भ कर दी जाती है जब गश्ती चिट्ठी द्वारा राजकोष सभी विभागों को आगामी वर्ष के लिए अपनी आवश्यकतों सम्बन्धी आंकड़ें भेजने के लिए कहता है। जब राजकोष के पास सभी प्राक्कलन आ जाते हैं तो यह उनका पिछले वर्ष के आंकड़ों से मिलान करता है। राजकोषाधिकारी विभाग अधिकारियों से मिलकर इन अनुमानों को कम करा सकते हैं। इसी दौरान विभाग आय के प्राक्कलन तैयार करते हैं। सामान्यता व्यय की राशि आय की राशि से अधिक होती है, अतएव या तो व्यय कम किया जाने या राजस्व के नए स्त्रोतों को ढूढने की आवश्यकता होती है। चांसलर आफ एक्सचेकर इस बारे में निर्णय करता है

और तदुपरान्त वह मन्त्रिमण्डल के सामने बजट प्रस्तुत करता है। मन्त्रिमण्डल उसके प्रस्तावों तथा बजट की प्रमुख बातों को सुनने तथा बजट में निहित विविध समस्याओं पर चर्चा करने के बाद बजट को अन्तिम रूप दे देता है और चांसलर को इसे संसद के सामने प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत कर देता है।

फरवरी के दूसरे–तीसरे सप्ताह में चांसलर बजट को कॉमन सभा में रखता है। कुछ समय बाद वह सदन की सम्पूर्ण समिति के सामने विशद भाषण देता है जिसमें वह गत वर्ष की वित्तीय स्थिति पर समीक्षा करता है तथा अगले वर्ष की नीति पर प्रकाश डालता है।

व्यय प्राक्कलन प्रस्तुत हो जाने के बाद सदन स्वयं को सम्भरण समिति (Committee of Supply) में परिवर्तित कर लेता है और अनुमानों पर विचार आरम्भ करता है। इन प्राक्कलनों पर अलग–अलग श्रेणियों जो विभिन्न सेवाओं के समकक्ष होती हैं, विचार किया जाता है। इन माँगों को जिन्हें 'वोट' कहा जाता है विभागाध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इन 'वोटों' पर बहस होती है, परन्तु बहस वित्तीय मामलों से सम्बन्धित न होकर सरकार की नीति की आलोचना से सम्बन्धित होती है। सदस्य किसी माँग को कम करने या नामंजूर करने की माँग कर सकते हैं परन्तु वे उसे बढाने के लिए नहीं कह सकते। सामान्यता किसी व्यय को घटाने या नामंजूर करने का प्रस्ताव पास नहीं होता क्योंकि सम्बन्धित मन्त्री इसके लिए तैयार नहीं होता। परिणामस्वरूप, प्राक्कलन बिना किसी रद्दो–बदल के पास हो जाते हैं। प्राक्कलनों पर चर्चा छब्बीस दिनों के अन्दर समाप्त हो जाती चाहिए। इस समय सीमा की समाप्ति पर वाद–विवाद बन्द हो जाता है और सभी प्राक्कलन पास समझे जाते हैं।

राजस्व पर विचार करते समय सम्पूर्ण सदन की समिति जिसे मार्गोपाय समिति (Committee in Ways and Means) कहते हैं, के रूप में बैठता है। राजस्व के प्रस्तावों को क्रमगत विस्तार सहित विचारा जाता है। इनके पास हो जाने के बाद सदन को प्रस्ताव के रूप में सूचना दे दी जाती है।

सम्भरण समिति द्वारा व्यय के सभी प्राक्कलन तथा मार्गोपाय समिति द्वारा राजस्व के सभी प्रस्ताव पास हो जाने के बाद उन्हें विनियोग विधेयक तथा राजस्व विधेयक का रूप दिया जाता है। राजस्व विधेयक करों के सभी प्रस्तावों से सम्बन्धित होता है। विनियोग विधेयक व्यय से सम्बन्धित होता है। इन दोनों विधेयकों को जो धन विधेयक होते हैं सदन के सामने रखा जाता है और वहां पर सामान्य चरणों–प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पठनों के बाद इन्हें पारित कर दिया जाता है।

कॉमन सभा से पारित होने के बाद इन विधेयकों को लार्ड सदन में भेजा जाता है जिसके पास इन्हें बिना किसी संशोधन के पारित करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। 1991 के विधेयक के अन्तर्गत यदि सदन को इसका अधिवेशन समाप्त होने से एक मास पूर्व धन विधेयक मिल जाता

है तो इस अवधि की समाप्ति पर विधेयक को शाही मंजूरी के लिए भेज दिया जाता है चाहे लार्ड सदन इससे सहमत हो या असहमत।

ब्रिटिश एवं भारतीय प्रणालियों की तुलना (The British and Indian System Compared): विस्तृत रूप में, भारतीय एवं ब्रिटिश बजटीय पद्धति समान है परन्तु इन दोनों में कुछ निम्नलिखित अंतर है–

1. ब्रिटेन में सारी पावतियों और खर्च के लिए केवल एक बजट तैयार किया जाता है जबकि भारत में रेलवे के लिए अलग बजट तैयार किया जाता है और रेल मन्त्री उसे प्रस्तुत करता है।
2. भारत में बजट पेश करते समय वित्तमन्त्री का भाषण होता है किन्तु इंग्लैण्ड में चांसलर आफ एक्सचेकर का बजट भाषण सम्भरण समिति के सामने प्राक्कलन प्रस्तुत करते समय नहीं होता बल्कि उस समय होता है जब बजट का राजस्व भाग अर्थोपाय समिति के सामने पेश किया जाता है।
3. भारत में बजट दोनों सदनों के सामने रखा जाता है और राज्यसभा भी उस पर चर्चा करती है हालांकि माँगों पर मत देने का अधिकार केवल लोकसभा को ही प्राप्त है। किन्तु इंग्लैण्ड में लार्ड सदन में न तो बजट पेश किया जाता और न ही उस पर चर्चा की जाती है।
4. भारत में लोकसभा द्वारा पारित होने के बाद बजट राष्ट्रपति को उसकी स्वीकृति के लिए चौदह दिन के बाद पहुँच जाता है जबकि इंग्लैण्ड में कॉमन सभा द्वारा पारित होने के तीस दिन बाद यह रानी के पास पहुँचता है।
5. इंग्लैण्ड में राजस्व की मार्गोपाय समिति तथा व्यय की माँगों पर सम्भरण समिति से मत लिया जाता है जिसमें सदन के सारे सदस्य होते हैं परन्तु भारत में ऐसी कोई प्रथा नहीं है कि लोकसभा समितियों में रूपान्तरित हो जाए। यह शक्ति लोकसभा के लिए सुरक्षित है। 1993–94 के बजट में विभिन्न विभागों की माँगों पर विस्तृत विचार करने हेतु संसदीय समितियों की स्थापना की गई है।

शेष बजटीय प्रक्रिया दोनों देशों में समान है। वस्तुतः भारतीय प्रक्रिया ब्रिटिश नमूने पर आधारित है।

2.2.4 निष्कर्षः–

भारत में यही स्थिति है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के समक्ष वित्तीय वर्ष के लिए भारत सरकार के व्यय तथा अनुमानित आय का एक वितरण प्रस्तुत कराता है। इसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहते हैं। इसमें भारत की संचित निधि

(Consoladated Fund) पर व्यय–भार वाली धनराशियों तथा अन्य व्ययों हेतु आवश्यक धनराशियों का उल्लेख होता है। संचित निधि पर व्यय–भार के लिए मतदान नहीं होता है, किन्तु शेष व्ययों पर मतदान होता है। मतदान वाले अनुमानों (Estimates) को लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। लोकसभा को अनुदान की अनुमति देने और उन्हें अस्वीकार या कम करने का अधिकार है। अनुदानों तथा कर–प्रस्तावों के सम्बन्ध में सभी माँगें कार्यपालिका प्रस्तुत करती है, व्ययों की स्वीकृति केवल संसद द्वारा ही दी जा सकती है। यह पवित्र सिद्धान्त 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' (No Taxation Without Representation) के विचार में निहित है। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में करदाता के हितों तथा अधिकारों की अभिरक्षा के लिए भारतीय संविधान में तीन मूलभूत प्रावधान किये गए हैं:

1. कोई भी कर कानून की सत्ता के बिना नहीं लगाया जा सकता और न एकत्र ही किया जा सकता है। 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं' का यही प्रसिद्ध सिद्धान्त है।
2. सार्वजनिक कोष में से कोई भी व्यय तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि वह संविधान में बताए गए तरीके के अनुरूप तथा विधि के अनुसार न हो; अर्थात् जब तक संसद ने उसका अनुमोदन न कर दिया हो तब तक कोई व्यय नहीं किया जा सकता।
3. संसद द्वारा स्वीकृत नीति के अनुसार ही धन का व्यय करने के लिए कार्यपालिका बाध्य है। संसद यह नियन्त्रण लेखा नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General) के माध्यम से करती है।

बजट प्रणाली कुशल राजस्व (Fiscal) प्रबन्ध का आधार है। समाज–विज्ञान विश्वकोश (Encyclopaedia os Social Science) के अनुसार, "बजट प्रणाली का वास्तविक महत्त्व इस कारण है कि यह किसी सरकार के वित्तीय मामलो के क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था करता है।" राजस्व सम्बन्धी प्रबन्ध में अनेक क्रियाओं की एक निरन्तर श्रृंखला रहती है, जैसे राजस्व तथा व्यय का अनुमान, राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों का लेखा, लेखा–परीक्षण तथा प्रतिवेदन। इन क्रियाओं का संचालन किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन **डब्ल्यू० एफ० विलोबी** ने इस प्रकार किया है: "पहले तो एक निश्चित समय–प्रायः एक वर्ष के लिए सरकारी प्रशासन को ठीक चलाने हेतु जिन व्ययों की आवश्यकता होती है, उनका अनुमान लगाया जाता है, और इन व्ययों की पूर्ति हेतु धन के प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं। इस अनुमान के आधार पर राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम पारित किए जाते हैं, जो स्वीकृत कार्यों के लिए वैध अधिकार प्रदान करते हैं। इसके आधार पर निभिन्न कार्यरत विभागों द्वारा राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों के अनुसार राजस्व एवं विनियोजन लेखे खोले जाते हैं, और इस प्रकार स्वीकृत द्रव्य का व्यय प्रारम्भ होता है। लेखा–परीक्षण तथा लेखा–विभाग यह देखने के लिए इन लेखाओं का परीक्षण करता है कि वे ठीक हैं या नहीं, वास्तविक तथ्यों से संगति रखते हैं या नहीं, और विधि के सभी प्रावधानों के अनुरूप हैं या नहीं। तदुपरान्त इन लेखाओं

से प्राप्त सूचनाओं का सारांश निकाला जाता है और प्रतिवेदनों के रूप में उनको प्रकाशित किया जाता है। अन्त में इसके आधार पर अगले वर्ष के लिए नए अनुमान तैयार किए जाते हैं, और फिर वही चक्र पुनः आरम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया में बजट ही वह तन्त्र है जिसके द्वारा एक ही समय में कई क्रियाएं पारस्परिक रूप से सम्बन्ध की जाती हैं, और अनकी तुलना तथा परीक्षा की जाती है। इस प्रकार बजट राजस्वों तथा व्ययों का अनुमान मात्र न होकर कुछ और अधिक होता है। यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा प्रस्ताव, एक प्रलेख होना चाहिए जिसके माध्यम से मुख्य कार्यपालिका, जो सरकारी प्रशासन के वास्तविक संचालन के लिए उत्तरदायी सत्ता है, धन एकत्र करने तथा विधियों को स्वीकार करने वाली सत्ता (संसद) के समक्ष इस आशय का सम्पूर्ण प्रतिवेदन उपस्थित करती है कि किस ढंग से उसने तथा उसके अधीनस्थों ने विगत वर्ष के दौरान प्रशासनिक कार्य किया है। साथ ही साथ, वह सार्वजनिक कोषागार की वर्तमान दशा का एक विवरण भी प्रस्तुत करती है। इस सूचना के आधार पर कार्यपालिका आगामी वर्ष के लिए अपना कार्यक्रम बनाना प्रारम्भ करती है, और ऐसे कार्यों के लिए वित्तीय प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करती है।

2.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. बजट
2. वितिय प्रशासन
3. बजट का विधिकरण
4. विनियोग अधिनियम

2.2.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. बजट किसे कहते है?
2. भारत के अन्दर बजट निर्माण के स्तर बताइए।
3. वित पर सरकारी नियन्त्रण के क्या समझते है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में बजट निर्माण की प्रकिया पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. भारतीय संसद में बजट को पास करने की विधि पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. भारत में कार्यपालिका तथा विधानपालिका सरकारी वित पर कैसे नियन्त्रण स्थापित करती है, इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. सरकार की विधानपालिका की उन समितियों की विस्तार सेचर्चा कीजिए जो सरकारी वित पर नियन्त्रण स्थापित करने में मदद करती है।

सन्दर्भ सूची

1. जी. एस. लाल, पब्लिक फाइनैन्स एण्ड फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, कपूर 1976
2. एम. जे. के. थावराज, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, सुल्तान चन्द, 1978
3. एच. सी. एडम, दी साइन्स ऑफ फाइनेन्स, न्यूयार्क, 1908
4. आ. एन. भार्गव, इण्डियन पब्लिक फाइनेन्स, 1977
5. आर. के. सिन्हा, फिस्कल फेडरेशन इन इण्डिया, स्टर्लिंग, 1987
6. वैंकेट गिरि गोवदा, फिस्कल रवोलूसन इन इण्डिया, इन्डस, 1987
7. ए. प्रेमचन्द, गवर्नमैन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपैंडीचर कन्ट्रोल : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, वाशिंगटन, 1983
8. एम. एम. सूरी, गवर्नमैन्ट बजटिंग इन इण्डिया, कामनवेल्थ, 1990
9. ए. प्रेमचन्द, परफोरमैन्स, बजटिंग, एकेडमिक, 1969
10. के. एल. हांडा, एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल एण्ड जीरो बेस बजटिंग, नई दिल्ली, 1991
11. पी. एल. जोशी एण्ड वी. पी. राजा, टैकनीक्स ऑफ जीरो बेस बजटिंग, हिमालय, 1988
12. पीटर ए. पाइहर, जीरो बेस बजटिंग, न्यूयार्क, 1973
13. आस्टिन ऐलन, जीरो बेस बजटिंग : ए डिसीजन पैकेज मेन्यूअल, 1979
14. पॉल जे. स्टानिका, जीरो बेस प्लानिंग एण्ड बजटिंग, 1977
15. हरबर्ट ब्रिटेन, ब्रिटिश बजटरी सिस्टम, लन्दन जार्ज एलन एण्ड अनविन, 1959
16. जैस बर्कहैड, गवर्नमेन्ट बजटिंग, न्यूयार्क जॉन विले एण्ड सन्स, 1956
17. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
18. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
19. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
20. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
21. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
22. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.3

निष्पादक बजट और कार्यक्रम बजट

(Performance and Programme Budget)

2.3.1 परिचयः–

निष्पादक बजट की धारणा वित्त प्रशासन में अभी कुछ ही वर्षों से आयी है, परन्तु आज यह इसका एक अंग हो गया है। जब हम वित्त प्रशासन में सुधार की बात करते हैं तो निष्पादक बजट का नाम स्वतः ही आ जाता है। निष्पादक बजट परम्परागत बजट से बहुत भिन्न है। परम्परागत बजट जिसे 'लाइन–आइटम बजट' भी कहते हैं, कर्मचारी, भवन, सज्जा आदि व्यय की मदों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। इस बजट से इतना ही पता चलता है कि कितना सार्वजनिक धन कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना अन्य पदों पर। इससे यह ज्ञात नहीं होता कि सार्वजनिक धन के व्यय से कितनी उपलब्धियाँ प्राप्त हुई है। इसी कमी को निष्पादक बजट पूरा करता है। निष्पादक बजट विशिष्ट उद्देश्यों व कार्यों पर केन्द्रित रहता है। यह बताता है कि कितने कार्य सम्पादित करने का विचार है। स्पष्ट है कि परम्परागत बजट से निष्पादक बजट बहुत सुघढ़ है।

2.3.2 उदेश्यः–

1. परम्परागत बजट की कमियों को जानना।
2. निष्पादक बजट विकसित राष्ट्रों में सफल प्रक्रिया रही, भारत के सन्दर्भ में इसकी प्रगति के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
3. भारत में कार्यक्रम बजट के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त करना।
4. निष्पादक बजट की प्रक्रिया लाभ, हानियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
5. भारत व इंग्लैण्ड के बजट निर्माण प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करना।

2.3.3 निष्पादक बजट और कार्यक्रम बजट :–

परम्परागत बजट की कमियाँ

परम्परागम बजट या 'लाइन–आइटम बजट' उस काल की देन थी, जब सरकार के कार्य संकीर्ण होते थे। अतः सार्वजनिक व्यय कम रहता था, और प्रयत्न भी यही किया जाता था कि कम खर्चा हो। साथ ही , वित्त प्रशासन मध्यम व निम्न श्रेणी के कर्मचारियों को सदैव शंका की दृष्टि से

देखता था, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने नियन्त्रण की एक विशाल श्रृंखला उत्पन्न कर ली थी। निश्चय ही, इससे प्रशासन की गति मन्द हो गयी, पर औपनिवेशिक शासन को इससे क्यों परेशानी होती?

स्वतन्त्र भारत में औपनिवेशिक उद्देश्य अर्थहीन बन गये। अपनी चतुर्मुखी उन्नति के लिए भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया गया और इन योजनाओं के अन्तर्गत सार्वजनिक व्यय बेहताशा बढ़ने लगा। इस नई राजनीतिक परिस्थिति में मितव्ययता तथा उत्तरदायित्व के पुराने विचार महत्त्वहीन हो गए। वास्तव में इन विचारों से देश की प्रगति में बाधा ही पड़ने लगी, क्योंकि जैसी कहावत है कि जैसा बचाने के चक्कर में रूपया खो देते हैं। ब्रिटिश काल में व्याप्त अविश्वास तथा संदेह के प्रशासनिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र भारत में बाधक सिद्ध होने लगे। आज आवश्यकता यह है कि हम अपने विकास कार्यक्रमों को जल्दी–जल्दी पूरा करें ताकि इनका फल लोगों तक पहुँच सके। ऐसे समय संदेह एवं शंका की प्रक्रियाएँ उपयोगी सिद्ध नहीं होती। कहने का तात्पर्य यह है कि वित्त प्रशासन की परम्परागत अवधारणाएँ पंचवर्षीय योजनाओं के सन्दर्भ में बाधक सिद्ध होने लगी। इन्हीं सब बुराइयों से बचने के लिए निष्पादक बजट का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

निष्पादक बजट का अर्थ

निष्पादक बजट की परिभाषा सीधी–सी है। इस प्रकार का बजट सार्वजनिक व्यय को कार्यों, प्रोग्रामों तथा कृतियों में प्रकट करता या दिखाता है। इस प्रकार निष्पादक बजट परम्परागत बजट से इस अर्थ में भिन्न है कि परम्परागत बजट केवल यह बताता है कितना रूपया कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना फर्नीचर पर, कितना सज्जा आदि पर। भारतीय प्रशासकीय सुधार आयोग (1966–1970) के अनुसार निष्पादक बजट सरकारी क्रियाओं को कार्यों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं में प्रकट करने की एक प्रक्रिया है। इस प्रकार के बजट का वर्णन सबसे पहले अमेरीका के हूवर कमीशन ने 1949 में किया था। हूवर कमीशन ने सिफारिश की थी कि बजट को कार्यों, क्रियाओं तथा परियोजनाओं की रूपरेखा में होना चाहिए। जब बजट इस भाँति बनने लगेगा तो यह स्पष्ट होने लगेगा कि क्या कार्य सम्पादित किए गए हैं या क्या सेवाएँ दी जा रही हैं।

निष्पादक बजट, बजट बनाने का एक नया तरीका प्रस्तुत करता है। परम्परागत बजट तो यह बताता है कि कितना खर्च कर्मचारियों पर हुआ, कितना स्टेशनरी पर, कितना गाड़ियों पर, आदि। इस प्रकार का बजट तो केवल साधनों पर ही अपने को सीमित कर लेता है। मुख्य चीज तो यह है कि कर्मचारियों, स्टेशनरी आदि पर खर्चा किस काम को पूरा करने के लिए किया गया; अर्थात् सम्पादित होने वाला काम निष्पादक बजट का केन्द्र बिन्दु हो जाता है।

निष्पादक बजट एक संगठन के उद्देश्यों का विश्लेषण करता है, और फिर इसके अनेक कार्यों के अन्तर्गत व्यय दिखया जाता है। यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि कार्य (Function), कार्यक्रम (Programme) तथा परियोजना (Activity or Project) के विशेष अर्थ होते हैं। 'कार्य' के अन्तर्गत कार्यक्रम तथा परियोजनाएँ आती हैं। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा विभाग का कार्य है– शिक्षा। इस कार्य के अन्तर्गत 'कार्यक्रम' हो सकता है– प्राथमिक शिक्षा; लेकिन इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 'परियोजनाएँ' भी आती हैं, जैसे स्कूल भवन निर्माण, शिक्षकों का प्रशिक्षण आदि। अर्थ यह है कि कार्य एक संगठन के उद्देश्यों को व्यक्त करता है, और इसके अन्दर कार्यक्रम और परियोजनाएँ आती हैं।

प्रक्रिया

निष्पादक बजट के वर्गीकरण की प्रक्रिया में निम्नलिखित पग उठाने पड़ते हैं–

1. सर्वप्रथम किसी विभाग अथवा मन्त्रालय के द्वारा किए जाने वाले कार्यों, कार्य क्षेत्र एवं सभी उद्देश्यों की पूर्ण सूची तैयार करना।
2. इस सूची से प्रकार्यात्मक वर्गीकरण करना, जिससे सम्बन्धिम मन्त्रालय, विभाग या सार्वजनिक उद्योग द्वारा किए जाने वाले कार्यों का क्षेत्र स्पष्ट रूप से मालूम हो सके।
3. प्रोग्रामों एवं क्रियाओं का इस प्रकार से वर्णन करना जिससे प्राथमिकता के दृष्टिकोण से उपलब्ध धनराशि को विभाजित किया जा सके।
4. प्रोग्रामों एवं क्रियाओं को इस प्रकार वर्गीकृत करना जिससे लेखों एवं लागत को ठीक प्रकार से संयोजित किया जा सके।

निष्पाद बजट की रूपरेखा निम्न प्रकार होती है–

1. प्रस्तावना–उद्देश्यों का वर्णन।
2. वित्तीय आवश्यकताएँ–
   1. प्रोग्राम, 2. क्रियाओं का वर्गीकरण, 3. वित्तीय साधन।
3. वित्तीय आवश्यकताओं की व्याख्या–
   1. गतिविधि का नाम, वास्तविक, अनुमानित व्यय, बजट अनुमान, (वर्तमान वर्ष) (अगले वर्ष)
   2. क्रिया का स्परूप एवं उद्देश्य।
      भौतिक कार्य (इनपुट एवं आउटपुट)।
      कार्यभार तत्व, इसके मापदण्ड एवं मानक।
      पिछले वर्ष एवं वर्तमान वर्ष में प्रगति (वास्तविक Vs लक्ष्य)
      भिन्नता की व्याख्या।

अगले वर्ष में लक्ष्य (Targets)।
इनपुट के लिए आवश्यकताएँ (स्टाफ, सामग्री आदि)।
विस्तृत कार्य योजनाएँ एवं अनुसूची।

निष्पाद बजट के लाभ

(Advantages of Performance Budgeting)

निष्पाद बजट के महत्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं–

1. इससे प्रत्येक प्रोग्राम एवं क्रिया के वित्तीय एवं भौतिक तत्वों के मध्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। वर्तमान बजट प्रणाली में ऐसा सह–सम्बन्ध सम्भव नहीं है।
2. इसमें बजट निमार्ण की प्रक्रिया में तथा सरकार के सभी स्तरों पर प्रोग्रामों की वास्तविक प्रगति का पुनरवलोकन करने में सहायता मिलती है।
3. इससे निर्णय लेने तथा प्रोग्रामों के प्रबन्ध में सुधार हो सकता है।
4. इससे विभिन्न परियोजनाओं एवं प्रोग्रामों के कुशल वित्तीय प्रबन्ध में सहायता मिलती है। इससे धन का दुरुपयोग कम हो जाता है जो वर्तमान बजट प्रणाली में वित्तीय अनुदान के व्यपगत (Lapse) नियम के कारण होता है।
5. इससे सरकार के उद्देश्यों का अच्छा मूल्यांकन सुगम हो जाता है जिससे विधानमण्डल को सरकार के कार्यों का मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है।
6. यह प्रशासन में उत्तरदायित्व सुनिश्चित करता है। कौन किस कार्य के लिए उत्तरदायी है तथा किसको क्या–क्या अधिकार प्राप्त हैं– यह निष्पाद बजट स्पष्ट कर देता है।
7. यह सरकारी व्यय तथा आय के विकल्पों का सही चित्र प्रस्तुत करता है।
8. यह स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि गत वर्ष इकाई गत एवं प्रोग्रामगत दोनों प्रकार से किस लागत पर क्या कुछ प्राप्त किया गया है।

प्रशासकीय सुधार आयोग (1969–70) ने निष्पाद बजट के निम्नलिखित लाभ बताए हैं–

1. निष्पाद बजट उन उद्देश्यों व लक्ष्यों को पूर्ण स्पष्टता से प्रकट करता है जिन पर व्यय किया जाना है।
2. यह विधानमण्डल द्वारा बजट का अच्छी प्रकार से पुनरवलोकन एवं मूल्यान्कन करने में सहायता देता है।
3. यह बजट निर्माण में सुधार करता है तथा इससे सभी स्तरों पर सरकार की निर्णय प्रणाली सुगम हो जाती है।
4. इससे प्रबन्धकारिणी का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है और यह इसके साथ ही वित्तीय क्रिया के प्रबन्धकीय नियन्त्रण में एक अतिरिक्त उपकरण है।

5. यह लेखा परीक्षण को अधिक उद्देशीय एवं प्रभावी बनाता है।

समस्याएँ (Problems):

1. उपलब्धि बजट में कार्यात्मक वर्गीकरण पहला तथा मूल कदम होता है किन्तु कभी–कभी, राजनीतिक और संगठनात्मक वास्तविकता स्पष्ट श्रेणीकरण में बाधा बनती है। हालाँकि यह वर्गीकरण के उद्देश्य से अत्यधिक उपयोगी होता है। अतः यह पहली समस्या है कि अनुकूल और अपनाई जा सकने वाली कार्यात्मक श्रेणी की पहचान की जाए।
2. उपलब्धि बजट निर्णय करने में सबसे बड़ी समस्या का समाधान नहीं करता और वह समस्या है परियोजनाओं, कार्यों अथवा क्रियाओं का तुलनात्मक मूल्यांकन जब तक कि इनका समर्थन लागत लाभ विश्लेषण के द्वारा न किया गया हो। किन्तु लागत लाभ विश्लेषण अपने में पूर्ण नहीं है, खासकर ऐसी स्थितियों में जहाँ भारी मात्रा में खर्च तथा उपयोगिताएँ परोक्ष और अमूर्त होती हैं।
3. जिस वर्गीकरण का विकास किया जाता है, वे कभी–कभी इतनी विस्तृत हो सकती है कि उसे उपक्रमों के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों और क्रियाओं का कुछ महत्वपूर्ण ज्ञान ही न हो और इस प्रकार बजट सम्बन्धी निर्णयों और प्रबन्ध के लिए वह एक दृढ़ आधार का कार्य न कर सके।
4. ये भी सम्भावना है कि महत्वपूर्ण कार्यक्रम और प्रबन्धकीय विचार पृष्ठभूमि में छोड़ दिए जाएँ, क्योंकि उपलब्धि बजट में अधिक विकेंद्रीयकरण और केवल बजट के उद्देश्य से कार्यात्मक श्रेणियों का दृढ़िकरण की प्रवृत्ति होती है।

अतः उपलब्धि बजट में महत्वपूर्ण बात वह नहीं है कि इसमें कृत्रिम, आर्थिक, संख्यात्मक अथवा लेखन–विधि सम्बन्धी मापन और परिमापन की तकनीकों का प्रयोग होता है, अपितु महत्वपूर्ण बात प्रश्नात्मक तथा आलोचनात्मक व्यवहार बनाने ही है।

निष्पादक बजट एवं कार्यक्रम बजट

(Performance and Programme Budget)

निष्पादक बजट कई नामों से जाना जाता है। पहले इसे कार्यकारी बजट या कर्मण्यता बजट कहते थे। हूवर आयोग ने इस प्रकार के बजट को निष्पादक बजट की संज्ञा दी थी। कुछ वर्षों से 'कार्यक्रम बजट' शब्द भी लोकप्रिय हो गया है।

प्रारम्भ में तो निष्पादक बजट व कार्यक्रम बजट पर्यायवाची ही थे, परन्तु कालान्तर में इनमें भेद बताए जाने लगे। यह कहा जाने लगा कि कार्यक्रम बजट निष्पादक बजट पर सुधार है। निष्पादक बजट तथा कार्यक्रम बजट में निम्नलिखित भेद–

1. निष्पादक बजट संगठन के कार्यों पर जोर देता है, कार्यक्रम बजट, इसके विपरित, संगठन के कार्यों को तो साधन मात्र मानता है तथा उत्पाद विश्लेषण पर जोर देता है, अर्थात् जो कार्य किए जाने हैं उनका महत्व है, यह कार्यक्रम बजट बनाने का प्रयत्न करता है।
2. निष्पादक बजट प्रबन्ध के आन्तरिक कार्यों को सुधारने पर ध्यान देता है तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक तकनीकों का प्रयोग करता है। कार्यक्रम बजट, इसके विपरित, पद्धति विश्लेषण पर विश्वास करता है।

केन्द्रीय बजट 2002–2003

(Central Budget 2002-2003)

प्रश्न 6. केन्द्रीय बजट 2002–2003 को संक्षेप में बताये।

(Give brief description of Central Budget 2002-2003.)

उत्तर– वित्त मन्त्री श्री यशवन्त सिन्हा ने वर्ष 2002–2003 के लिए केन्द्रीय बजट संसद में 28 फरवरी, 2002 को प्रस्तुत किया।

बजट की वृहद् रणनीति

(Board Strategy of Budget)

- कृषि एवं खाद्य आर्थिक सुधारों को जारी रखना।
- आधारित संरचना में सार्वजनिक एवं निजी विनियोग को प्रोत्साहन करना।
- वित्तीय क्षेत्र एवं पूंजी बाजार को सुद्ढ़ बनाना।
- संरचनात्मक सुधारों को सघन बनाना तथा औद्योगिक विकास को पुनर्गति देना।
- गरीबों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।
- कर सुधारों का एकीकरण करना और केन्द्र तथा राज्य स्तर पर राजकोषीय समायोजन को जारी रखना।

आम बजट 2002–2003

सस्ता	महंगा
• इस्पात उत्पाद, कम्प्यूटर	रसोई गैस (40 रु०/सिलेण्डर)
• शक्कर (बाजार), ताम्बा	केबल टीवी

- जस्ता, पट्रोल (1 रु० / लीटर)
- डीजल (50 पैसे)
- सिल्क, चाय
- हार्डवेयर उपकरण
- डायबिटीज की दवाएं
- कैंसर प्रतिरोधी दवाएं
- विदेशी शराब
- कृषि उपकरण
- सेल्यूलर, कैमरे, सीमेन्ट
- पेजर, टायर, जूट

- हेल्थ क्लब
- ग्रेनाइट
- सिगरेट
- यूरिया
- डी० ओ० पी० व एम० ओ० पी०
- डाक दर
- राशन की चीनी
- पोलिस्टर कपड़ा
- सी० एन० जी० और डीजल इंजन
- मिट्टी का तेल (1.50 रु० / लीटर)

2002–2003

रुपया आता है	पैसे में	रुपया आता है	पैसे में
उधार और अन्य देनदारिया	29	ब्याज	25
उत्पाद शुल्क	19	रक्षा	14
गैर कर राजस्व	15	आर्थिक सहायता	8
सीमा शुल्क	10	राज्य का हिस्सा (करों व शुल्कों में)	13
निगम कर	10	केन्द्रीय योजना	14
आय कर	9	गैर योजना कर	12
गैर ऋण पूंजी प्राप्तियां	6	योजना सहायता (राज्य व संघ क्षेत्र की)	10
अन्य कर	2	गैर योजना सहायता (राज्य व संघ क्षेत्र की)	4
	100		100

कार्यक्रम बजट

(Programme Budget)

कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया को सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरीका के कई संघीय उपक्रमों में आरम्भ किया गया। परन्तु सरकारी स्तर पर पूर्णतया संघीय सरकार के पी० पी० बी० एस० अथवा नियोजन–कार्यक्रम–बजट–व्यवस्था (Planning-Programming-Budgeting-System) के माध्यम से 1960 वाले दशक में ही अपनाया जा सका। मूल तौर पर इसका विकास अमेरीका के प्रतिरक्षा

विभाग में किया गया था, इस बजट व्यवस्था का उद्देश्य प्रबन्धकों की इस बात में सहायता करना था कि वे अपने बजट के संसाधनों का कैसे आबंटन कर सकें, इस पर वे अक्लमंद, पारदर्शी तथा प्रभावी निर्णय कर सकें।

कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया अन्य बजट–प्रक्रियाओं से इसलिए भिन्न है कि इसका केन्द्र–बिन्दु प्रभावकारिता है। कार्य–निष्पादन जैसी अन्य बजट प्रक्रियाओं जो कुशलता को प्रोत्साहित करती हैं, पर्याप्त नहीं समझी जाती है। पी० पी० बी० एस० के समर्थकों का कहना है कि सरकार को कुशलता की अपेक्षा प्रभावकारिता को प्रथम प्राथमिकता देनी चाहिए। प्रभावकारिता, या सेवाओं का वास्तविक वितरण अधिक महत्वपूर्ण है। एक कुशल सेना का कोई लाभ नहीं जब तक कि वह विजयी सेना न हो। लर्नर तथा जॉन वानत (A.W. Lerner and John Wanat) का विचार है कि कार्यक्रम–बजट से जुड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए धन खर्च करने का सबसे उत्तम तरीका क्या है? कार्यक्रम बजट को तैयार करने के लिए अमुक पग उठाने पड़ते हैंः सर्वप्रथम संगठन को यह सुनिश्चित करना होगा कि उसके लक्ष्य क्या हैं। तब प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसके कर्मचारी इस बात की पहचान करते हैं कि उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्या–क्या विकल्प हैं। प्रत्येक विकन्प के लागत और लाभ की संख्यात्मक ढंग से तुलना की जाती है, जिस विकल्प पर कम से कम लागत कर अधिक से अधिक लाभ (या प्रभावकारिता) प्राप्त होता हो, उसको बजट में सम्मिलित कर लिया जाता है।

बजट मसौदे में कार्यक्रम मूल लेखाकरण इकाई होता है। उदाहरणतया–एक वातावरण सुरक्षा अभिकरण बजट को प्रदूषण अनुसंधान, विधि लागू करना, लोक शिक्षण और सामान्य प्रशासन जैसी श्रेणियों में बांट देगा। प्रदूषण अनुसंधान के विस्तृत कार्यक्रम को शोर, प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण जैसी उप–श्रेणियों में उप–विभाजित किया जाएगा। तब इसको निश्चित कार्यक्रमों तथा उनके विकल्पों में धन खर्च करने के लिए बांटा जाएगा। प्रत्येक विकल्प पर विचार किया जाएगा कि उनमें से कौन–सा बजट में सम्मिलित किया जाए। कभी–कभी यह स्पष्टीकरण भी दिए जायेंगें कि एक निश्चित विकल्प को क्यों चुना गया। कार्यक्रमों के विकल्पों की संख्यात्मक तुलना पी० पी० बी० एस० की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। लागत–लाभ विश्लेषण (Cost-Benefit Analysis) तथा व्यवस्था विश्लेषण (Systems Analysis) कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया में केन्द्रीय महत्त्व रखते हैं।

व्यवस्था सम्बन्धी धारणा (Systems Concept) कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया का आधार होती है। यह इस कल्पना को लेकर चलती है कि सरकार के सभी तत्वों को निकट अन्तर्ग्रथन (Intertwined) है ताकि एक नीति के एक पक्ष में परिवर्तन से शेष सभी पर प्रभाव पड़ता है। लीवाईन, पीटर्ज तथा थामसन (C.H. Levine, B. Guy Peters and Frank J. Thompson) उस कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया जिसका अमेरीका की संघीय सरकार में पालन किया जा रहा है, की छः मुख्य विशेषताएँ बताते हैंः

1. सरकार के मुख्य उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की पहचान करना अनिवार्य है। कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया सरकार के केन्द्रीय लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं से आरम्भ होती है, न कि विभागों या अभिकरणों द्वारा की गई पहल से जैसा कि परम्परागत–बजट में होता है।
2. निश्चित लक्ष्यों के अनुकूल कार्यक्रमों का विकास किया जाना चाहिए, और इनको किस प्रकार प्राप्त किया जाएगा? कार्यक्रमों की विश्लेषणात्मक व्याख्या होनी चाहिए और यह जरूरी नहीं कि वे वर्तमान संगठनों के अन्तर्गत रहें।
3. कार्यक्रमों में संसाधनों का आबंटन करना अनिवार्य है। निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बजट में समूची लागत का ब्यौरा देना जरूरी है। यह दिखाना अनिवार्य है कि यह लागत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित तथा प्रभावकारी साधन है।
4. कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया में संगठनों का अधिक महत्व नहीं है। यह इस धारणा को लेकर नहीं चलती कि प्रत्येक कार्यक्रम एक ही अभिकरण के भीतर रखना जरूरी है अथवा कि एक अभिकरण को केवल एक ही कार्यक्रम से जोड़ना चाहिए।
5. कार्यक्रम बजट–प्रक्रिया की काल–अवधि एक वर्ष से आगे चली जाती है जो कि परम्परागत बजट में सामान्य अवधि मानी जाती है। बजट बनाते समय कार्यक्रमों के दूरगामी तथा मध्यकालीन परिणामों पर ध्यान देना अनिवार्य है।
6. बजट बनाने वाले व्यवस्थित ढंग से विकल्पित कार्यक्रमों का विश्लेषण करते हैं। अधिक प्रभावकारी तथा कुशल स्वरूप के लिए वे वर्तमान कार्यक्रम संरचनाओं के विकल्पों की छानबीन करते हैं। उनसे यह आशा की जाती है कि वे अपने कार्यक्रमों का औचित्य सिद्ध करें ताकि ये देखा जा सके कि वे कार्यक्रम उनके विकल्पों से बेहतर है।

कार्यक्रम बजट के दोष

(Defects of the Programme Budget)

बवजूद इसके कि पी० पी० बी० एस० लागत प्रभावी है और कार्यक्रमों को पूरा करना इसका लक्ष्य है, फिर भी यह प्रक्रिया अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। संयुक्त राज्य अमेरीका की सरकार ने इसको जानसन प्रशासन काल में अपनाया था, परन्तु 1970 से प्रारम्भ होने वाले दशक के शुरू में ही इसे छोड़ दिया। इसके जो दोष हैं, वे इसके कुछ एक लाभों से कहीं अधिक हैं। इसके मुख्य दोष इस प्रकार हैं:

1. कार्यक्रम बजट प्रक्रिया बहुत महंगी है।
2. कार्यक्रम बजट बनाने के लिए जिस प्रयास तथा समय की आवश्यकता होती है, वह कम नहीं है, और वह अन्य प्रकार के बजटों के बनाने के प्रयासों और समय से कहीं अधिक है।

3. कभी–कभी कार्यक्रमों से होने वाले लाभों के संख्यात्मक मापन विकसित करने असम्भव हो जाते हैं।
4. चूंकि यह बजट–प्रक्रिया विवरूा करती है कि सरकारी पदसोपान के उच्च स्तरों पर निर्णय किये जायें, इसलिए अधिकत्तर विभाग तथा अभिकरण इस केन्द्रीकरण की प्रवृति को पसंद नहीं करते।
5. सभी विकसित रणनीतियों का विश्लेषण करने की खोज एक विभाग या अभिकरण को विवश करती है कि वह अपने वर्तमान कार्यक्रमों को आलोचना के लिए नंगा करे।
6. विकल्पित नीतियों के कारण सम्बन्धित विभाग अथवा अभिकरण की कार्य सार्थकता कम हो जाती है। इसे अपनी नीति चयनों को लिखित रूप में उचित ठहराना पड़ता है जिसके कारण विभिन्न समूहों के साथ व्यवहार करते समय वह अस्पष्टता का सामरिक प्रयोग करने में सीमित हो जाता है।

परन्तु कई संगठनों में पी० पी० बी० एस० की कुछ तकनीकें अभी भी बची हुई हैं। यदि किसी संगठन के पास यथा–उचित कुशल कर्मचारी हैं तो इसकी तकनीकें बजट के नए प्रस्तावों और सुझावों के मूल्यांकन के लिए विशेषतया मूल्यवान है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने वित्तीय प्रशासन को पांच सुनिश्चित चरणों में बांटा था– बजट को बनाना अथवा तैयार करना; बजट का विधानमण्डल द्वारा पारित किया जाना; बजट को लागू करना या क्रियान्वयन; राजकोष प्रबंधन तथा लेखाकरण और लेखापरीक्षण। अब आने वाले पृष्ठों में इन पर एक–एक करके विचार किया जाएगा।

भारत में निष्पादन बजट

(Performance Budgeting in India)

निष्पाद बजट की अवधारणा का आरम्भ संयुक्त राज्य अमेरीका में हुआ। 1950 में अमेरीका की सरकार ने इस प्रकार के बजट को स्वीकार कर लिया है। एशिया, अफ्रिका तथा लैटिन अमेरीका के अनेक देशों ने भी इसको अपना लिया है।

भारत में निष्पाद बजट को 1955 के दशक में मान्यता प्राप्त हुई। अनुमान स्थिति ने अपनी 20वीं रिपोर्ट में यह सिफारिस की कि विकास की बढ़ती हुई क्रियाओं के सन्दर्भ में भारत में निष्पाद बजट श्रेयस्कर रहेगा। यही सिफारिस अनुमान समिति ने 1960 में 73वीं रिपोर्ट में दोहराई। 1964 में भारत ने अमेरीकी विशेषज्ञ फ्रैंक क्राउज (Frank Krause) को यह जानने के लिए आमन्त्रित किया कि भारत में निष्पाद बजट को बनाया जा सकता है या नहीं। क्राउज ने निष्पाद बजट को आरम्भ करने की सिफारिस की। 1969 में प्रशासकीय सुधार आयोग ने वित्त प्रशासन सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट में केन्द्र तथा राज्यों दोनों में निष्पाद बजट अपनाने का सुझाव दिया। आयोग ने

कहा कि वित्त मन्त्रालय को निष्पाद बजट अपनाने में पहल करनी चाहिए तथा राज्यों को भी इस दिशा में प्रेरित करना चाहिए। केन्द्रीय सरकार ने 1968 में इस सिफारिस को मान लिया तथा चार मन्त्रालयों में निष्पाद बजट तैयार किए गए। 1977–78 में केन्द्रीय सरकार के 38 विकासीय विभागों ने निष्पाद बजट प्रस्तुत किए। कुछ राज्य सरकारों ने भी कुछ विभागों में निष्पाद बजट प्रणाली आरम्भ की।

भारत में निष्पाद बजट का मूल्यांकन

(An Assessment)

भारत में निष्पाद बजट अपना तो लिया गया है परन्तु जो लाभ इससे होने वाले थे वे नहीं हुए। वास्तव में इसके क्रियान्वयन में निम्नलिखित दोष पाए गए हैं–

1. इनपुट और आउटपुट में कोई सम्बन्ध नहीं है।
2. महत्त्वपूर्ण प्रोग्रामों के बारे में इकाई लागत संख्या को नहीं अपनाया गया है।
3. उद्देश्यों को सही प्रकार से निर्धारित नहीं किया जाता तथा निष्पादन को वैज्ञानिक ढंग से नहीं मापा जाता। वास्तव में वैज्ञानिक मानक निष्पाद के मापने तथा उद्देश्यों को निर्धारित करने की एक प्राथमिक आवश्यकता है।
4. निष्पाद बजट में गत वर्षों एवं चालू वर्ष की उपलब्धियों एवं उद्देश्यों को दिखलाया जाता है। भारत में अनेक मामलों में उपलब्धियों को नहीं दर्शाया जाता जिससे प्रबन्धकीय नियन्त्रण में बाधा आती है।
5. निष्पाद बजट की प्रविधि को प्रत्येक विभाग द्वारा नहीं अपनाया गया है जिससे इसकी उपयोगिता कम हो गई है।
6. यद्यपि अनेक परियोजनाएँ कई वर्षों तक चलती हैं परन्तु निष्पाद बजट में भावी वर्ष की लागतों को नहीं दिखलाया जाता।

2.3.4 निष्कर्षः–

यदि निष्पाद बजट को उपयोगी बनाना है तो इन दोषों को दूर करना होगा। निष्पाद बजट को प्रशासकीय एवं वित्तीय नियन्त्रण तथा विकास प्रोग्रामों के क्रियान्वयन एवं उपलब्धियों के मूल्यांकन हेतु एक लाभदायक प्रबन्धकीय उपकरण बनाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इससे संसद द्वारा कार्यकारिणी को उत्तरदायी ठहराने के लिए सहायता मिलनी चाहिए। नियोजन एवं बजट निर्माण के मध्य पूर्ण तालमेल पंचवर्षीय योजनाओं के प्रोग्रामों एवं परियोजनाओं के दक्ष क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने लेखा प्रणाली में भी सुधार करने का सुझाव दिया था। लेखा प्रणाली में सुधार करने के लिए विभिन्न

मन्त्रालयों एवं विभागों के प्रशासकीय संगठन का भी पुनर्गठन करने की अति आवश्यकता है। इस दिशा में 'ओ एण्ड एम' इकाई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

2.3.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. परम्परागत बजट
2. निष्पादक बजट
3. कार्यक्रम बजट

2.3.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत के सन्दर्भ में परामपरागत बजट का अर्थ स्पष्ट करें।
2. निष्पादक बजट के दो लाभ बताइए।
3. कार्यक्रम बजट की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत जैसे विकासशील देश के सन्दर्भ में निष्पादक बजट को स्पष्ट करें। इसमें लाभ और हानियों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करें।
2. कार्यक्रम बजट पर विस्तृत नोट लिखें। क्या आपकों लगता है कि भारत में कार्यक्रम बजट एक सफल निर्माण की प्रक्रिया हैं।

सन्दर्भ सूची

1. जी. एस. लाल, पब्लिक फाइनैन्स एण्ड फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, कपूर 1976
2. एम. जे. के. थावराज, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, सुल्तान चन्द, 1978
3. एच. सी. एडम, दी साइन्स ऑफ फाइनेन्स, न्यूयार्क, 1908
4. आ. एन. भार्गव, इण्डियन पब्लिक फाइनेन्स, 1977
5. आर. के. सिन्हा, फिस्कल फेडरेशन इन इण्डिया, स्टर्लिंग, 1987
6. वैंकेट गिरि गोवदा, फिस्कल रवोलूसन इन इण्डिया, इन्डस, 1987
7. ए. प्रेमचन्द, गवर्नमैन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपैंडीचर कन्ट्रोल : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, वाशिंगटन, 1983
8. एम. एम. सूरी, गवर्नमैन्ट बजटिंग इन इण्डिया, कामनवेल्थ, 1990
9. ए. प्रेमचन्द, परफोरमैन्स, बजटिंग, एकेडमिक, 1969

10. के. एल. हांडा, एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल एण्ड जीरो बेस बजटिंग, नई दिल्ली, 1991
11. पी. एल. जोशी एण्ड वी. पी. राजा, टैकनीक्स ऑफ जीरो बेस बजटिंग, हिमालय, 1988
12. पीटर ए. पाइहर, जीरो बेस बजटिंग, न्यूयार्क, 1973
13. आस्टिन ऐलन, जीरो बेस बजटिंग : ए डिसीजन पैकेज मेन्यूअल, 1979
14. पॉल जे. स्टानिका, जीरो बेस प्लानिंग एण्ड बजटिंग, 1977
15. हरबर्ट ब्रिटेन, ब्रिटिश बजटरी सिस्टम, लन्दन जार्ज एलन एण्ड अनविन, 1959
16. जैस बर्कहैड, गवर्नमेन्ट बजटिंग, न्यूयार्क जॉन विले एण्ड सन्स, 1956
17. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
18. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
19. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
20. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
21. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
22. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.4

वित्त पर संसदीय नियन्त्रण

(Parliamentary and Administrative Control over Finance in India and U.K.)

2.4.1 परिचयः–

वित्त प्रशासन की अन्तिम सोपान पर संसदीय नियन्त्रण है। जैसे की ऊपर लिखा जा चुका है कि कार्यपालिका बजट का निर्माण करती है, इसे विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत किए जाने के उपरान्त कार्यान्वित करती है और कर अथवा राजस्व को एकत्रित करती है, परन्तु बजट को कार्यान्वित करते समय व्यय पर नियन्त्रण रखना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि राजस्व को एकत्रित करने से यह अधिक महत्त्वपूर्ण विषय है। व्यय नियन्त्रण के दो मुख्य उद्देश्य हैं एक तो यह है कि कहीं व्यय विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत अनुदानों से अधिक न हो और यदि करना भी पड़े तो इसके लिए विधानमण्डल से पुनः स्वीकृति ली जाए। दूसरे व्यय किसी प्रकार से अनुचित न हो और विधानमण्डल से पुनः स्वीकृति ली जाए। दूसरे व्यय किसी प्रकार से अनुचित न हो और विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत अनुदानों को खर्च करते समय आवश्यकता तथा मितव्ययता को ध्यान में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका जनता का प्रतिनिधित्व करती है और इसके द्वारा नियन्त्रण वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप में जनता द्वारा नियन्त्रण है।

2.4.2 उदेश्यः–

1. संसद द्वारा वित्त व्यवस्था के नियन्त्रण की अवस्थाओं की जानकारी प्राप्त करना।
2. अनुमान समिति, लोक लेखक समिति नियन्त्रक एवम् महालेखा परिक्षण की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
3. भारत में वित्त पर प्रशासकिय नियन्त्र की अवस्थाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
4. भारतीय वित्तिय व्यवस्था के विभिन्न संस्थाओं की जानकारी प्राप्त करना।

2.4.3 वित्त पर संसदीय नियन्त्रण :–

भारत में संसदीय पद्धति की व्यवस्था के कारण कार्यपालिका संसद की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का कोई व्यय नहीं कर सकती और न ही कोई कर लगा सकती है। संसद के सदस्य किसी समय देश की आर्थिक, प्रशासनिक अथवा अन्य किसी स्थिति के बारे में मन्त्रियों से प्रश्न

पूछ सकते हैं तथा मन्त्रियों को उन्हें उत्तर देना पड़ेता है। इस प्रकार देश की वित्त–व्यवस्था पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण होना आवश्यक है।

संसद द्वारा देश की वित्त व्यवस्था पर दो अवस्थाओं में नियन्त्रण किया गया जाता है– (क) विनियोग विधेयक (Appropriation Act) के पारित किए जाने से पहले (ख) विनियोग विधेयक अथवा बजट के पास होने के पश्चात्। लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में जहाँ प्रभुसत्ता संसद में निहित होती है इन दोनों प्रकार का नियन्त्रण अनिवार्य है।

विनियोग विधेयक के पास होने से पहले नियन्त्रण

(Control Before Passing the Appropriation Bill)

इस स्थिति में संसद निम्न प्रकार से नियन्त्रण करती है।

1. **सामान्य वाद–विवाद (General Discussion):** वित्त व्यवस्था पर संसदीय नियन्त्रण का महत्वपूर्ण साधन वित्तीय अनुमानों पर संसद विशेषकर लोकसभा में वाद–विवाद है। जब वितमन्त्री भाषण के साथ बजट अनुमान लोकसभा में प्रस्तुत करता है तो इन अनुमानों पर सामान्य रूप में वाद–विवाद होता है। इस समय संसद के सदस्य सरकार की नीतियों तथा कार्य–प्रणाली पर विचार प्रकट करते हैं और सरकार की नीतियों की आलोचना करते हैं।
2. **मांगों पर मतदान (Voting on Demand):** सामान्य वाद–विवाद के बाद सरकार के सभी विभागों के अनुमानों पर अलग–अलग बहस होती है और मतदान होता है। ऐसी स्थिति में संसद के सदस्य कई प्रकार के प्रश्न पूछ सकते हैं और कई प्रकार के प्रस्ताव (क) नीति सम्बन्धी कटौती प्रस्ताव (Policy Cut Motion), (ख) मितव्ययिता कटौती प्रस्ताव (Economy Cut Motion), (ग) प्रतीक कटौती प्रस्ताव (Token Cut Motion) आदि पेश कर सकते हैं और इन प्रस्तावों द्वारा सरकार द्वारा पेश की गई मांगों में संसद कर सकती है। यदि संसद (लोकसभा या राज्यों में विधानसभा) इनमें से किसी भी मांग को किसी प्रस्ताव के अनुसार कम कर दे या अस्वीकार कर दे तो इसे सरकार के विरूद्ध विश्वास समझा जाता है और मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। इस प्रकार बजट अनुमानों की स्वीकृति तथा अस्वीकृति पर मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों को अपने–अपने विभागों के सम्बन्ध में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं।
3- **विनियोग बिल को पास करना (To Pass Appropriation Bill):** संसदीय नियन्त्रण संसद में बजट अनुमानों की स्वीकृति तक ही सीमित नहीं है। इससे सरकार को धनराशि प्राप्त करने का अधिकार नहीं मिलता। इस कार्य के लिए सरकार को बजट अनुमान की मांगों की स्वीकृति के पश्चात् विनियोग बिल को संसद में प्रस्तुत करना पड़ता है। इस स्तर पर

चाहे वाद–विवाद नहीं होता और न ही संशोधन का प्रस्ताव पेश किया जा सकता है, परन्तु इसे स्वीकृत करना या न करना संसद की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि लोकसभा मतदान के समय इसके पक्ष में बहुमत न हो तो यह अस्वीकृत हो जाता है। विनियोग बिल को लोकसभा द्वारा अस्वीकृत होना सरकार के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव समझा जाता है तथा मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है।

4. **पूरक अनुदान की स्वीकृति (Passing of Supplementary Grants):** बजट अनुमानों की भांति पूरक अनुमानों द्वारा भी संसद वित्तीय व्यवस्था करती है। जिस प्रकार बजट अनुमानों को पारित करने करने के लिए विशेष प्रक्रिया को अपनाया जाता है। उसी प्रकार से पूरक अनुदानों को पास किया जाता है। जब सरकार को आवश्यकताओं की बजट अनुमानों द्वारा पारित धनराशि से पूर्ति नहीं होती तो यह सरकार के समक्ष पूरक अनुदान की मांग रखती है। संसद में इन मांगों पर वाद–विवाद होता है। संसद सदस्य सम्बन्धित मन्त्रियों से उन मांगों के बारे में किसी प्रकार के प्रश्न पूछ सकते हैं। मन्त्रियों को उनके उत्तर देने पड़ते हैं। यदि संसद किसी पूरक अनुदान की मांग को अस्वीकार कर दे तो मन्त्रिमण्डल के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव समझा जाता है और इसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

अनुमान समिति

(Estimate Committee)

राष्ट्रीय वित्त पर संसदीय नियन्त्रण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम अनुमान समिति है। इस समिति का मुख्य कार्य संसद के प्रत्येक कार्य को मितव्ययिता (Economy) के साथ करने के बारे में सलाह देना है। इस प्रकार की समिति की आवश्यकता को इंग्लैण्ड में इस शताब्दी के आरम्भ में अनुभव किया गया और 1912 में इसकी स्थापना की गई। इसकी स्थापना सरकार के व्यय में मितव्ययिता लाने की दृष्टि से की गई थी। भारत में इस समिति की स्थापना पहली बार 1938 में की गई क्योंकि ब्रिटिश सरकार यह नहीं चाहती थी कि उसकी नीतियों की आलोचना हो, इसलिए यह समिति ठीक प्रकार से कार्य न कर सकी। इसके पश्चात् कई बार इस समिति की स्थापना की मांग की गई, परन्तु अंग्रेज सरकार ने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। 1950 में नये संविधान के कार्यान्वित हो जाने के पश्चात् अनुमान समिति की स्थापना करने की मांग अधिक बल पकड़ गई। अन्त में 10 अप्रैल, 1950 को भूतपूर्व वित्तमन्त्री डॉ० जान मथाई (Joan Mathai) के परामर्श के अनुसार अनुमान समिति की स्थापना की गई। इस समिति का मुख्य उद्देश्य सरकार को ऐसी सलाह देना है जिससे सरकार के निश्चित उद्देश्यों को न्यूनतम अथवा कम से कम व्यय करके पूरा किया जा सके। इसके द्वारा संसद सरकार के समस्त व्यय तथा प्रत्येक विभाग को व्यय पर नियन्त्रण करती है।

संगठन

(Composition)

इस समिति के 30 सदस्य हैं जिनका निर्वाचन प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में लोकसभा के सदस्य अपने में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) प्रणाली द्वारा करते हैं। समिति के सदस्यों में से एक सदस्य को लोकसभा का अध्यक्ष अथवा स्पीकर, समिति का अध्यक्ष मनोनीत करता है। यदि लोकसभा का उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) इस समिति का सदस्य चुना गया हो तो वह इसका पदेन (Ex-Officio) अध्यक्ष है।

कार्य

(Function)

अनुमान समिति के निम्नलिखित कार्य हैं।

1. प्रशासन में मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता लाने के लिए लोकसभा को सुझाव देना।
2. प्रशासन में कार्यकुशलता तथा मितव्ययिता लाने के लिए सरकार की वर्तमान नीति के स्थान पर कोई अन्य सुझाव देना।
3. इस बात का परीक्षण करना कि प्रशासकीय कार्य में लगाना गया धन अनुमान में निहित नीति की सीमाओं के अर्न्तगत हैं या नहीं।
4. अनुमानों को संसद के समझ रखे जाने की विधि के सम्बन्ध में सुझाव देना।

अनुमान समिति के कार्य करने की विधि

(Working of the Estimate Committee)

यह समिति अपना कार्य करने के लिए एक निश्चित विधि अपनाती है। यह साधारणतया मन्त्रालयों, सरकारी विभागों या सार्वजनिक उद्यमों (Public undertaking) की योजनाओं कर परीक्षण करती है। यह किसी भी योजना का परीक्षण करते समय उस मन्त्रालय का किसी कर्मचारी को योजना का स्पष्टीकरण करने के लिए बुला सकती है। इस कार्य के लिए उस मन्त्रालय के कर्मचारी को ही बुलाया जाता है जिसके मन्त्रालय से सम्बन्धित विषय पर यह समिति विचार कर रही हो। कई तकनीकी (Technical) विषयों को सम्बन्ध में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की सहायता भी लेती है। समस्त नीति का विस्तृत रूप में परीक्षण करने के पश्चात् यह समिति अपनी रिपोर्ट लोकसभा के स्पीकर (Speaker) को पेश करती है। वह इसे सदन में प्रस्तुत करता है।

अपने कार्य को सुगम बनाने के लिए वह अपने कार्य को उप–समितियों (Sub-Committee) में विभाजित करती है क्योंकि अनुमान समिति संसद की एक महत्त्वपूर्ण समिति है, इसलिए सरकार इस समिति के सुझावों की ओर विशेष ध्यान देती है। प्रायः इसके सुझावों को

कार्यान्वित करने का प्रयत्न करती है। जब यह समिति अपनी रिपोर्ट किसी विशेष मन्त्रालय के सम्बन्ध में देती है तो सम्बन्धित मन्त्रालय समय–समय पर इसके अनुसार किये गए कार्यों की सूचना समिति को देता है। यह समिति उस मन्त्रालय द्वारा किए कार्य का पुनर्निरीक्षण करती है तथा उसके सम्बन्ध में एक नई रिपोर्ट लोकसभा देती है। यदि सरकार इस समिति के किसी सुझाव को स्वीकार करने के योग्य न समझे तो सरकार समिति से उस पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना करती है। यदि समिति कोई निर्णय न करे तो अन्तिम निर्णय संसद ही करती है।

महत्त्व (Importance):

अनुमान समिति के महत्त्व में दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि सरकार यह अनुभव करती है कि जब तक वह समिति द्वारा किए गए सुझावों को स्वीकार नहीं करती, संसद में इसकी आलोचना होती रहेगी। दूसरे, इस समिति में लगभग सभी दलों के प्रभावशाली नेता होते हैं जिसके फलस्वरूप उसके द्वारा रखे गए सुझावों को सभी दलों का समर्थन प्राप्त होता है। तीसरे, यह समिति सभी योजनाओं का परीक्षण नियन्त्रण, महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) तथा दूसरे निपुण सरकारी कर्मचारियों की सहायता से करती है, इसलिए इस द्वारा रखी गई योजनाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

विनियोग विधेयक एवं बजट के पास होने के पश्चात् नियन्त्रण

(Control after Passing the Appropriation Act or the Budget)

विनियोग अधिनियम के पास होने से पूर्व संसदीय नियन्त्रण एक औपचारिक कार्यवाही है। चाहे कई बार सरकार संसद के सदस्यों द्वारा दिए गए सुझावों एवं प्रस्तुत किए गए प्रस्तावों को स्वीकार कर लेती है और उनके अनुसार अपनी नीतियों में परिवर्तन कर लेती है, परन्तु व्यवहारिक रूप में स्थिति भिन्न है। वास्तव में मन्त्रिमण्डल को लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होने के कारण जो भी बजट अनुमान तथा वित्त नीति सरकार द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत की जाती है वह पास हो जाती है।

विरोधी दल द्वारा की गई आलोचना का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है और न ही इस स्तर पर सरकार की वित्तीय नीति को परखा जा सकता है। इसलिए वास्तव में संसद द्वारा वित्तीय नियन्त्रण विनियोग पास होने के पश्चात् ही आरम्भ होता है। परन्तु ऐसी दशा में भी संसद की कुछ अपनी ही विशेषताएं हैं। एक तो संसद के सदस्यों को वित्तीय मामलों का न तो ज्ञान होता है और न ही संसद के पास इतना समय होता है कि वह वित्तीय मामलों एवं बजट अनुमानों का विस्तारपूर्वक निरीक्षण कर सके। ऐसी दशा में वित्तीय व्यवस्था पर विस्तृत रूप में निरीक्षण के लिए संसद द्वारा कई समितियों, अनुमान समिति, सार्वजनिक

लेखा–समिति परीक्षक द्वारा तथा विभागों के लेखांकन (हिसाब–किताब) की जांच–पड़ताल करवाती है और उस द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट पर विचार करती है।

सार्वजनिक लेखा समिति

(Public Accounts Committee)

संसद की दूसरी वित्त समिति सार्वजनिक लेखा समिति है। जिस प्रकार अनुमान समिति सरकार द्वारा व्यय करने से पहले इसका परीक्षण करती है, उसी प्रकार सार्वजनिक समिति व्यय करने के पश्चात् उनकी जांच–पड़ताल करती है कि जनता के धन का प्रयोग वैधानिक साधनों द्वारा हुआ है या नहीं। वह इस बात की पड़ताल करती है जो भी खर्च संसद की स्वीकृति से हुआ है या नहीं या उस इकाई (Agency) द्वारा किया गया है कि नहीं जिसको संसद द्वारा शक्ति प्रदान की गई है। इस समिति का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि जनता के रुपये का उचित प्रयोग हुआ है या नहीं।

इस प्रणाली की स्थापना भी ब्रिटिश प्रणाली के आधार पर की गई है। इंग्लैण्ड में इस समिति की स्थापना 1861 ई० में ग्लैडस्टोन (Gladstone) द्वारा की गई थी, भारत में इस समिति को प्रथम बार 1919 ई० में माण्टेगयू–चैम्सफोर्ड सुधारों (Montague-Chelmsford Reforms) के अनुसार केन्द्र तथा प्रांतों के स्तर पर स्थापित किया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् नवीन संविधान की धारा 118 (1) के अन्तर्गत संसद को सार्वजनिक लेखा समिति तथा राज्यों के विधानमण्डलों को धारा 208 के अन्तर्गत इस प्रकार की समितियां बनाने की शक्ति प्रदान की गई।

संगठन (Composition)

आरम्भ से इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 थी, परन्तु 1955 में राज्यसभा के बल देने पर इनकी संख्या 22 कर दी गई जिनमें से 15 लोकसभा द्वारा तथा 7 राज्यसभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुने जाते हैं। कोई भी मन्त्री इस समिति का सदस्य नहीं बन सकता। इस समिति के सदस्यों में से किसी एक सदस्य को लोकसभा का अध्यक्ष समिति का अध्यक्ष मनोनीत करता है। यदि लोकसभा का उपाध्यक्ष इस समिति का सदस्य हो तो वह समिति पदेन अध्यक्ष (Ex-Officio President) बन जाता है। अध्यक्ष को निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार है।

कार्य (Function)

सार्वजनिक लेखा समिति के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. यह समिति इस बात की देखभाल करती है कि जो धनराशि खर्च की गई है, वह संसद द्वारा स्वीकृत की गई है या नहीं।
2. समिति यह देखती है कि जिस सअधिकारी द्वारा खर्च किया गया है, वह अधिकारी खर्च करने का अधिकार भी रखता है या नहीं।
3. यह समिति सरकारी निगमों तथा परियोजनाओं द्वारा खर्च की जांच पड़ताल महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए करती है।
4. यह समिति उन विवरणो, तुलनापत्रों तथा लाभ–हानि के विवरणों की जांच पड़ताल करती है जिन्हें किसी विशेष निगम, व्यापारिक संस्था एवं परियोजना की वित्त व्यवस्था को नियमित करने वाले वैधानिक नियमों के अनुसार तैयार किया गया हो या राष्ट्रपति उन्हें स्वीकार करना आवश्यक समझे।
5. यह समिति सरकार के अधीन किसी भी संस्था के खर्च की जांच–पड़ताल कर सकती है तथा उसकी रिपोर्ट संसद के समक्ष प्रस्तुत करती है।
6. यह समिति उन सवायत्त संस्थाओं की आय तथा व्यय के प्रपत्रों की जांच–पड़ताल करती है जिनका लेखा परीक्षण भारत के नियन्त्रक लेखा–परीक्षक द्वारा किया जाता है।
7. यह उन विषयों के सम्बन्ध में नियन्त्रक–महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन (Report) पर विचार करती है जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रपति इससे किसी भी आय प्राप्ति का लेखा परीक्षण की मांग करे।

कार्य–विधि (Working Procedure)

यह समिति अपना कार्य करने के लिए सरकारी या किसी दूसरी संस्था के कर्मचारी को, जिसके हिसाब–किताब की यह पड़ताल कर रही हो, सफाई पेश करने के लिए बुला सकती है या कुछ ऐसे अभिलेखों की मांग कर सकती है जिनकी उसे जांच के कार्य में आवश्यकता हो। इसके अतिरिक्त जो अभिलेख इस समिति के विचाराधीन हो, उस पर यह प्रश्न पूछ सकती है। व्यवहार में जिन मन्त्रालयों तथा विभागों के अभिलेखों की यह समिति जांच करती है उन मन्त्रालयों को सचित या अन्य अधिकारी स्पष्टीकरण करने के लिए समिति के समक्ष उपस्थित होते हैं तथा समिति द्वारा पुछे गए प्रश्नों के उत्तर देते हैं। समिति अपनी जांच नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन के आधार पर करती है तथा नियन्त्रक महालेखा परीक्षक इस कार्य में समिति की सहायता करता है। समिति का मुख्य कार्य नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट की जांच–पड़ताल करना है ताकि यह ज्ञात हो सके कि सरकार द्वारा किया गया व्यय संसद द्वारा स्वीकृत मांगों के अन्तर्गत किया गया है या नहीं। समिति जांच–पड़ताल के पश्चात् अपनी रिपोर्ट संसद के समक्ष रख देती है। सरकार बिना किसी भेदभाव के उस रिपोर्ट को स्वीकार कर लेती है और यदि सहमत न हो तो समिति से पुनर्विचार के लिए प्रार्थना करती है। सरकार प्रायः समिति द्वारा दिए गए सुझावों को स्वीकार

करती है। यदि सरकार समिति द्वारा रखे गए सुझावों को कार्यान्वित करने में कठिनाई अनुभव करे तो इसके लिए कारण बताती है और समिति से पुनर्विचार के लिए प्रार्थना करती है। समिति इस पर फिर से विचार करती है। यदि फिर भी सरकार तथा समिति के दृष्टिकोण में भिन्नता हो तो मामला संसद में रखा जाता है जिसका अन्तिम निर्णय होता है।

महत्त्व (Importance)

इस प्रकार सार्वजनिक लेखा समिति सरकार के प्रत्येक कार्य पर किए गए व्यय पर दृष्टि रखती है और सेसद के प्रतिनिधि के रूप में सरकार के अभिलेखों की जांच करती है। इसे जनता की धनराशि का संरक्षक कहा जाता है। वास्तव में इस समिति ने सरकार की कई त्रुटियों तथा इसके द्वारा नियमों के उल्लंघन पर प्रकाश डाला है जैसा कि 1948 तथा 1949 में इण्डियन हाई कमिश्नर (Indian High Commissioner) द्वारा इंग्लैण्ड में शराब पर बिना किसी टैण्डर के व्यय करना। इसके अतिरिक्त समय–समय पर इसके अन्य लोकापवादों (Scandals) पर प्रकाशा डाला है जैसे इंग्लैण्ड में भारत के राजदूत द्वारा किए गए जीप स्कैंडल, हीराकुण्ड डैम में फिजूलखर्ची, डाक व तार विभाग में भ्रष्टाचार आदि। पिछले दो–तीन वर्षों में इस समिति ने बहुत ही सराहनीय काम किया है तथा केन्द्रीय सरकार के मन्त्रियों द्वारा वित्त नियमों की उल्लंघना करने पर प्रकाश डाला है जिसके लिए मन्त्रियों को संसद के प्रति उत्तरदायी होना पड़ा है। वास्तव में यह समिति देश की वित्त–व्यवस्था पर एक महान प्रतिबंध है और प्रायः अधिकारी अपनी शक्ति का अनुचित प्रयोग इस समिति के भय से नहीं करते। इसका देश की आर्थिक स्थिति पर पूर्ण नियन्त्रण है। अशोक चंदा के शब्दों में, "इस समिति ने लोक–व्यय पर नियन्त्रण करने वाली एक महान शक्ति का रूप धारण कर लिया है।"

सार्वजनिक उद्यमों से सम्बन्धित समिति

(Committee for Public Sector Undertaking)

सार्वजनिक उद्यमों की वित्त व्यवस्था तथा सामान्य नीति पर संसदीय नियन्त्रण के लिए संसद द्वारा इस समिति की स्थापना 1 मई, 1964 को की गई। इससे पहले सार्वजनिक उद्यमों पर नियन्त्रण करने के लिए संसद की कोई विशेष समिति नहीं थी तथा यह कार्य अनुमान समिति तथा सार्वजनिक लेखा समिति द्वारा किया जाता था। संसद के सदस्य इस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। वे कई वर्षों तक एक पृथक समिति की व्यवस्था करने की निरंतर मांग करते रहे। अन्ततः संसद ने सन् 1963 में अन्त में सार्वजनिक उद्यमों के लिए पृथक् समिति बनाने के पक्ष में एक प्रस्ताव पास किया जिसके फलस्वरूप इस समिति की स्थापना की गई।

इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 थी जिनमें से 10 लोकसभा द्वारा तथा 5 राज्यसभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुने जाते थे। 1 अप्रैल, 1974 से इसके सदस्यों की संख्या 22 हो गई है। जिनमें से 15 लोकसभा द्वारा पांच राज्यसभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधि प्रणाली द्वारा चुने जाते हैं। आरम्भ में इस समिति के सदस्यों में से 1/3 सदस्य प्रतिवर्ष निवृत्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं।

कार्य (Function)

इस समिति के निम्न कार्य हैं–

1. सार्वजनिक उद्यमों की रिपोर्टों तथा अभिलेखों (Accounts) की जांच पड़ताल करना।
2. सार्वजनिक उद्यमों के सम्बन्ध में यदि कोई नियन्त्रक–महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट हो तो उसकी जांच करना।
3. सार्वजनिक उद्यमों की स्वायत्तता तथा कार्यकुशलता के सम्बन्ध में यह जांच करना कि इन उद्यमों का शासन संचालन एवं प्रबन्ध व्यवस्था व्यावसायिक सिद्धान्तों तथा उपयुक्त वाणिज्यिक नियमों के अनुसार है कि नहीं।
4. सार्वजनिक उद्यमों से सम्बन्धित अन्य ऐसे कार्यों की जो अनुमान समितियां सार्वजनिक समिति को सौंपे गए हों तथा वे कार्य जो समय–समय पर लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा समिति को सौंपे गए हों, जांच पड़ताल करना।

परन्तु यह समिति सार्वजनिक उद्यमों के दिन–प्रतिदिन के शासन सम्बन्धी कार्यों, व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक कार्यों एवं व्यावसायिक कार्यों तथा आन्तरिक मामलों पर विचार नहीं करती।

भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक

(Comptroller and Auditor General of India)

भारत में संसदीय शासन पद्धति की व्यवस्था की गई है जिसके अनुसार सरकार संसद की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का कोई व्यय नहीं कर सकती और न ही कोई कर लगा सकती है। वस्तुतः सरकार प्रशासन तथा वित्त–सम्बन्धी मामलों के बारे में संसद के प्रति उत्तरदायी है। संसद के सदस्य किसी भी समय देश की आर्थिक, प्रशासनिक एवं अन्य किसी स्थिति के बारे में सरकार से प्रश्न पूछ सकती है तथा मन्त्रियों को उत्तर देना पड़ता है। देश की वित्त–व्यवस्था पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण होना आवश्यक है, परन्तु संसद सदस्यों को वित्तीय समस्याओं (Financial Problems) का ज्ञान नहीं होता और न ही वे सरकार के स्थायी कर्मचारियों की भांति पूर्ण काल के लिए काम करते हैं, इसलिए संसद को सरकार की वित्त नीति एवं व्यवस्था पर नियन्त्रण करने के लिए वित्त प्रशासन में निपुण नियन्त्रक एवं महालेखा

परीक्षक (Comptroller and Auditor General) की सहायता लेनी पड़ती है। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक संसद के प्रतिनिधि के रूप में तथा लोगों के अधिकारों के रक्षक के रूप में सरकार की आर्थिक नीति तथा वित्त–व्यवस्था पर नियन्त्रण करता है। सरकार का कोई भी विभाग अथवा अधिकारी नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वीकृति के बिना एक जैसा भी नहीं खर्च कर सकता तथा खर्च के पश्चात् उसे इसके लिए नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है।

वित्त पर प्रशासकीय नियन्त्रण

(Administrative Control over Finance)

शासन विभाग या कार्यकारिणी सरकार या सभा (Executive Government)

वित्तीय मामलों में भारत सरकार की नीतियों को कार्यान्वित करने का अन्तिम उत्तरदायित्व प्रशासन पर ही है। जो कुछ भी व्यय होता है, वह तो नीति के आधार पर ही होता है। इस प्रकार सरकार संसद की नीति को कार्यान्वित करती है। सभी वित्तीय प्रश्न जिन्हें मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति मिलती है, वे मन्त्रिमण्डल की एक समिति, जिसे आर्थिक समिति (Economic Committee) कहते हैं, के समक्ष जाते हैं। इस समिति में वित्तमन्त्री के अतिरिक्त, पांच अन्य मन्त्री होते हैं, जिनका सम्बन्ध विशेषतः आर्थिक मामलों से होता है। इस विधि में निर्मित हुई इस आर्थिक समिति के प्रमुख कार्य हैं–आर्थिक क्षेत्र में सरकार की सभी क्रियाओं का निर्देशन एवं समन्वय करना, केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विकास कार्यों में प्राथमिकता का निर्धारण करना तथा साधनों के विकास के सम्बन्ध में सिफारिश करना। इस प्रकार आर्थिक समिति द्वारा ही सरकार वित्तीय–नियन्त्रण रखने में सफल होती है।

वित्त मन्त्रालय (Finance Ministry)

व्यय नियन्त्रण का तीसरा साधन भारत में वित्त–मन्त्रालय है। राज्यों में वित्त विभाग इस कार्य को सम्पादित करता है। वित्त–मन्त्रालय का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात पर दृष्टि रखे कि विभिन्न विभागों में सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में मितव्ययता से काम लिया जा रहा है कि नहीं। वित्त–मन्त्रालय इस सम्बन्ध में प्रत्येक विभाग को सावधान किए रहता है कि बजट की सीमाओं से बाहर न जायें और जितना व्यय एक वर्ष में कर सकते हैं, उससे अधिक न हो जाए। सरकार उन सभी विभागों से वित्त–मन्त्रालय समय–समय पर व्यय के सम्बन्ध में रिपोर्ट लेता रहता है, जिन्हें व्यय करने का अधिकार है। वित्त–मन्त्रालय का व्यय के नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वह सभी विभागों के व्यय के तरीकों का अध्ययन करके उसमें सामंजस्य स्थापित करे अथवा उसका सुधार करें। देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को देखते हुए वित्त–मन्त्रालय विभिन्न विभागों की व्यय निधि में आवश्यक

संशोधन करने के लिए सलाह भी देता है। राज्य स्तर पर वित्त विभाग उन्हीं कर्त्तव्यों का पालन करता है।

वित्त–मन्त्रालय द्वारा वित्तीय नियन्त्रण की सफलता अधिकांश इस बात पर निर्भर रहती है कि वित्तमन्त्री का मन्त्रीमण्डल पर कितना प्रभाव है। यदि वित्तमन्त्री की नीतियों का सम्मान नहीं किया जा सकता तो ऐसी स्थिति में नियन्त्रण अधिक प्रभावकारी नहीं कर सकता। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं माना जा सकता कि वित्त विभाग ही अन्य विभागों की नीतियों का निर्देशन करे। नीतियों के सम्बन्ध में तो अन्तिम निर्णय सम्पूर्ण मन्त्रीमण्डल का मान्य होता है न किसी एक विभाग विशेष का।

इस प्रकार से वित्त–मंत्रालय सार्वजनिक आय–व्यय दोनों पर ही अपना नियन्त्रण रखने का प्रयास करता है। भारतवर्ष में केन्द्रीय वित्त–मन्त्रालय दो विभागों में संगठित है–

1. **राजस्व और व्यय का विभाग (Department of Revenue and Expenditure):** इस विभाग में राजस्व तथा व्यय का नियन्त्रण होता है।
2. **आर्थिक कार्य का विभाग (Department of Economic Affairs):** इस विभाग का काम बजट अनुमानों को तैयार करना एवं कार्यान्वित (Execute) करना होता है।

अंकेक्षण एवं लेखा विभाग (Audit ans Accounts Department)

शासन विभाग जिस धन को प्राप्त करके खर्च करता है, उसकी देखभाल के लिए जांच विभाग होता है। जांच विभाग का कार्य शासन विभाग से पूर्णरूप से स्वतन्त्र होता है। यह विभाग शासन विभाग की गलतियों को लोकसभा की नजरों में के लिए स्वतन्त्र होता है। वास्तव में यह होता भी इसी कार्य के लिए है। यदि हिसाब में कोई गलती होती है तो नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) उसको सार्वजनिक हिसाग समिति (Public Account Committee) की नजरों में लाता है। इस प्रकार महालेखा परीक्षक व्यवस्थापक सभा के बदले में कार्य करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जांच विभाग भी लोकसभा की भांति इस पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है।

महालेखा परीक्षक शासन–विभाग के लिए कार्य करता है। शासन–विभाग अपने नीचे काम करने वाले विभिन्न अधिकारियों की आर्थिक–शक्ति को निश्चित करता है तथा आर्थिक कार्यों को करने, हिसाब करने, सार्वजनिक धन को प्राप्त करने तथा खर्च करने के नियम बनाता है। यह देखने के लिए कि सरकार की सब आज्ञाओं का उचित रूप से पालन हो रहा है कि नहीं, महालेखा परीक्षक ही होता है। यदि किसी विभाग के हिसाब में कोई गलती होती है, तो उसको सरकार की नजरों में लाने का काम लेखा परीक्षक का ही है।

ग्रेट ब्रिटेन में राष्ट्रीय व्यय पर नियन्त्रण का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न हुआ। इसके लिए 1866 में नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक का कार्यालय स्थापित किया गया जो कार्यपालिका से स्वतन्त्र रहकर विभागीय लेखों की परीक्षा कर उन पर प्रतिवेदन देता है। इस प्रतिवेदन की परीक्षा करने के लिए एक स्थायी जनलेखा समिति बनाई गई। व्यय पर संसदीय नियन्त्रण को पूर्ण तथा व्यापक बनाने के लिए सदन को प्रस्तुत किए जाने वाले अनुमानों की विस्तृत परीक्षा को भी आवश्यक माना गया ताकि प्रशासन और योजनाओं तथा कार्यक्रमों की क्रियान्विति में मितव्ययता लाई जा सके। सन् 1912 में एक प्राक्कलन या अनुमान समिति गठित की गई जिसका कार्य सदन द्वारा मतदान किए जाने के बाद अनुमानों की परीक्षा करना था। पीति पर विचार समिति के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा गया।

भारत में भी नियन्त्रण की इन संस्थाओं के विकास का ऐसा ही इतिहास है। सन् 1921 में केन्द्रीय व्यवस्था में निर्वाचित बहुमत का प्रावधान किया गया है और उसे पूर्ति पर मत देने का अधिकार दिया गया। इस अधिकार के साथ ही लोक लेखा समिति का संगठन भी आवश्यक हो गया जिसमें निर्वाचित और सरकारी दोनों प्रकार के सदस्यों को स्थान दिया गया। प्राक्कलन या अनुमान समिति की रचना 1950 में हुई। इसका उद्देश्य वार्षिक बजट के अनुमानों का विस्तृत परीक्षण करना है ताकि वह उनमें निहित योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए मितव्ययता का सुझाव दे सके।

2.4.4 निष्कर्षः–

भारत में संसदीय पद्धति की व्यवस्था के कारण कार्यपालिका संसद की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का कोई व्यय नहीं कर सकती और न ही कोई कर लगा सकती है। संसद के सदस्य किसी समय देश की आर्थिक, प्रशासनिक अथवा अन्य किसी स्थिति के बारे में मन्त्रियों से प्रश्न पूछ सकते हैं तथा मन्त्रियों को उन्हें उत्तर देना पड़ेता है। इस प्रकार देश की वित्त–व्यवस्था पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण होना आवश्यक है।

अनुमान समिति के महत्त्व में दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि सरकार यह अनुभव करती है कि जब तक वह समिति द्वारा किए गए सुझावों को स्वीकार नहीं करती, संसद में इसकी आलोचना होती रहेगी। दूसरे, इस समिति में लगभग सभी दलों के प्रभावशाली नेता होते हैं जिसके फलस्वरूप उसके द्वारा रखे गए सुझावों को सभी दलों का समर्थन प्राप्त होता है। तीसरे, यह समिति सभी योजनाओं का परीक्षण नियन्त्रण, महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) तथा दूसरे निपुण सरकारी कर्मचारियों की सहायता से करती है, इसलिए इस द्वारा रखी गई योजनाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

संसद की दूसरी वित्त समिति सार्वजनिक लेखा समिति है। जिस प्रकार अनुमान समिति सरकार द्वारा व्यय करने से पहले इसका परीक्षण करती है, उसी प्रकार सार्वजनिक समिति व्यय करने के पश्चात् उनकी जांच–पड़ताल करती है कि जनता के धन का प्रयोग वैधानिक साधनों द्वारा हुआ है या नहीं। वह इस बात की पड़ताल करती है जो भी खर्च संसद की स्वीकृति से हुआ है या नहीं या उस इकाई (Agency) द्वारा किया गया है कि नहीं जिसको संसद द्वारा शक्ति प्रदान की गई है। इस समिति का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि जनता के रुपये का उचित प्रयोग हुआ है या नहीं।

भारत में संसदीय शासन पद्धति की व्यवस्था की गई है जिसके अनुसार सरकार संसद की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का कोई व्यय नहीं कर सकती और न ही कोई कर लगा सकती है। वस्तुतः सरकार प्रशासन तथा वित्त–सम्बन्धी मामलों के बारे में संसद के प्रति उत्तरदायी है। संसद के सदस्य किसी भी समय देश की आर्थिक, प्रशासनिक एवं अन्य किसी स्थिति के बारे में सरकार से प्रश्न पूछ सकती है तथा मन्त्रियों को उत्तर देना पड़ता है। देश की वित्त–व्यवस्था पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण होना आवश्यक है, परन्तु संसद सदस्यों को वित्तीय समस्याओं (Financial Problems) का ज्ञान नहीं होता और न ही वे सरकार के स्थायी कर्मचारियों की भांति पूर्ण काल के लिए काम करते हैं, इसलिए संसद को सरकार की वित्त नीति एवं व्यवस्था पर नियन्त्रण करने के लिए वित्त प्रशासन में निपुण नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General) की सहायता लेनी पड़ती है। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक संसद के प्रतिनिधि के रूप में तथा लोगों के अधिकारों के रक्षक के रूप में सरकार की आर्थिक नीति तथा वित्त–व्यवस्था पर नियन्त्रण करता है। सरकार का कोई भी विभाग अथवा अधिकारी नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वीकृति के बिना एक जैसा भी नहीं खर्च कर सकता तथा खर्च के पश्चात् उसे इसके लिए नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है।

भारत में भी नियन्त्रण की इन संस्थाओं के विकास का ऐसा ही इतिहास है। सन् 1921 में केन्द्रीय व्यवस्था में निर्वाचित बहुमत का प्रावधान किया गया है और उसे पूर्ति पर मत देने का अधिकार दिया गया। इस अधिकार के साथ ही लोक लेखा समिति का संगठन भी आवश्यक हो गया जिसमें निर्वाचित और सरकारी दोनों प्रकार के सदस्यों को स्थान दिया गया। प्राक्कलन या अनुमान समिति की रचना 1950 में हुई। इसका उद्देश्य वार्षिक बजट के अनुमानों का विस्तृत परीक्षण करना है ताकि वह उनमें निहित योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए मितव्ययता का सुझाव दे सके।

2.4.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. विनियोग विधेयक
2. अनुमान समिति

3. सार्वजनिक लेखा समिति
4. नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक
5. वित्त मंत्रालय

2.4.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. विधानपालिका की दो समितियों के नाम बताइए। जो वित पर नियन्त्रण स्थापित करती है।
2. सार्वजनिक लेखा समिति पर लघु टिप्पणी कीजिए।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में विधानमण्डल या संसद द्वारा सरकारी वित पर किस प्रकार नियन्त्रण स्थापित करती हैं?
2. भारत में कार्यपालिका किस प्रकार सरकारी धन पर नियन्त्रण करती है। विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. जी. एस. लाल, पब्लिक फाइनैन्स एण्ड फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, कपूर 1976
2. एम. जे. के. थावराज, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, सुल्तान चन्द, 1978
3. एच. सी. एडम, दी साइन्स ऑफ फाइनेन्स, न्यूयार्क, 1908
4. आ. एन. भार्गव, इण्डियन पब्लिक फाइनेन्स, 1977
5. आर. के. सिन्हा, फिस्कल फेडरेशन इन इण्डिया, स्टर्लिंग, 1987
6. वैंकेट गिरि गोवदा, फिस्कल रवोलूसन इन इण्डिया, इन्डस, 1987
7. ए. प्रेमचन्द, गवर्नमैन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपैंडीचर कन्ट्रोल : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, वाशिंगटन, 1983
8. एम. एम. सूरी, गवर्नमैन्ट बजटिंग इन इण्डिया, कामनवेल्थ, 1990
9. ए. प्रेमचन्द, परफोरमैन्स, बजटिंग, एकेडमिक, 1969
10. के. एल. हांडा, एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल एण्ड जीरो बेस बजटिंग, नई दिल्ली, 1991
11. पी. एल. जोशी एण्ड वी. पी. राजा, टैकनीक्स ऑफ जीरो बेस बजटिंग, हिमालय, 1988
12. पीटर ए. पाइहर, जीरो बेस बजटिंग, न्यूयार्क, 1973
13. आस्टिन ऐलन, जीरो बेस बजटिंग : ए डिसीजन पैकेज मेन्यूअल, 1979
14. पॉल जे. स्टानिका, जीरो बेस प्लानिंग एण्ड बजटिंग, 1977

15. हरबर्ट ब्रिटेन, ब्रिटिश बजटरी सिस्टम, लन्दन जार्ज एलन एण्ड अनविन, 1959
16. जैस बर्कहैड, गवर्नमेन्ट बजटिंग, न्यूयार्क जॉन विले एण्ड सन्स, 1956
17. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
18. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
19. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
20. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
21. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
22. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

इकाई – 3

प्रशासनिक संस्कृति

3.0 इकाई का परिचयः–

भारत एक प्राचीन सामाजिक संस्कृति का परिचायक राष्ट्र रहा है यहाँ आदिकाल से ही राजनीतिक व्यवस्था के तौर पर उदार राजतन्त्र स्थापित रहा है। ब्रिटिश उपनिवेशिक काल के समाप्ति पर यहाँ लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित हुई है जो विशेष तौर पर मूल्यों से प्रभावित रही है। इसी प्रकार प्रशासन भी यहाँ प्राचीन काल से ही राजव्यवस्थाओं के प्रशासन भी यहाँ प्राचीन काल से ही राज व्यवस्थाओं के साथ विकसित होता रहा है जिसमें देशी रियाशतों के प्रशासनिक मुल्य, मुगल प्रशासनिक सांस्कृतिक मूल्य तथा ब्रिटिश प्रशासनिक सांस्कृतिक मूल्य समय–समय पर समाहित होते हैं। प्रशासनिक सांस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि कानून के निर्माण संशोधन एवं क्रियान्वन के सम्बन्ध में प्रशासन द्वारा अपनाई गई पद्धति या व्यवहार प्रशसानिक संस्कृति है, दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य करने के ढ़ंग ही प्रशासनिक संस्कृति है। प्रशासनिक संस्कृति के स्वरूप में एकरूपता का अभाव पाया जाता है, क्योंकि यह हर देश और परिस्थिति के मुताबिक अपने स्वरूप को अख्तियार करता है। विकसित देशों की प्रशासनिक संस्कृति अविकसित एवं विकासशील देशों की प्रशासनिक संस्कृति से भिन्न होती है, ऐसे विकसित देशों के प्रशासनिक स्वरूप में भी एकरूपता कर अभाव पाया जाता है, ऐसे सैद्धान्तिक तौर पर अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड जैसे विकसित देशों की संस्कृति में समानता है जबकि अविकसित राष्ट्रों की प्रशासनिक संस्कृति अलग है। इस इकाई में प्रशासनिक भ्रष्टाचार व प्रशासनिक सुधार आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा की जाएगी। विकासशील राष्ट्र के नाते भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार प्रर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, जबकि सरकार ढ़ाँचागत आधार पर लगातार विभिन्न समितियों का गठन करके प्रशासनिक सुधार के लिए कार्य कर रही है। इस इकाई में कर्मिक व्यवहार के इन उपरोक्त बिन्दूओं पर विस्तृत चर्चा की जाएगी।

3.1 इकाई के उदेश्यः–

1. भारतीय प्रशासनिक संस्कृति के एतिहासिक पहलूओं के साथ–साथ वर्तमान प्रशासनिक संस्कृति के विभिन्न पहलूओं की जानकारी प्राप्त करना।
2. विकसित व अविकसित राष्ट्रो की प्रशासनिक संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. भ्रष्टाचार के अनेक कारणों के बारे में जानना तथा सरकारी समितियों के सुझावों का विश्लेषण करना।
4. प्रशासनिक सुधारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
5. प्रशासनिक विकास के अन्तर्गत प्रशासनिक संस्कृति, प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा प्रशासनिक सुधारों की स्थिति को जानना।

3.2

प्रशासनिक संस्कृति

(Administrative Culture)

3.2.1 परिचयः–

ऐसे तो प्रशासनिक संस्कृति का सम्बन्ध प्रशासन से जुड़ा हुआ है, लेकिन अध्ययन के रूप में यह एक नवीन धारणा है, प्रशासनिक संस्कृति को स्पष्ट करने के पूर्व, संस्कृति को स्पष्ट करना जरूरी है, धारणा शब्दों में संस्कृति का अर्थ–रहने, सहने, खाने–पीने, बोलने–चालने, उठने–बैठने, सोचने और व्यवहार करने का ढंग, संस्कृति को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि कानून के निर्माण, संशोधन एवं क्रियान्वन के सम्बन्ध में प्रशासन द्वारा अपनाई गई पद्धति या व्यवहार संस्कृति है, दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य करने का ढंग ही प्रशासनिक संस्कृति है।

3.2.2 उदेश्यः–

1. विकास प्रशासन में प्रशासनिक संस्कृति के महत्व को जानना।
2. विकसित राष्ट्रो व अविकसित राष्ट्रों की प्रशानिक संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद विकसित राष्ट्रों को प्रशासनिक संस्कृति में आए बदलाव को जानना।
4. तकनीक के कारण प्रशासनिक संस्कृति में आए बदलाव को जानना।
5. भारतीय प्रशासनिक संस्कृति की विशेषताओं को जानना।

3.2.3 प्रशासनिक संस्कृति :–

प्रशासनिक संस्कृति की विशेषताएँ

1. प्रत्येक देश के प्रशासनिक संस्कृति में अन्तर देखने को मिलता है, ऐसे विकसित, विकासशील और अविकसित देशों के प्रशासनिक संस्कृति में एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींची जा सकती है। इन देशों के प्रशासनिक संस्कृति के बीच अन्तर होने का महत्त्वपूर्ण कारण प्रशासन के समक्ष उपस्थित कार्य एवं लक्ष्य है, स्पष्ट है कि प्रशासनिक संस्कृति का जुड़ाव उसके कार्य एवं लक्ष्य से होता है।

2. प्रशासनिक संस्कृति एक परिवर्तनशील अवधारणा है इसे परिवर्तशील अवधारणा इसलिए कहा जाता है कि प्रशासन के कार्य करने का ढंग, परिस्थिति और काल के अनुसार बदलता रहता है, जाहिर है परिस्थिति एवं काल के अनुसार प्रशासनिक संस्कृति भी बदलती रहती है।
3. प्रशासनिक संस्कृति का स्वरूप देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक वातावरण पर भी निर्भर करता है अर्थात् जिस देश की समाजार्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक स्थिति जैसी होगी, 'खुले व मुक्त समाज' के प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक और 'बंद समाज' के प्रशासनिक संस्कृति के बीच अन्तर होता है।
4. प्रशासनिक संस्कृति का स्वरूप विचारधारा से भी जुड़ा है, प्रायः यह देखा जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था विचारधारा पर ही आधारित होती है और प्रशासनिक राजनीतिक व्यवस्था का ही एक उपव्यवस्था है, अतः जब जिस विचारधारा आधारित राजनीतिक दल की सरकार बनती है, तो वहाँ पर प्रशासनिक संस्कृति वैसी ही होने लगती है।
5. प्रशासनिक संस्कृति में आंशिक बदलाव करिश्माई व्यक्तित्व के कारण भी देखने को मिलता है, प्रायः यह देखा जाता है कि सत्ता के उच्च पद पर जैसा व्यक्तित्व रहता है वहाँ की प्रशासनिक संस्कृति वैसी ही होने लगती है।
6. जनता को जागरूकता से भी प्रशासनिक संस्कृति में बदलाव आता है, यही कारण है कि जहाँ की जनता शिक्षित होती है वह प्रशासनिक व्यवस्था जागरूक एवं गतिशील होती है।

प्रशासनिक संस्कृति की विशेषताएँ अन्य ढंग से भी प्रस्तुत की जा सकती हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. कानून व नियम में अटूट विश्वास।
2. लालफीताशाही।
3. प्रत्येक पद के लिए निर्धारित सत्ता
4. प्राविधिक विशेषता
5. सत्ता का आधार राज्य व शासक का कनून
6. आजीविका अर्जित करने वालों का समूह
7. कागजी कार्यवाही

सर्वप्रथम, नौकरशाहों का कानूनों और नियमों में अटूट विश्वास होता है, क्योंकि उनको आरम्भ से ही इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि जो भी कार्य किया जाए, कानून एवं नियमों के हिसाब से किया जाए, द्वितीय, प्रशासनिक अधिकारी 'लालफीताशाही' के शिकार होते हैं अर्थात्, इनके कार्य करने की प्रक्रिया में अत्यधिक औपचारिकताएँ पायी जाती हैं इससे कार्य–सम्पादन में अनावश्यक विलम्ब होता है, तृतीय, प्रत्येक प्रशासनिक अधिकारी की सत्ता परिभाषित और निर्धारित होती है, जिससे बाहर जाकर वह कार्य नहीं कर सकते, चतुर्थ,

प्रशासनिक अधिकारियों के काम करने का एक विशिष्ट ढंग होता है, एक विशेष कुशलता में प्रशिक्षित, उसे बार–बार दोहराने वाला तथा अपने पद को आजीवन मानने वाला अधिकारी एक विशेष कार्य में योग्य बन जाता है, वस्तुतः एक सरकारी कर्मचारी अपना समस्त जीवन एक विशिष्ट कार्य में ही लगा देता है।

पंचम, प्रशासनिक अधिकारियों को कार्य करने का अधिकारी राज्य व शासन के कानून से प्राप्त है, अतः इन कार्यों 17 में अवरोध डालने का अर्थ होता है राज्य के कानूनों का उल्लंघन, इस कारण प्रशासनिक अधिकारी निर्भय होकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने कार्यों को सम्पादित करते हैं, जिसका कभी–कभी ये नजायज फायदा उठाते हैं, हमारे प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया ऐसी है कि 'समाज सेवा' का भाव पनप नहीं पाता है, वस्तुतः इस पद पर इनके आने का उद्देश्य आजीविका का अर्जन करना होता है, ऐसी स्थिति में इनका जनता के कल्याण से कोई खास लेना–देना नहीं होता है, सप्तम व अन्त में, आधुनिक कार्यालय की प्रबन्ध–व्यवस्था लिखित दस्तावेजों तथा फाइलों पर ही आधारित है, जो भविष्य में कुशल निर्णय लेने में सहायक होते हैं, पर व्यवहार में कभी–कभी यह कागजी कार्यवाही आमजनों के परेशानी का कारण बन जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं के विश्लेषण के पश्चात् 'प्रशासनिक संस्कृति' का जो स्वरूप हम लोगों के समक्ष प्रस्तुत होता है, उसे लोक कल्याणकारी राज्य के हित में नहीं कहा जा सकता है, फिर वर्तमान में 'भ्रष्टाचार' के भी प्रशासनिक–संस्कृति का हिस्सा बन जाने से स्थिति और भी चिंताजनक हो गई है, आज 'भ्रष्टाचार' प्रशासन के ऊपर से नीचे तक विद्यमान हो गया है, चाहे वो भ्रष्टाचार रिश्वत लेने से सम्बन्धित हो या फिर राजनीतिज्ञों से साँठ–गांठ कर अपना कार्य सम्पादित करने से, हम यह कहें कि आज हमारे देश में 'प्रशासनिक–संस्कृति' का अर्थ हो गया है– "No work, but all facitlities" तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा।

प्रशासनिक–संस्कृति के इस नकारात्मक स्परूप को देखते हुए ही भारत में शुरू से प्रशासनिक सुधार की बातें की जाती रही हैं, इसी क्रम में 1964 में 'संथानम् समिति' के सुझावों के आधार पर 'केन्द्रीय सतर्कता आयोग' (Central Vigilance Commission) की स्थापना की गई, जिसका कार्य लोक सेवकों के विरूद्ध लगाये गए आरोपों की जांच करना तथा दोषी अधिकारियों के विरूद्ध मुकदमा चलाने के सम्बन्ध में था, इसी प्रकार प्रशासन से भ्रष्टाचार व भाई–भतीजावाद को मिटाने हेतु 'ओम्बड्समेन (Ombudsman) की तर्ज पर **लोकपाल और लोक आयुक्त'** की बात की जाती रही है, 1996 में गठित 'प्रशासनिक सुधार आयोग' (Administrative Reforms Committee) द्वारा तो इस क्रम में 578 सुझाव प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

अगर इन सारे प्रयासों को ईमानदारी से व्यवहारिक रूप में 'अमली जामा' पहनाया जाए तो इसमें कोई संदेह नहीं कि एक सशक्त प्रशासनिक–संस्कृति का विकास हमारे देश में होगा,

वैसी प्रशासनिक–संस्कृति, जिसमें हमारे प्रशासक ईमानदार, उत्तरदायी और नागरिक–मित्र बनकर कार्य करेंगे।

विकासशील समाजों में लोक प्रशासन : फ्रेड डब्ल्यू. रिग्स के विचार

विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अपने अध्ययन में रिग्स ने एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रशासनिक तथा आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक और संचार कारकों के बीच संबंध का विश्लेषण किया है। थाइलैण्ड तथा फिलीपींस पर अपने अध्ययनों के आधार पर उसने उदाहरण देकर बताया कि किस प्रकार परिवेश प्रशासनिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है।

रिग्स का विकासशील समाजों का अध्ययन समाज एवं प्रशासन की अंतःक्रिया को उद्घाटित करता है। क्योंकि सामान्य संस्कृति सामाजिक–आर्थिक–भौतिक मूल्यों को आत्मसात करके प्रशासनिक संस्कृति को प्रभावित करती है, इसलिए प्रशासनिक संस्कृति सामान्य संस्कृति की एक उपव्यवस्था या उपसंस्कृति के रूप में प्रकट होती है। इस संदर्भ में रिग्स के मॉडल प्रशासनिक संस्कृति को समझने में एक महत्वपूर्ण दृष्टि प्रदान करते हैं।

समपार्श्वीय समाज में सामाजिक संरचनाओं के महत्वपूर्ण तत्वों और समाज के प्रशासनिक उपतन्त्र, जिसे रिग्स ने "साला" कहा जाता है, के साथ उनकी परस्पर क्रिया का अध्ययन ही रिग्स के विश्लेषण का मुख्य विषय है। उसने बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाजों की केवल रूपरेखा ही प्रदान की है जो केवल एक सीमा तक समपार्श्वीय समाजों के विश्लेषण में सहायक है।

- **बहुकार्यात्मक समाज :** बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु उदाहरण के रूप में रिग्स ने साम्राज्यवादी चीन तथा क्रांति के पूर्व के सयामी थाइलैण्ड को चुना। इन समाजों में कार्यों का कोई वर्गीकरण नहीं था तथा एक संरचना विभिन्न प्रकार के कार्य करती थी। ये समाज कृषि पर बहुत अधिक निर्भर थे, उनका उद्योगीकरण या आधुनिकीकरण नहीं हुआ था। देश के प्रशासन में शाही परिवार ने एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। राजा तथा उसके द्वारा नामित अधिकारी सभी प्रकार के प्रशासनिक, आर्थिक तथा अन्य कार्य स्वयं ही करते थे। सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं थी तथापि जनता सरकार के अदेशों को मानने को बाध्य थी।
- **अल्पकार्यात्कम समाज :** ये समाज सार्वभौमिक सिद्धांत पर आधारित हैं तथा इनके व्यवहार में बहुत अधिक विशेषीकरण होता है एवं प्रत्येक संरचना एक विशेष कार्य करती है। समाज अत्यधिक रूप से गतिशील तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रेक्टेड) होता है। इन समाजों में खुली वर्ग संरचनाएं होती हैं। जिनका प्रतिनिधित्व विभिन्न संघ करते हैं। आर्थिक व्यवस्था बाजार पर आधारित होती है। रिग्स ने इसे बाजारकृत (मार्केटाइज्ड)

समाज कहा है। सरकार लोगों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होती है तथा मानव अधिकारों की रक्षा करती है।

- **समपार्श्वीय समाज** : रिग्स ने समपार्श्वीय समाजों के अध्ययन पर अपना ध्यान केंद्रीत किया। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय समाज वह है जो विशिष्टीकरण का स्तर, आधुनिक प्रौद्योगिकी के लेन–देन में आवश्यक भूमिकाओं से जोड़ने में असफल रहा हो। बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक के बीच का समाज समपार्श्वीय समाज कहा जा सकता है।

रिग्स के अनुसार समवार्श्वीय समाज की तीन चारित्रिक विशेषताएं होती हैं। वे हैं– (1) विजातीयता, (2) औपचारिकता और (3) अति–आच्छादन।

1. **विजातीयता** – समपार्श्वीय समाज में अत्याधिक विजातीयता पायी जाती है। विजातीयता का अर्थ है भिन्न प्रकार की व्यवस्थाएं, क्रियाएं तथा दृष्टिकोणों, आदि की एक साथ उपस्थिति। पूर्णतया विरोधी दृष्टिकोणों के समांतर सहअस्तिव के कारण इस समाज में होने वाला परिर्वतन अपूर्ण होता है। ऐसे समाजों में पूर्व–पश्चिम, गांव–शहर, पूँजीवाद–समाजवाद जैसी विरोधी प्रवृत्तियां साथ–साथ चलती रहती हैं।
2. **औपचारिकता** – ऐसे समाजों में संविधान, कानून, नियम, सरकार आदि औपचारिक रूप से विद्यमान रहते हैं। तथापि प्रभावी रूप से व्यवहृत मानदण्डों तथा वास्तविकताओं के बीच अंतर पाया जाता है।
3. **अति–आच्छादन** – एक समपार्श्वीय समाज में नये या आधुनिक संगठन खड़े किए जाते हैं फिर भी वास्तव में पुराने या अविभेदीकृत समाज में संसद, सरकारी कार्यालय, बाजार, स्कूल, आदि विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक कार्य संपन्न करते हैं तथापि उनका व्यवहार कुछ परंपरावादी संगठनों जैसे, परिवार, धर्म, जाति आदि से प्रभावित होता है।

   'साला प्रारूप' : साला स्पेनिश भाषा का शब्द है। इसका प्रयोग प्रायः लैटिन अमरीकी देशों में सरकारी कार्यालयों के लिए किया जाता है। एक अल्पकार्यात्मक समाज में इसे 'ब्यूरों' तथा एक बहुकार्यात्मक समाज में इसे 'चेम्बर' कहा जाता है।

रिग्स ने समपार्श्वीय समाज की नौकरशाही के लिए 'साला' शब्द का प्रयोग किया है। साला मॉडल, विकासशील देशों की जिन्हें रिग्स समपार्श्वीक समाज कहता है, प्रशासन व्यवस्थाओं का 'आदर्श प्रकार' से प्रतिनिधित्व करता है। इसमें आदिमकालीन एवं आधुनिक, दोनों प्रकार के प्रशासनों की विशेषताएं पायी जाती हैं। सरकारी अधिकारी प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर चुने जाते हैं। किन्तु चयन में भाई–भतीजावाद, रिश्वत आदि चलते हैं। 'साला' अधिकारी सामाजिक कल्याण की अपेक्षा निजी उन्नति या धन प्राप्ति को

प्राथमिकता देता है। उसका व्यवहार तथा निष्पादन पुरातनवाद या रूढ़िवाद से प्रभावित होता है।

रिग्स ने समपार्श्वीय समाज को एक असंतुलित राज्य कहा है जिसमें राजनीतिक नेताओं की संवैधानिक शक्तियों के होते हुए भी नौकरशाही का प्रभुत्व होता है। रिग्स का कहना है कि नौकरशाही के व्यवहार तथा प्रशासनिक उत्पादन में घनिष्ठ सम्बन्ध है, एक नौकरशाह जितना अधिक शक्तिशाली होगा, उतना ही वह प्रभावहीन प्रशासक होता है।

भारत की प्रशासनिक संस्कृति : विशेषताएं

1. **ब्रिटिश विरासत** – आज का भारतीय प्रशासन ब्रिटिश प्रशासन की विरासत है। अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए, लेकिन प्रशासन का जो विशाल तन्त्र था, वह बिल्कुल वैसा ही बना रहा। उसका गठन, उसका आकार, उसके कार्य की प्रक्रिया सब ज्यों के त्यों बने रहे।
2. **लालफीताशाही** – भारतीय प्रशासन की एक विशेषता लालफीताशाही है। अधिकारी और कर्मचारी नियम–विनियमों पर आवश्यकता से अधिक बल देते हैं। वे प्रत्येक कार्य निर्धारित प्रक्रियाओं के माध्यम से ही पूरा करते हैं। अतः फाइलें इधर से उधर रहती हैं और निर्णयों तथा कार्य में विलम्ब होता रहता है।
3. **राजनीतिक स्तर पर प्रतिबद्धता का अभाव** – भारत में लोक प्रशासन राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ है। प्रशासन तन्त्र के सदस्य सरकार की नीतियों को बिना किसी दलीय आसक्ति या अपने आग्रह के, पूर्ण निष्ठा से क्रियान्वित करते हैं तथा सरकार की नीतियों के पालन में उनकी निष्ठा पर सरकार के परिर्वतन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन के प्रति यह राजनीतिक तटस्थता वस्तुतः भारत की संवैधानिक व्यवस्था में ही निर्धारित की गई है।
4. **बृहद आकार** – भारत के लोक प्रशासन का आकार काफी व्यापक है। उसमें एकरूपता का अभाव भी है। स्वतन्त्रता के बाद सरकारी कर्मचारियों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। नए विभाग खुल रहे हैं, पुराने विभागों का विस्तार हो रहा है। 1 जनवरी, 1984 को केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों की संख्या 37.87 लाख थी, जो 31 मार्च, 1994 को बढ़कर 43.39 लाख तक पहुंच गई। जिस रूप में विशालकाय प्रशासन तन्त्र विकसित होता जा रहा है, उसके फलस्वरूप प्रशासनिक संगठन में स्वेच्छाचारिता, कर्तव्य विमुखता, अधिकार वृद्धि की आकांक्षा, उत्तरदायित्व से बचने की मनोवृति आदि अवगुणों के विकास के कारण प्रशासन का सफलतापूर्वक संचालन कठिन होता जा रहा है।
5- **सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञों का समन्वय** – भारतीय प्रशासन में आज सामान्य पढ़े–लिखे तथा शिक्षितों का समन्वय दिखाई देता है। एक समय आई.सी.एस. का

वर्चस्व रहा और आज आई.ए.एसए की प्रधानता है। आज सरकार के कार्यों के स्वरूप में परिर्वतन होने के साथ ही लोक सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों, प्रविधिज्ञों तथा दक्षों की नियुक्ति हो रही है। सरकार अब केवल लिपिकों तथा सामान्यवादियों को ही नियुक्त नहीं करती अपितु अब अधिकाधिक वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, मनोवैज्ञानिकों, मनश्चिकित्सकों, कृषिशास्त्रियों, ऋतुविज्ञों, विधिवेत्ताओं, सांख्यिकों, आदि को नियुक्त किय जाता है।

6. **शक्तिशाली प्रशासन तन्त्र** – विगत 50 वर्षों में लोक प्रशासन की शक्तियों, कार्यों तथा प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि हुई हैं। स्वतन्त्र भारत की आर्थिक तथा सामाजिक दुर्वस्थाओं में परिर्वतन हेतु एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी समाज की धारणा और उसकी स्थापना के विचार पर बल दिया जा रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार के नये–नये कार्य तथा उत्तरदायित्व ग्रहण करने के कारण प्रशासन के महत्व एवं शक्तियों में वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप हमारी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही अत्यधिक प्रबल हो गई है।
7. **समस्याग्रस्त प्रशासन** – आज भारतीय प्रशासन अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। सभी स्तरों पर राजनीतिज्ञों और लोक सेवकों के मध्य संबंधों की कटुता, प्रशासनिक अधिकारियों के राजनीति के प्रति लगाव, जनता और प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य दूरी, प्रशासकों के नैतिक चरित्र में गिरावट, विभिन्न विभागों में समन्वय अभाव, विशेषज्ञों और सामान्यज्ञों के बीच संबंधों की कटुता, प्रशासन में धन का अपव्यय, आदि अनेकानेक विकराल समस्याएं हैं, जिनसे देश, समाज और लोग बुरी तरह प्रभावित हैं। इन समस्याओं की निदान आवश्यक है।
8. **केंद्रीकरण की प्रवृत्ति** – भारत में प्रशासन का संगठन सोपानात्मक है। अर्थात् ऊपर से नीचे तक अधिकारियों के अनेक वर्ग या सोपान है। भारत में केन्द्र चूंकि बहुत विस्तृत है, इसलिए अधिकांश मामले विभिन्न स्तरों से हेतु हुए अन्त में केन्द्र पहुंचते हैं। इस प्रक्रिया में अनावश्यक विलंब होता है, और जब निर्णय लिया जाता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

इसके अतिरिक्त भ्रष्टाचार, जनसेवा के प्रति उदासीनता, चापलूसी, पारदर्शिता का अभाव, राजनीतिक हस्तक्षेप, दरबारी प्रवृत्ति की सामंती विरासत, अधिकारी राजनीतिक अपराधी गंठजोड़, उच्च पदस्थ अधिकारियों की टालमटोल की प्रवृत्ति, प्रतिबद्धता का अभाव आदि हमारी प्रशासनिक संस्कृति की विशेषताएं हैं।

3.2.4 निष्कर्ष :–

प्रशासनिक संस्कृति में एकरूपता का अभाव पाया जाता है, क्योंकि यह हर देश और परिस्थिति के मुताबिक अपने स्वरूप को अख्तियार करता रहता है। यही कारण है कि विकसित देशों की प्रशासनिक संस्कृति अविकसित एवं विकासशील देशों की प्रशासनिक संस्कृति से भिन्न होती है, ऐसे विकसित देशों में प्रशासनिक स्वरूप में भी एकरूपता का अभाव पाया जाता है, ऐसे सैद्धान्तिक तौर पर अमेरीका, फ्रांस, इंग्लैण्ड जैसे विकसित देशों की संस्कृति में समानता है, वहाँ का प्रशासन समान पद सोपानीय व्यवस्था पर आधारित है, उन देशों में प्रशासन अपने लक्ष्य एंव कार्य के प्रति ज्यादा चौकस एवं प्रतिबद्ध होती है। प्रशासन में परम्परागत तत्वों (जाति, संप्रदाय, वर्ण आदि) का सामान्यतः गौण स्थान है, प्रशासन के कार्यों में राजनीति हस्तक्षेप का अभाव है, प्रशासन के पास नए–नए उपकरण आदि हैं, इसका परिणाम है कि विकसित देशों की राजनीतिक संस्कृति एक विशेष प्रकार की विभिन्नकृत एवं विशेषीकृत स्वरूप धारण किया है।

जबकि विकासशील देशों की प्रशासनिक संस्कृति में परम्परागत तत्वों (जाति, धर्म, भाषा, वर्ण) का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, प्रशासन में अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता का अभावन देखने को मिलता है। इन देशों के प्रशासनिक संस्कृति में लालफीताशाही, लक्ष्य के प्रति अप्रतिबद्धता, मालिकाना मनोवृत्ति, कर्त्तव्यपरायणता का अभाव आदि विशेषताएं देखने को मिलती हैं, भारतीय प्रशासनिक संस्कृति में भी एकरूपता का अभाव है, इसका कारण यह है कि भारत जैसे विशाल देश में सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तर काफी विषमता है, बंगला में जो प्रशासनिक संस्कृति है वह बिहार में नहीं है जो बिहार में है– वह दिल्ली में नहीं।

अविकसित देशों की प्रशासनिक संस्कृति स्पष्ट रूप से पिछड़ापन के दौर में है, वहाँ लोकतान्त्रिक व्यवस्था एवं जनता की जागरूकता पूर्णतः सुषुप्ता अवस्था में है, प्रशासनिक संस्कृति परम्परागत तत्वों के प्रभाव में निर्धारित होती है, कानून या शासन के आदेश से नहीं।

इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि विकसित, विकासशील और अविकसित देशों की प्रशासनिक संस्कृति में अन्तर होता है।

3.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. संस्कृति
2. प्रशासनिक संस्कृति
3. विकसित राष्ट्र
4. विकासशील राष्ट्र

3.2.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत प्रशासनिक संस्कृति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. विकसित व अविकसित राष्ट्रों की प्रशासनिक संस्कृति के मध्य अन्तर को विस्तार से चर्चा कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. वुडरो विल्सन, दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्टेसन, पोलिटिकल सांइस क्वार्टरली, नं० 2, जून, 1887
2. एल. डी. व्हाईट, इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1926
3. फ्रेंक जे. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1900
4. लूथर गुलिक एवं लैंडल उर्विक, पेपरस ऑन दी सांइस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. अवस्थी एवं महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1983
6. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2002
7. एच. ई. मेकर्डी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए बिबलियोग्राफिक गाइड टू दी लिटरेचर, डेक्कर, 1986
8. जी.ए. ग्रहाम, ट्रेण्ड इन टिचींग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 10, 1950
9. अच. जी. फ्रैडरिक्सन, दी डाइमेन्सन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, 1979
10. आर. सी. चॉदलर एण्ड जे. सी. पलानो, दी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डिक्सनरी, न्यूयार्क, 1982
11. राबर्ट गोलम्ब्यूहकी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डवलपिंग डिसिपलिन, न्यूयार्क, 1977
12. एस. आर. महेश्वरी, प्रशासनिक सिद्धान्त, मेकमिलन, 2003
13. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
14. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
15. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
16. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
17. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
18. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
19. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947

20. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
21. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
22. डवाइट वाल्डो (सम्पादित) आइडियाज एण्ड इसूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1953
23. लक्ष्मीनारायण, पब्लिक इन्टरप्राईज मनेजमेंट एण्ड प्राइवेटाइजेशन, 2003
24. पॉल एपलबी, बिग डेमोक्रेसी, न्यूयार्क, 1945
25. जी. टल्लोक, दि पोलिटिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी, वाशिंगटन, पब्लिक अफेयर प्रैस, 1965
26. जे. हारबटमैस, दि स्ट्रकचरल ट्रांसफोरमेसन्स ऑफ दि पब्लिक सफियर, लन्दन, पोलिसी प्रैस, 1989
27. एन. जे. साथर, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन इन दि अमेरिका, न्यूयार्क सैन्टमारटिन्स, 1975
28. आर.एस. लोच, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन्ट पाल, मिनोसोटा, वैस्ट पब्लिसिं, 1978
29. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
30. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
31. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
32. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
33. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
34. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

3.3

प्रशासनिक भ्रष्टाचार

(Administrative Corruptive)

3.3.1 परिचयः–

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है 'भ्रष्ट' अथवा 'बिगड़ा हुआ आचरण'। लोक प्रशासन में इसका अभिप्राय ऐसे आचरण से है, जिसकी आशा लोक सेवकों से नहीं की जाती है। यदि लोक प्रशासन अपनी शक्ति, सत्ता और स्थिति का प्रयोग जन सामान्य के लाभों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए करने लगे तो यही 'भ्रष्ट आचरण' माना जाएगा। ये भ्रष्ट आचरण अनेक प्रकार के हो सकते हैं–उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति का कोई कार्य कर देने या कार्य न करने पर घूंस अथवा दूसरे प्रकार का आर्थिक लाभ लेना, अपने सम्बन्धियों को नौकरी दिलाना, रिश्वत, भेंट स्वीकार करना, बेईमानी, गबन, अनुचित एवं अवैध रीतियों से पैसा लेना, व्यापारिक संस्थाओं पर इस दृष्टि से अहसान करना ताकि वहां लोक सेवकों के पुत्र–पुत्रियों को रोजगार मिल सके, अपनी सरकारी स्थिति और प्रभाव का स्वार्थ–सिद्धि के लिए दुरूपयोग करना, आदि।

भ्रष्टाचार की परिभाषा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 में इस प्रकार की गयी है– "जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विविध पारिश्रमिक से अधिक कोई घूंस लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के तैयार हो जाता है या लेने का प्रयत्न करता है या किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधानमण्डल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में करता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों दिए जा सकेंगे।"

("Who ever being or expecting to be public servant, accepts or obtains, or agrees to accept or attempts to obtain from any person for himself or any other person, any gratification whatever, other than legal remuneration, as a motive a reward for doing or forbearing to show, in the exercise of the official function favours or disfavours to any person or for rendering or attempting to render any source or disservice to any person, with the central or any state government or parliament

or the legislature of any state or any public servant as such …….. Is corrupt.")

भ्रष्टाचार से तात्पर्य है किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने सार्वजनिक पद पर अथवा स्थिति का दुरूपयोग करते हुए किसी प्रकार का आर्थिक या अन्य प्रकार का लाभ उठाना। "यह ऐसा व्यवहार है जिसमें सरकारी कर्मचारी व्यक्तिगत आर्थिक लाभ उठाने के लिए सार्वजनिक कर्त्तव्यों से विचलित होता है अथवा नियमों का ऐसा उल्लघंन करता है जिससे कुछ विशेष प्रकार के निजि लाभ प्राप्त हो सकें।"

'भ्रष्टाचार' को दो रूपों–संकीर्ण एवं व्यापक में लिया जाता है। संकीर्ण रूप में इसका अर्थ केवल घूंस अथवा आर्थिक लाभ प्राप्त करना माना जाता है। भ्रष्टाचार के व्यापक रूप में अपने निजी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए सार्वजनिक पद अथवा सत्ता का दुरूपयोग करते हुए नकद धनराशि अथवा भेटों और उपहारों के रूप में सब प्रकार की बेईमानी से प्राप्त लाभों का समावेश होता है। लोक प्रशासन में इस शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया जाता है।

3.3.2 उदेश्यः–

1. भारत के सन्दर्भ में प्रशासनिक भ्रष्टाचार की स्थिति को जाँचना।
2. भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार बढ़ने के कारणों को ऐतिहासिक काल से जानना।
3. कर्मचारियों की कार्य संस्कृति को विभिन्न आदायों से जाँचना।
4. प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप की स्थिति को जानना।
5. प्रशासनिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भारत में वर्तमान विधिक संरचना को जानना।

3.3.3 प्रशासनिक भ्रष्टाचार :–

भारत में भ्रष्टाचार की व्यापकता

(Intensity of Corruption in India)

किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार मानव में सदैव कायम रहा है। कौटिल्य ने अपनी पुस्तकें 'अर्थशास्त्र' में भ्रष्टाचार में 40 प्रकारों का उल्लेख किया गया है। उसके शब्दों में "जिस प्रकार जिह्वा पर रखे हुए शहद का स्वाद न लेना असम्भव है उसी प्रकार किसी शासकीय अधिकारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण न करना असम्भव है।"

प्राचीन एवं मध्यकाल में लोक प्रशासन का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था, फलस्वरूप भ्रष्टाचार की कम गुंजाइश थी। वर्तमान युग में लोक प्रशासन के क्षेत्र का विलक्षण विकास होने के कारण भ्रष्टाचार की मात्रा में भी असाधारण वृद्धि हुई है। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल से ही

भ्रष्टाचार देश में सर्वत्र फैल गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी जो उस समय प्रशासक भी थे, सम्पत्ति जोड़ने पर उतारू थे। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का तन्त्र भ्रष्ट एवं पतित हो गया था, फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत का प्रशासन अपने हाथों में ले लिया। लगभग डेढ़ सौ वर्षों के शासन में अंग्रजों ने भारत में श्रेष्ठ प्रशासकीय तन्त्र की स्थापना की लेकिन ब्रिटिश भारतीय प्रशासन में राजत्व, पुलिस एवं आबकारी विभागों को व्यापक स्वविवेकी शक्तियों प्राप्त थी। फलस्वरूप उनके भ्रष्ट होने की पर्याप्त गुंजाइश थी। न्यायपालिका की छोटी अदालतों का भी यही हाल था। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने तक भ्रष्टाचार के लिए अधिक अवसर उत्पन्न कर दिए। नियम तथा कानूनों की अवहेलना की गयी तथा प्रत्येक चीज की युद्ध के कार्यों से गौण माना गया। इतने अफसरों को अपनी सत्ता का स्वार्थपूर्ति में प्रयोग करने का अवसर दिया। वस्तुओं का इतना अभाव हो गया कि सरकार ने बाध्य होकर व्यापार करने हेतु लाइसेन्स देना प्रारम्भ कर दिया। लाइसेन्स आवश्यक थे अतः बेईमान एवं चालाक व्यक्तियों ने बिना हिचकिचाहट के अभावग्रस्त वस्तुओं में व्यापार करने के लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए अधिकारियों को रिश्वत देना प्रारम्भ कर दिया।

इस कथन में कि भारत का प्रशासन भ्रष्ट है बहुत अधिक मात्रा में सत्यता है। ब्रिटिश शासन में भारत की आर्थिक दशा शोचनीय थी, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारत राष्ट्र के चरित्र का पतन बहुत तेजी से हो रहा है। इस समय स्थिति यह है कि भारत की जनता को राज्य के संरक्षण पर भी अविश्वास होने लगा है। आचार्य कृपलानी ने इस भयंकर सत्य को लोक सभा में इन शब्दों में व्यक्त किया था–

"I feel the danger in even greater than that on our borders. What happened in NEFA was in no small degree but to wide spread corruption combined with inefficiency."

दुर्भाग्य से भारत द्वितीय शासन पद्धति (Bi-party System) नहीं है जिसमें, यदि एक राजनीतिक दल पर से जनता का विश्वास उठ जाए तो दूसरा राजनीतिक दल शासन की कमान को अपने हाथों में संभाल ले। भारत में सरकारी दल को ऐसा कोई भय नहीं है और उसकी बात का पूर्ण विश्वास है कि कोई भी शक्ति उनकी सत्ता को समाप्त नहीं कर सकती। इस तथ्य से भ्रष्टाचार को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है।

जीवन को प्रत्येक क्षेत्र में राजनीतिक हस्तक्षेप का बोलबाला है। ऐसी परिस्थितियों में भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों का भी कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जाता, आज परिस्थिति यह है कि मानव लोभ के लिए जीवन के सर्वोच्च गुणों को बलिदान कर सकता है। जिन नैतिक बन्धनों से समस्त व्यक्ति एक साथ मिले हुए थे वे समस्त बंधन ढीले हो चुके हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व राष्ट्र का उद्देश्य स्वतन्त्रता प्राप्त करना था जिसके कारण उसने अनेकों बलिदान किए किन्तु बलिदान की भावना का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है मनुष्यों का इतना पतन हो गया है कि उनके

जीवन का धरातल पशुओं के धरातल तक आ गया है। स्थिति इतनी भयंकर हो गई है कि केवल ईश्वरीय शक्ति ही वर्तमान स्थिति का निराकरण कर सकती है।

स्वतन्त्रता के बाद देश में विप्लवकारी स्थिति का प्राधान्य रहा। देश का विभाजन हुआ, साम्प्रदायिक दंगे हुए, काश्मीर का युद्ध, जनसंख्या का स्थानांतरण तथा रियासतों के एकीकरण की समस्या आयी। इन सबके फलस्वरूप 'कानून का शासन खण्डित हो गया तथा लोक सेवकों में भ्रष्टाचार के लिए नवीन मार्ग खुल गए। स्वाधीन भारत में कल्याणकारी एवं समाजवादी राज्य का आदर्श अपनाया गया जिसमें राज्य के कार्यों में असाधारण वृद्धि हुई। खास तौर से आर्थिक क्षेत्र में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से नियम, परमिट का युग प्रारम्भ हुआ और भ्रष्टाचार के नए आयाम प्रकट हुए।

राज्य के केन्द्रीय स्तर के मन्त्री, संसद तथा विधायिका के सदस्यों का नवीन वर्ग भी भ्रष्ट लोक सेवकों के साथ मिल गया। संसद और विधानमण्डल के निर्वाचित प्रतिनिधि जो कि नैतिकता एवं प्रशासन की एकता के संरक्षक थे, स्वयं ही भ्रष्टाचार, कुनबापरस्ती एवं स्वार्थों की पूर्ति में फंस गए। भारत में लम्बे समय तक ही एक राजनैतिक दल के हाथ में शक्ति का एकाधिकार रहा। इससे मन्त्रियों, विधायकों एवं सांसदों को अपनी शक्ति का स्वयं के लाभ के लिए तथा परिवार, मित्रों एव ंदल के साथियों के लाभ के लिए दुरूपयोग करने का अवसर मिल गया। व्यापार एवं उद्योगों में एकाधिकार की अपेक्षा राजनीति में एकाधिकार खतरनाक है। राजनीतिज्ञों को अहसानमंद बनाने वाले लोक सेवक बदले में निडर होकर हर प्रकार का भ्रष्ट व्यवहार करते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त राजनीतिक नेताओं और मन्त्रियों के जो गड़बड़–घोटाले प्रकाश में आए हैं। उनमें श्री कृष्णा मेनन का जीप काण्ड, उड़ीसा के मुख्यमन्त्री बीजू पटनायक, जम्मू–कश्मीर के मुख्यमन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद, बिहार के कृष्ण बल्लभ सहाय, पंजाब के प्रताप सिंह कैरो, तमिलनाडु के करूणानिधि तथा महाराष्ट्र के ए. आर. अन्तुले के मामले उल्लेखनीय हैं।

तीसरे आम चुनाव का केस है जिसमें कानपुर के एक उद्योगपति रामरतन गुप्ता ने कांग्रेस के टिकट पर गोंडा संसदीय चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ा। इसके निर्वाचन के विरूद्ध याचिका दायर की। चुनाव ट्रिब्यूनल ने इस चुनाव पर विचार करने के बाद कहा कि "चुनावों के इतिहास में यह एक विशेष मामला है जिसमें कि दोबारा मतगणना करने पर एक उम्मीदवार 21,666 मतों से जीता हो। उसे चुनाव करने वाले कुछ सरकारी अधिकारियों का सहयोग मिला था।" ट्रिब्यूनल का विचार था कि "कांग्रेसी उम्मीदवार रामरतन गुप्ता को भ्रष्ट उपायों द्वारा सफलता के निकट लाने वाला रिटर्निंग आफिसर एम० सी० निगम था। उससे यह वायदा किया गया कि बदले में चुनाव के बाद उसे फैजाबाद का कमिश्नर बना दिया जाएगा। यद्यपि पहले उसको इस पदोन्नति के लिए मना किया जा चुका था।"

पंजाब के भुतपूर्व मुख्यमन्त्री प्रतापसिंह कैरो के विरूद्ध जो आरोप लगाए गए, उनके सम्बन्ध में जांच आरोप पर पहुंचा कि "मुख्यमन्त्री ने अपनी स्थिति का अनुचित लाभ उठाया है। उनके पुत्र तथा परिवार के सदस्यों ने अपार सम्पत्ति एकत्रित करने में उसकी सत्ता व प्रभाव का उपयोग किया है। उसके साम्राज्य निर्माण के इस प्रयास में अन्य मन्त्रियों तथा लोक सेवकों द्वारा भी गैर–कानूनी एवं भ्रष्ट रूप से सहायता दी गई थी।"

1964 में के० संथानम् की अध्यक्षता में स्थापित भ्रष्टाचार निवारण समिति की रिपोर्ट के अनुसार 1958 से 1962 के चार वर्षों में 2 करोड़ 38 लाख 24 हजार 142 रूपये के लाइसेंस कपटपूर्ण उपायों से प्राप्त किए गए थे। बाजार में प्रत्येक लाइसेंस को उसकी कागजी कीमत से पांच गुनी कीमत पर बेचा जा सकता है। इस हिसाब से उपर्युक्त लाइसेंस द्वारा अनुचित साधनों से कमायी जाने वाली धनराशि 10करोड़ रूपए थी। इसमें से कितना रूपया सरकारी कर्मचारियों की जेब गरम करने में गया, इसका सही अनुमान करना सम्भव नहीं है।

ब्रिटिश युग में प्रायः यह कहा जाता है कि भ्रष्टाचार चपरासियों तथा राजस्व विभाग में लघु कर्मचारियों तक सीमित था। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की विकास योजनाओं के साथ–साथ भ्रष्टाचार का भी बड़ी तेजी से विकास हुआ है। यह उच्चेतम लोक सेवकों, मन्त्रियों और मुख्यमन्त्रियों के स्तर तक पहुंच चुका है। आचार्य कृपलानी ने ठीक ही कहा था कि "भ्रष्टाचार प्रशासन में केवल निम्न स्तरों पर है पर आज किसकी हिम्मत है जो यह कहे कि भ्रष्टाचार उच्च स्तरों में नहीं है।" ए. आर. अन्तुले के मामले से इस बात कि पुष्टि हो जाती है। आज जनता कर्मचारियों के भ्रष्ट आचरण से दुखी होकर रिश्वत देने को अपना धर्म मानने लग गई है। यदि अस्पताल में भर्ती होने के लिए और डॉक्टरों से आपरेशन कराने के लिए भी रोगी अथवा गरीब व्यक्तियों को रिश्वत का सहारा लेना पड़े तो यह कर्मचारी और राज–व्यवस्था दोनों के लिए शर्म की बात है। जनता अस्पताल (जयपुर) की अधीक्षक डॉ० गायत्री विजय को पकड़ा। डॉ० गायत्री विजय ने रिश्वत की यह राशि जयपुर के एक रिक्शा चालक यासीन खां की पुत्री रेहाना के ऑपरेशन के लिए मांगी थी। – राजस्थान पत्रिका (जोधपुर), 7 फरवरी, 1991, पृ०।

जुलाई, 1982 में भारत सरकार ने 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एण्ड पॉलिसी' को देश के काले धन की समस्या का अध्यापन करने का काम सौंपा था। इस सम्बन्ध में संस्थान की अध्ययन रिपोर्ट प्रकाशित हुई। यह सर्वविदित है कि 'काला धन' अर्थात् बिना लेखे–जोखे का धन, भ्रष्टाचार का परिणाम भी है और उसका एक बहुत बड़ा कारण या प्रेरक तत्व भी। उपरोक्त अध्ययन रिपोर्ट काले धन में जमा होने के कई कारणों की छानबीन की गई है पर अन्ततोगत्वा उन्हें यह कहना पड़ा है कि काले धन की मुख्य जिम्मेदारी भ्रष्ट नेता और अफसरों की है। सिर्फ सन् 1983–84 के वर्ष में ही करीब 35,000 करोड़ रूपये यानि तीन खरब पचास अरब रूपये, जितना नया काला धन बना जो कुल वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन का 21 प्रतिशत था। इस काले धन के निर्माण का एक बहुत बड़ा कारण है विकास तथा निर्माण सम्बन्धी योजनाओं के लिए

स्वीकृति धनराशि के एक अच्छे–खासे का 'भ्रष्ट नेता, अधिकारी तथा ठेकेदारों द्वारा' बीच में ही हड़प लिया जाना। रिपोर्ट में आंकड़ों एवं तथ्यों का हवाल देकर यह कहा गया कि "मन्त्रीगण और ऊंचे अफसर अपने निजी लाभ के लिए इस तरह घूंस वसूल करते हैं मानो वह उसका प्राइवेट टैक्सी हो।"

संयुक्त राज्य अमेरीका में राष्ट्रपति निक्सन को 'वाटर गेट काण्ड' के कारण त्यागपत्र देने को विवश होना पड़ा। 1975 में विमान निर्माण करने वाली लॉकहीड नामक अमेरीकी कम्पनी द्वारा जापान के प्रधानमन्त्री को तथा हॉलैण्ड और इटली के शिखरस्थ राजनीतिज्ञों को कम्पनी के विमान खरीदने के लिए दी गई लाखों रूपये की धनराशि के रहस्यीदघाटन से यह स्पष्ट हुआ कि वर्तमान समय में बहुराष्ट्रीय व्यापारिक निगत राजनीतिज्ञों को कितने बड़े पैमाने पर भ्रष्ट करते हैं।

भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने एक साक्षात्कार में कहा कि यदि वे राष्ट्रपति पद के चुनाव में दुबारा उम्मीदवार बन जाते तो कतिपय राजनीतिक दल उनके चुनाव हेतु 30–40 करोड़ रूपए खर्च करने के लिए तैयार थे। क्या यह राजनीतिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार और घोटालों कर चरम अभिव्यक्ति नहीं है। (Indian Express, March 3, 1989, p.1) इससे पूर्व बोफोर्स कांड ने हमारे रक्षा सौदों में व्याप्त रिश्वत औश्र भ्रष्टाचार की पोल ही खोल दी थी। स्वीडिश रेडियो ने आरोप लगाया कि बोफोर्स कम्पनी और भारत के बीच तोपों की खरीद के अरब डालर के समझौतों में भारतीय अधिकारियों को रिश्वत दिलाई गई।

इंडिया टुडे के अनुसार भ्रष्टाचार विरोधी अभियान की अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि I.A.S. अधिकारी की गिरफ्तारी कही जानी चाहिए। राजस्थान राज्य के इतिहास में शायद यह पहला मौका है जब किसी आई. ए. एस. अफसर को भ्रष्टाचार के मामलों में गिरफ्तार किया गया। जयपुर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के निदेशक रहे बी. के. मीणा के कार्यकाल के दौरान 1 करोड़ 5 लाख रूपये की सरकारी राशि का घोटाला हुआ। यह राशि ट्राइसेम व स्फाइट योजना के तहत खर्च की जानी थी। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण में 4 अगस्त, 1989 के बीच यह राशि करीब डेढ़ दर्जन फर्जी स्वयंसेवी संस्थाओं के नाम से उठायी गई।" (इण्डिया टुडे; जुलाई, 1990, पृ० 36)

मई, 1992 में राजस्थान में एक अन्य आई. ए. एस. अधिकारी श्री रविशंकर श्रीवास्तव को भ्रष्टाचार के आरोप में निलम्बित किया गया। वे चुरू जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के परियोजना निदेशक थे; उस समय उन्होंने सरकारी धन का दुरूपयोग किया। जांच के दौरान पता चला कि श्रीवास्तव एवं उनके मातहत अधिकारियों ने दफ्तर में मिठाई मंगवाने तक में सरकारी पैसा खर्च किया। जो पैसा ग्रामीण विकास अभिकरण के माध्यम से गरीब व ग्रामीण, पिछड़े लोगों के विकास कार्यों पर खर्च होना था उस धन से रंगीन टेलीविजन, बी. सी. आर. तीन आधुनिक

टेलीफोन उपकरण, किमती फर्नीचर, क्राकरी, रसोई के उपकरण, गैस स्टोव एवं गीजर जैसी घरेलू उपयोग की सामग्री खरीद ली गई। जांच में श्रीवास्तव के खिलाफ यह पाया गया कि बिना प्रावधान और बिना अनुमोदन के इस प्रकार हुई करीब एक करोड़ 38 लाख की राशि का घोटाला हुआ है। (राजस्थान पत्रिका, 21 मई, 1992)

प्रशासन में भ्रष्टाचार के कारणों का विश्लेषण

(Analysis of the causes of Corruption in Administration)

भारतीय लोक प्रशासन में रिश्वत एवं भ्रष्टाचार के व्यापक प्रसार में निम्न कारणों ने योग दिया है–

1. **युद्धकालीन अभाव तथा नियन्त्रणः** द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब सेना के लिए सरकार भारी परिमाण में अनाज तथा अन्य सामग्री खरीदने लगी तो व्यापारी सरकारी माल के ठेके प्राप्त करने के लिए अधिकारियों की जेब गरम करने लगे। युद्धजनित परिस्थितियों के कारण अनाज आदि का राशन और नियन्त्रण शुरू किया गया। इसके लिए सरकारी दुकानों के लाइसेंस औश्र परमिट दिए जाने लगे। इससे भी भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। स्वाधीनता प्राप्त के बाद त्वरित आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बनाई गई और यह भी आवश्यक था कि देश के समस्त सुलभ साधनों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाए, उपभोक्ताओं का जब सामग्री राशन के आधार पर सीमित मात्रा में दी जाए। इसके लिए परमिट, लाइसेंस और कोटा पद्धति शुरू की गई। इसके अनुसार कुछ विशेष व्यक्तियों को ही निश्चित मात्रा में कारखाने से वस्तुएं प्राप्त करने के परमिट और अधिकार–पत्र दिए जाने लगे। इसके परिणामस्वरूप देश में व्यापक रूप से चोर–बाजारी शुरू हो गई।
2. **भ्रष्टाचार–ब्रिटिश विरासतः** ब्रिटिशकालीन भारत में उच्चतम सरकारी कर्मचारियों में भ्रष्टाचार कितने व्यापक रूप में प्रचलित था– यह इस बात से स्पष्ट है कि उस समय वायसराय या गवर्नर अपने पद से अवकाश ग्रहण करने से पहले देशी रियासतों का दौरा, राजाओं से विदाई लेने के नाम पर किया करते थे, यद्यपि इसका वास्तविक प्रयोजन उनसे भेंट और उपहार प्राप्त करना होता था। लार्ड वेवेल ने 1945 में भारत का वायसराय बनने पर अपनी बेटी फेलेसिट एन के विवाह के निमन्त्रण–पत्र प्रमुख धनी भारतीयों तथा 700 छोटी–बड़ी रियासतों के राजाओं को शादी से कई महीने पहले उन सब वस्तुओं की सूची के साथ भेज के साथ दिए थे जिन्हें वर–वधू उपहार के रूप में लेना पसंद करेंगे।
3- **नैतिक मूल्यों का ह्रासः** विकसित जनसमाज में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण पर निरन्तर बल दिया गया है, जिससे सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का भौतिक, मूल्यों के

आगे ह्रास होता है। भौतिक आवश्यकताएं बढ़ती जाती हैं और जो वस्तुएं पूर्ण विलास की वस्तुएं मानी जाती थी, वे अब जीवन की आवश्यकताएं बनती चली जाती हैं। उनकी प्राप्ति के लिए धन की आवश्यकता होती है। ईमानदारी के तरीकों से धन कमाना काफी कठिन होता है अतः अनैतिक उपायों का सहारा लिया जाता है। पहले अनैतिक कार्य करने में व्यक्ति झिझकता था जबकि आज अनैतिक उपायों से लाभ अर्जित करने में उसे प्रसन्नता होती है।

4. **प्रशासन का विस्तारः** स्वतन्त्रता के पश्चात् अकस्मात् ही ब्रिटिश एवं मुस्लिम अधिकारियों की एक बड़ी संख्या में कमी हो गई जिसके फलस्वरूप एक बड़ी संख्या में विभिन्न श्रेणियों में अनुभव एवं योग्यता को ध्यान में रखे बिना भर्ती की गई। सेवाओं की सुस्थापित परम्पराओं में इन कर्मचारियों की कोई आस्था नहीं थी।
5. **वेतनों की विषमताः** भारत में कर्मचारियों के वेतनों में काफी अन्तर है। उच्च वेतनों के फलस्वरूप उच्च अधिकारी आरामदेह जीवन व्यतीत करते हैं। प्रत्येक अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी का अनुसरण करना चाहता है। यदि उसका वेतन कम होता है तो वह अनुचित साधनों से आमदनी करता है। वेतनों में विषमता का व्यापकता अनैतिक एवं विनाशकारी प्रभाव होता है।
6. **पंचवर्षीय योजनाएं व मान्यताओं में परिवर्तनः** पंचवर्षीय योजनाओं की शुरूआत के साथ कर्मचारियों को अपने विभाग में खर्च करने के विस्तृत अधिकार प्राप्त हुए। बड़े अधिकारी स्थानीय विकास के कार्यों में लाखों तथा करोड़ों रूपये खर्च कर सकते थे। स्थिति में यकायक परिवर्तन हो जाने से मनुष्य का मानसिक संतुलन नष्ट हो जाता है जिसके दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होते हैं। सन्थानम के अनुसार, ("A Society that goes in for a purposively intiated process in a fast rate of change has to pay a social price.") जहाँ पर खर्च करने की शक्ति तथा अपने विवके का प्रयोग करने का अधिकार एक ही व्यक्ति में केन्द्रीय होता है। वहाँ पर भ्रष्टाचार के अवसर बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं। भ्रष्टाचार एक छूत की बिमारी के समान है जिनके दूषित प्रभाव समस्त प्रकार के कर्मचारियों में बहुत तेजी साथ फैल जाते हैं। आज प्रत्येक अधिकारी जिसको नियुक्तियाँ करने का अधिकार प्राप्त है, अपने कुटुम्ब वालों की तथा मित्रों की बेराजगारी को दूर करने में लगा हुआ है जो भ्रष्टाचार ब्रिटिश शासन में केवल राजस्व, लोक निर्माण विभाग, उत्पादन शुल्क तथा पुलिस विभागों में पाया जाता था स्वतन्त्र भारत के समस्त कर्मचारियों में पाया जाता है। आधुनिक युग के अधिकारियों के विशेष अधिकार उनके वास्तविक अधिकारों से भी अधिक हैं।

7- **राजनीतिक हस्तक्षेपः** आज प्रशासन प्रत्येक क्षेत्र में राजनीतिक हस्तक्षेप है। प्रशासकों के समक्ष भी कठोर समस्या है। यदि वे जन–साधारण से संपर्क स्थापित नहीं करते हैं तो सामुदायिक योजनाएं पूरी नहीं की जा सकती। यदि वे सम्पर्क स्थापित करते हैं तो उनको

राजनीति में प्रवेश के लिए बाध्य किया जाता है। ईमानदार अधिकारियों को दूषित परिणाम भुगतने पड़ते हैं यदि वे राजनीति में प्रवेश करने से इंकार कर देते हैं। संसद के तथा राज्य की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। कांग्रेस सदस्य श्री वाकर अली ने लोकसभा में भाषण देते हुए कहा था–

"Corruption was rampant even among the members of parliament and legislators but no one talked out it because we have become a supreme body of vested interests."

राजनीतिज्ञ, नेता ग्राम पंचायतों के प्रधान तथा सरपंच समस्त मामलों में नियुक्तियां, पदोन्नितियां, छात्रवृतियों, परीक्षा परिणामों, न्यायिक निर्णयों, ग्राम पंचायतों के मामलों, तकावी, योजनाओं में हस्तक्षेप करते हैं।

मुंदरा डील, सिराजउद्दीन मामला, रामपप्यारे ऐपीसोड, दास कमीशन रिपोर्ट, नेफा डिबैकिल, जीप, स्कैंडल, कैरों हत्या काण्ड इत्यादि में मन्त्रियों पर भारी मात्रा में कीचड़ उछाली गई। पंजाब के भूतपूर्व मन्त्री श्री पटनायक तथा मित्रा, केन्द्रीय मन्त्री श्री के. डी. मालविया, उपमन्त्री श्रीमति तारकेश्वरी इत्यादि पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया गया तथा उनको अपने स्थानों से त्याग–पत्र देने पड़े।

8. **पार्टी कोषः** पार्टी के नाम पर चंदा इकट्ठा बरना अपने काले करतूतों पर केवल पर्दा डालना है जिस दल के हाथों में सत्ता होती है, उसको ही सदा सबसे अधिक लाभ पहुंचता है। 'Journal of Public Administration' के अनुसार पिछले निर्वाचन में बड़े–बड़े पूंजीपतियों तथा बड़े व्यापारियों से कांग्रेस ने पांच करोड़ रूपया एकत्रित किया। इस प्रकार के चंदों के न तो निश्चित नियम हैं और न उनका विधिवत हिसाब ही रखा जाता है।
9. **रिश्वत में सांझेदारीः** सन्थानम् समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि लोक निर्माण विभाग में यह प्रथा पड़ गई कि ठेकेदारों से 7 से लेकर 11 प्रतिशत तक उनके बिलों की धनराशि रिश्वत के रूप में वसूली की जाती है। यह अवैध धन समस्त कर्मचारियों में (सुप्रीन्टेडिंग इंजीनियर से लेकर साधारण चपरासी तक) बंट जाती है जिन विभागों में कर निर्धारित किया जाता है, उन विभागों में भ्रष्टाचार का क्षेत्र अधिक व्यापक रहता है, जिनके कारण करों की चोरी करने में सहयोग मिलता है, दे दिया जाता है, जब बड़े अधिकारी भी लूट के माल में भागीदार होते हैं तो वे अपने अधीन कर्मचारियों पर किस प्रकार नियन्त्रण रख सकते हैं। इस विषय पर श्री जे. बी. कृपलानी ने लोकसभा में एक मनोरंजक कहानी सुनाई थी। गांधी आश्रम एक रेशम का उद्योग चला रहा था। रेलवे प्रशासन ने इस कारखाने में तैयार हुए रेशमी माल बुक करने से इंकार कर दिया जब तक उनको उनके भाग की अवैध धनराशि न मिल गई। आचार्य कृपलानी स्वयं उस आश्रम के अध्यक्ष तथा श्री जवाहर लाल नेहरू रक्षक थे।

10. लालफीता शाही (Red Tapism): आवश्यकता से अधिक देरी लगाकर तथा लम्बी औपचारिता के द्वारा अधिकारी वर्ग ईमानदार व्यक्तियों को परेशान करता है। यदि कर्मचारियों को रिश्वत के रूप में कोई धनराशि मिल जाती है तो वे उस प्रक्रिया को सरल बन देते हैं। इस तथ्य के विषय में श्री सन्थानम् ने अपनी रिपोर्ट के बारे में कहा है–

"Certain sections of staff are reported to have go into the habit of not doing anything in the matter till they are suitably persuaded…… there is a general impression that it is difficult to get things done without resorting to Corruption."

जब उच्च अधिकारी के द्वारा किसी पत्र पर निर्णय भी हो जाता है तो भी अधीन कर्मचारियों के द्वारा उस समय तक उसको दबाकर रखा जाता है जब तक उनको कोई अनुचित लाभ नहीं होता। मैसूर सरकार द्वारा नियुक्त की गई Resounces and Economy Committee ने दपनी रिपोर्ट में कहा है।

"Delay and Corruption consititute in our opinion a connected phenomenon and arise together under an administration which is insufficiently integrated, supervised and inspected. An elaborated administrative machinery functioning under out moded and comples rules enables- the officials to make defficulties and delays until they are paid."

11. एकमात्र अधिकार की मनोवृत्तियाँ (Monopolistic Tendencies): प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह अधिक हो अथवा प्रशासकीय एकमात्र अधिकार की मनोवृत्तियाँ दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हैं। आज के मुकाबले के युग में एक उद्योगपति दूसरे उद्योगपति को नष्ट करके स्वयं का विस्तार करने का अभिलाषी है। ऐसा करने के लिए या तो उसे अपना माल सस्ता बेचना पड़ता है अथवा केवल अपने लिए लाइसेंस अथवा परमिट कि व्यवस्था करके समस्त उद्योग धंधे पर अपना एकमात्र रिश्वत देनी पड़ती है। वह अपनी हानि अनुचित साधनों से पूरी करता है जैसे बोगस परमिट प्राप्त करके, करों को चुराकर, गंदी वस्तुओं को मिलाकर इत्यादि। आजकल हमको प्रत्येक क्षेत्र में यह दृश्य देखने को मिलता है बड़े व्यापारियों ने माल का भारी स्टाक एकत्र कर लिया है और वे मनमाने ढंग से बेचकर जनता पर शोषण करते हैं। उनके अवैध लाभ में सरकार भी साझीदार होती है। अतः वह उनके विरूद्ध प्रभावशाली कार्यवाही नहीं कर सकती। एक मात्र अधिकार को प्रोत्साहन देने के लिए प्रशासन पद्धति को अधिक टैकनीकल तथा पेचीदा बनाया जा रहा है।

12- सेवाओं को संवैधानिक संरक्षण (Legal Protection to Services): सन्थानम समिति ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया कि भारत में कर्मचारियों को बहुत से प्रगतिशील देशों की अपेक्षा अधिक संरक्षण प्रदान किया जाता है। किसी कर्मचारी को बर्खास्त करना सरल

कार्य नहीं है। संविधान तथा कानूनों ने इतना संरक्षण प्रदान किया है कि प्रशासकीय अधिकारी बेईमान कर्मचारियों के विरूद्ध कोई कार्यवाई करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं जब उनको ऐसे कर्मचारियों का पता चल भी लग जाता है। रिपोर्ट में कहा गया है– "It was distressing to hear of the departments confess that, even when they were normally convinced that one of the officials working under them, was corrupt they were unable to do anything because of the difficults in obtaining formal proof, finding or conviction."

13. **नियमों की पेचीदगी (Complexity of Rules):** प्रशासन के नियम इतने पेचीदा बनाए जा रहे हैं कि अशिक्षित व्यक्तियों का तो कहना ही क्या शिक्षित व्यक्ति भी उनको ठीक प्रकार से नहीं समझ सकते। नियमों को सरल बनाया जा सकता है परन्तु केवल कुछ उद्योगपतियों का एकमात्र अधिकार समाप्त हो जाएगा। भारत की जनता, वकीलों तथा उनके क्लर्कों की कृपा पर निर्भर करती है।

14. **पुलिस का अत्याचार (Heavy Handedness of the Police):** भारत की पुलिस ईमानदार व्यक्तियों को सहयोग देने की बजाय उनको अधिक परेशान करती है तथा गलत आदमियों को प्रोत्साहन करती है हाल ही में भीड़, मुरेना, उत्तरप्रदेश के कुछ जिलों में प्रतिनिधियों ने गृहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा को एक स्मरण पत्र (Memorandum) प्रस्तुत किया जिससे उन्होंने, इस भेद को प्रकट किया कि इन स्थानों की पुलिस डाकुओं से मिली हुई है, जो व्यक्ति पुलिस की शिकायत करने का साहस करते हैं, उनकी हत्या कर दी जाती है उनके नाम डाकुओं की सूची में दर्ज कर दिए जाते हैं। इस प्रकार पुलिस उनकी हत्या करके सरकार से इनाम भी प्राप्त कर लेती है।

15. **भ्रष्ट कर्मचारियों का संरक्षण करना (Shielding of Corrupt Administrators):** हमारे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू में यह दुर्बलता थी कि अपने अधीन करने वाले अधिकारियों का संरक्षण करते थे। एक बार जब इस प्रश्न को संसद में उठाया गया था तो उन्होंने कहा था कि अधिकारी इतने योग्य तथा अच्छा कार्य करने वाले थे कि अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् उनकी सेवाएं उच्च वेतन पर प्राइवेट उद्योगपति तथा व्यापारी प्राप्त करते थे। वे इस वास्तविकता को नहीं जानते थे कि उनको इसलिए ऊंचा वेतन दिया जाता है कि सरकार के गोपनीय भेदों को उद्योगपति जान सकें। उन्होंने श्री प्रतापसिंह कैरो, श्री कृष्ण मेनन, श्री लाल तथा अन्य अधिकारियों को अनुचित संरक्षण देने का प्रयत्न किया।

भ्रष्टाचार के रूप

(Form of Corruption)

भ्रष्टाचार के अगणित रूप में हैं। यह आवश्यक नहीं कि भ्रष्टाचार धन के रूप में हो और न ही यह आवश्यक है कि किसी मन्त्री या अधिकारी को व्यक्तिगत लाभ के रूप में हो। किसी मन्त्री या अधिकारी या उससे सम्बन्धी या मित्रों को उनके व्यक्तिगत लाभ के लिए धन दिया जा सकता है। कभी–कभी उसे राजनीतिक दलों के लिए उसे एकत्र करना पड़ता है। इस प्रकार जो धन या सुविधा प्राप्त होती है उसके बदले सत्ताधारी दानदाता के किसी कार्य या हित की पूर्ति कर देता है, जैसे उसकी फाइल पर शीघ्र निर्णय देना, परमिट, लाइसेंस या ठेका प्रदान करना या किसी के विरूद्ध की गई या प्रस्तावित कार्यवाही को समाप्त कर देना, आदि। हर प्रकार का भ्रष्टाचार सत्ता का दुरूपयोग है। मन्त्री या अधिकारी अपनी स्थिति का लाभ उठाकर अपने रिश्तेदारों को लोक सेवाओं या उन बड़ी निजी कम्पनियों में नौकरी दिलवा सकता है जिनको सरकार से काम पड़ते रहते हैं। अनेक पदनिवृत अधिकारियों को ऊँचे–ऊँचे वेतनों पर निजी क्षेत्रों में नियुक्त किया जाता है। यह केवल उनके प्रशासकीय अनुभव के कारण नहीं होता, अपितु उनसे प्रशासन में पहुंच हो जाती है और शासन के कार्य कराने में इन पदनिवृत अधिकारियों को सम्पर्क अधिकारी के रूप में प्रयोग किया जाता है।

बहुत–से व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने पर्वतीय नगरों, तीर्थस्थानों एवं बड़े नगरों में अतिथि गृह बनवा रखे हैं। अनेक मन्त्री एवं उच्च अधिकारी इनमें अवकाश, तीर्थयात्रा एवं शासकीय दौरे पर ठहरते हैं। इस आतिथ्य के प्रतिफलस्वरूप आतिथेय एवं शासकीय अधिकारियों में एक प्रकार की मित्रता हो जाती है, जो देखने में भले ही निर्दोष हो परन्तु सम्बन्धित को उसको बोध न होते हुए भी अनजाने ही उसकी सच्चरित्रता के लिए हानिकरण सिद्ध होती है। अधिकारी के जो छोटे–छोटे कायै किए जाते हैं, जिनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि आतिथेय का उनमें कुछ खर्च नहीं होता, उनके यही परिणाम होते हैं। जैसे–जैसे मित्रता बढ़ती जाती है, आतिथेय द्वारा शासकीय अधिकारी को दिए जाने वाले उपहारों की मात्रा एवं मूल्य भी बढ़ते जाते हैं, और वे मित्रता के प्रतीक बन जाते हैं; परन्तु थेड़े समय के बाद वे अधिकारी के कर्त्तव्यों का भार बन जाते हैं। यदि कोई शासकीय कर्मचारी किसी आतिथेय के प्रति कुछ कारणों से अपने को अनुगृहित करता है तो उसकी सच्चरित्रता को बड़ा धक्का लगता है, और जिन शासकीय कार्यों को करने में कठिनाई होती है उन कार्यों को आतिथेय के लिए अस्वीकार करना अधिकारी के लिए असम्भव हो जाता है।

शीघ्र काम कराने के लिए धन देना भ्रष्टाचार, विशेषकर परमिट एवं लाइसेंस प्राप्त करने का एक आम तरीका है। इा प्रकार की रिश्वत देने वाला कोई गैर–कानूनी कार्य नहीं करना चाहता अपितु वह अपने मामले से सम्बन्धित कागजात को शीघ्रतापूर्वक निपटाने का इच्छुक होता है। कुछ कर्मचारी वर्ग में तो जब तक किसी मामले को निपटाने के लिए उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं किया जात या खुशामद नहीं की जाती तब तक उस कार्य को न करने की उनमें आदत–सी पड़ जाती है।

प्रशासन की तरफ से निर्माण, क्रय तथा विक्रय तथा अन्य दैनिक कार्यों सम्बन्धी ठेकों में एक निश्चित प्रतिशत पर उस कार्य से सम्बन्धित अधिकारी व्यक्तियों द्वारा लिया जाता है एवं सभी सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा उसे एक स्वीकृत अनुपात में आपस में बाँट लिया जाता है। सार्वजनिक निर्माण विभागों के निर्माण कार्यों में 7 से 11 प्रतिशत तक इस प्रकार दिया जाता है और इसमें एक्जीक्यूटिव इंजीनियर से लेकर मिस्त्री तक का हिस्सा होता है। कभी–कभी तो ऊंचे पद के इंजीनियर का भी इसमें हिस्सा होता है। इसके अतिरिक्त रेलवे में वैगन देने, पार्सलों को भेजने, विशेषकर शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं के पार्सलों पर रिश्वत सम्बन्धी समान रिवाज प्रचलित है। जब किसी वस्तु का क्रय किया जाता है तब घटिया वस्तु को स्वीकार कराने के लिए भी कुछ प्रतिशत दिया जाता है।

अनेक विभागों में किसी स्थान विशेष पर नियुक्ति सरकारी कर्मचारियों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। अपनी इच्छा एवं महत्त्व के स्थान पर नियुक्ति के लिए बहुत–सी शासकीय कर्मचारियों द्वारा रिश्वत दी जाती है। पुलिस, सार्वजनिक निर्माण आदि विभागों में तो पदों की निलामी तक होती है।

व्यक्तिगत फाइलें एवं गोपनिय रिपोर्ट शासकीय विभागों में भ्रष्टाचार का अन्य साधन है। ये अधीनस्थों के सिर पर सदैव लटकने वाली तलवार की भांति है। जब कोई अधिकारी दौर पर जाता है तब वह अपने अधीनस्थों से यह अपेक्षा करता है कि वे उसकी सुविधा का ध्यान रखें। इसका अर्थ यह है कि अधीनस्थ अधिकारी ही उस पर खर्चा करे। उन्हें इस प्रकार के व्यय के लिए धन का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसका सहज परिणाम भ्रष्टाचार है। यदि कोई ईमानदार अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी को इस प्रकार की सेवा से अनुगृहित लिख दिया जाए। इसी प्रकार के कारणों तथा वरिष्ठ अधिकारी से अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए अनेक अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उसकी व्यक्तिगत रूप से जी–हुजूरी की जाती है। एक शीर्षस्थ राजस्व अधिकारी के सम्बन्ध में एक कहानी कही जाती है कि उसने अपने एक अधीनस्थ को कैम्प में मछली भिजवाने के लिए कहा। उसके अधीनस्थ ने अपनी असमर्थता व्यक्त की। इस पर उसकी व्यक्तिगत फाइल पर यह टिप्पणी लिख दी गई की वह अयोग्य है।

भ्रष्टाचार का एक अन्य प्रकार शासकीय कर्मचारियों द्वारा सार्वजनिक धन का अपव्यय करना है। अनेक अवसरों पर जब मन्त्री एवं वरिष्ठ अधिकारी दौरे पर जाते हैं तो कनिष्ठ अधिकारियों द्वारा इन अवसरो पर भ्रमण हेतु आने वाले अधिकारियों के मनोरंजन के लिए अनाप–शनाप धन व्यय किया जाता है। इस प्रकार के मुक्तहस्त व्ययों का उद्देश्य केवल यही है कि सम्बन्धित मन्त्रियों एवं अधिकारियों से अपने अनुचित हित साधन किए जाएं।

केन्द्रीय निरीक्षण आयोग ने भ्रष्टाचार के निम्न 27 प्रकारों का उल्लेख किया:

1. निम्नस्तरीय वस्तुओं या कार्य को स्वीकार करना;
2. सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरूपयोग करना;
3. जिन व्यक्तियों से अधिकारियों के कार्यालय स्तर के सम्बन्ध हैं उनके आर्थिक दायित्वों को वहन करना;
4. ऐसे ठेकेदारों या फर्मों से कर्ज लेना जिनसे उनके कार्यालय स्तरीय सम्बन्ध होते हैं;
5. ठेकेदारों एवं फर्मों को रिआयतें देना;
6. झूठे, दौरे, भत्ते एवं गृह–किराया आदि का दावा करना;
7. अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना;
8. बिना पूर्व–अनुमति या पूर्व–सूचना के अचल सम्पत्ति आदि का क्रय करना;
9. प्रमाद या अन्य कारण से शासन को हानि पहँचाना;
10. शासकीय पद या सत्ता का दुरूपयोग;
11. भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में गैर–कानूनी रूप से धन लेना;
12. शासकीय कर्मचारियों को व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग लाना;
13. जन्म–तिथि एवं समुदाय सम्बन्धी जाली प्रमाणपत्र तैयार करना;
14. रेल एवं वायुयान में स्थान सुरक्षित करने में अनियमितता;
15. मनीऑर्डर, बीमा एवं मूल्य–देय पार्सलों आदि को न देना;
16. नये डाक टिकटों को हटाकर पुराने टिकट लगाना;
17. आयात एवं निर्यात लाइसेंस देने में असहयोग एवं अनियमितता;
18. शासकीय कर्मचारियों की जानकारी एवं सहयोग से विभिन्न फर्मों द्वारा आयातित एवं निर्धारित कोटे का दुरूपयोग;
19. टेलीफोन कनेक्शन देने में अनियमितता;
20. अनैतिक आचरण;
21. उपहार ग्रहण करना;
22. आर्थिक लाभ के लिए आय–कर, सम्पत्ति–कर आदि का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना;
23. स्कूटर एवं कार खरीदने के लिए स्वीकृत अग्रिम धनराशियों का दुरूपयोग;
24. विस्थापितों के दावों के निपटाने में अनुचित विलम्ब;
25. विस्थापितों के दावों का गलत मूल्यांकन;
26. आवासीय भूमि के हिस्सों के क्रय एवं विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना; तथा
27. शासकीय क्वाटरों का अनधिकृत कब्जा एवं उन्हें अनधिकृत रूप से किराये पर उठाना।

वर्तमान विधिक संरचना

(Various Measures)

लोक कर्मचारियों के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 ने भ्रष्टाचार के क्षेत्र की निम्नलिखित परिभाषा दी है:

एक लोक सेवक अपने कर्त्तव्य के सम्पादन में आपराधिक दुराचरण (Criminal Misconduct) का दोषी होता है–

1. यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए ऐसी धनराशि, जो विधिक पारिश्रमिक के अतिरिक्त होती है, किसी उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में जैसा भारतीय दण्ड विधान की धारा 161 में उल्लिखित है, स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है;
2. यदि वह आदतन अपने लिए या अन्य किसी व्यक्ति से अपने लिए या अन्य व्यक्ति कि लिए कोई मूल्यवान वस्तु बिना कारण या किसी ऐसे कारण के लिए, जो वह जानता है कि अनुचित है, किसी जान–पहचान के व्यक्ति या किसी सम्पादिन कार्य या व्यापार से सम्बन्धित या उसके या किसी ऐसे लोक सेवक के, जिसका अधिनस्थ है, कार्यालय सम्बन्धी कार्यों या किसी अन्य ऐसे व्यक्ति से जिसे वह जानता है या जिससे सम्बन्धित व्यक्ति का हित है या सम्बन्धित है, ग्रहण करता है; तथा
3. यदि वह बेइमानी या जालसाजी से धन का दुरूपयोग करता है या लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरूपयोग करते हुए अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1947 के प्रावधानों की जकड़ मजबूत करने के लिए 1988 में इसमें संशोधन किया गया। 'लोक सेवक' की परिभाषा भी अब अधिक विस्तृत कर दी गई है, जो उचित भी है। अब मन्त्री और सांसद भी लोक सेवक हैं।

विभिन्न प्रयत्न (Various Efforts)

1. **बक्सी टेकचन्द समिति की नियुक्ति (Appointment Bakshi Take Chand Committee):** इस समिति की नियुक्ति सन् 1949 में की गई। सन् 1949 में भ्रष्टाचार रोक अधिनियम (Prevention of Corruption Act)– पास किया गया था। इस समिति का उद्देश्य इस अधिनियम को क्रियात्मक रूप प्रदान करना था। इसको विशेष पुलिस संगठन (S.P.E.) को अधिक प्रभावशाली बनाने की दिशा में भी सुझाव प्रस्तुत करने थे।
2- **विशेष पुलिस संगठन की नियुक्ति (Appointment of Special Polic Establishment):** सन् 1946 में केन्द्रीय सरकार ने गृह मन्त्री के अन्तर्गत विशेष पुलिस संगठन (S.P.E.) की स्थापना की। इसका कर्त्तव्य कर्मचारियों में भ्रष्टाचार के कारणों का

पता लगाना तथा ऐसे दोषी कर्मचारियों के विरूद्ध मुकदमा चलाना था। सन् 1949–50 में राजस्थान तथा विंधिया प्रदेश के कुछ मन्त्री रंगे हाथ (Red Handed) पकड़े गए।

3. **कृपलानी पूछताछ समिति की नियुक्ति (Appointment of Kriplani Inquiry Committee):** सन् 1953 में रल–मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने आचार्य कृपलानी के अधीन रेलवे विभाग में भ्रष्टाचार की जांच करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की।
4. **आचरण सम्बन्धी नियम:** विभिन्न श्रेणियों के लिए शासकीय कर्मचारी सम्बन्धी पृथक–पृथक परन्तु पर्याप्त साम्य रखने वाली आचरण सम्बन्धी नियमावलियाँ प्रचलित हैं:
   i. अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954;
   ii. केन्द्रीय नागरिक सेवा (आचरण) नियम, 1955;
   iii. रेल सेवा (आचरण) नियम, 1956।

   लोक सेवकों सम्बन्धी विभिन्न परिस्थितियो के बारे में शासन द्वारा समय–समय पर अनेक नियमों का निर्माण किया गया है एवं आदेश जारी किये गये हैं:

   i. 1860 में राजपत्रित एवं 1869 में अराजपत्रित कर्मचारियों द्वारा कर्ज लेने एवं कर्ज देने सम्बन्धी;
   ii. 1876 में उपहार ग्रहण करने सम्बन्धी;
   iii. 1881 में मकानों एवं अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति बेचने सम्बन्धी;
   iv. 1883 में शासन के अधीन किसी एक पद के अन्य व्यक्तियों के आर्थिक लाभ हेतु पद–त्याग करने सम्बन्धी;
   v. 1885 में अचल सम्पत्ति में धन लगाने एवं सट्टे सम्बन्धी;
   vi. 1845 में कम्पनियों के प्रबन्ध एवं विकास तथा निजी व्यापार एवं रोजगार सम्बन्धी;
   vii. 1885 में लोक सेवकों द्वारा चंदा एकत्र करने सम्बन्धी;
   viii. 1885 में कर्जदार एवं दिवालिया होने सम्बन्धी;
   ix. 1920 में पदनिवृत्ति के पश्चात् व्यापारिक होने सम्बन्धी; तथा

   इन नियमों में निश्चय ही अनेक कमियाँ हैं। फलस्वरूप, इनके द्वारा भ्रष्टाचार को रोकना कठिन हो गया है।

5. **प्रशासकीय विजिलैंस विभाग की नियुक्ति (Appointment of Administrative Vigilance Division:** इसकी स्थापना अगस्त 1955 में हुई थी और इसकी शाखायें समस्त विभागों में स्थापित की गई। इसका कर्त्तव्यों विभागों के भ्रष्टाचार के कारणों का पता लगाना था।

6. विविन बोस आयोग की नियुक्ति (Appointment of Vivin Bose Commission):

इसकी स्थापना सन् 1956 में कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों में भ्रष्टाचार के कारणों को मालूम करने के लिए हुई थी। इसकी सिफारशों के परिणामस्वरूप कई उद्योगपियों के विरूद्ध मुकदमे चलाए गए।

इन प्रयत्नों के परिणाम अप्रैल 1957 से दिसम्बर सन् 1962 तक लगभग 44 हजार कर्मचारियों को भ्रष्टाचार के लिए विभिन्न दण्ड दिए गए। 1100 कर्मचारियों को कारावास का दण्ड मिला तथा शेष का बर्खास्तगी, अनिवार्य पदावकाश, पद–अवनति इत्यादि। सन् 1963 के पहले चार महीने में तीन राजपत्रित तथा 49 गैर–राजपत्रित अधिकारियों पर विशेष पुलिस संगठन द्वारा अभियोग लगाए गए।

7. सन्थानम समिति की नियुक्ति (Appointment of Santhanam Committee):

उपरोक्त साधन भ्रष्टाचार को रोकने में अपर्याप्त सिद्ध हुए। भ्रष्टाचार का विषय आज प्रत्येक नागरिक तथा व्यवस्थापिका के सदस्यों की जुबान पर है। समाचार पत्र तथा पब्लिक भाषण भी इस विषय से ही भरे रहते हैं। सन् 1961 में केन्द्रीय सरकार ने कस्तुरी सन्थानम की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया। इस समिति में संसद के 6 सदस्य तथा अनुभवी प्रशासकीय अधिकारी थे।

सन्थानम समिति ने भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

i. कानूनों नियमों तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं पर पुनर्विचार। इनको सरल बनाया जाना चाहिए तथा यह इतने स्पष्ट होने चाहिए कि इनके विषय से दो मत हो ही न सके।

ii. भ्रष्टाचार के कारणों का अध्ययन किया जाकर उनको दूर करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

iii. परमिटस, लाइसेंस तथा ठेकों को देने में विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए।

iv. पत्रों तथा फाइलों पर शीघ्र निर्णय होकर मामलों को समाप्त किया जाना चहिए।

v. कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों को उत्तरदायित्वों के कार्य नहीं सौपें जाने चाहिए।

vi. गुप्त सूचना तथा सामान्य सूचना के बीच स्पष्ट भेद होना चाहिए।

vii. क्लेरिक्ल स्टाफ द्वारा कोई निर्णय नहीं होना चाहिए।

viii. कर्मचारियों की नियुक्तियों तथा पदोन्नतियों में विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए।

ix. कर्मचारियों के जीविका उपार्जन तथा निवास स्थानों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

x. किसी भी कर्मचारी की पद अवधि में, जहाँ तक सम्भव हो, वृद्धि नहीं होनी चाहिए।

xi. भ्रष्टाचार के ऐसे प्रोपेगेंडा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए। जिसका कोई आधार न हो।

xii. अधिकारियों से मुलाकात करने वालों का उचित लेखा–जोखा रखा जाना चाहिए।

xiii. परमिट्स, तकाबी तथा लाइसेंस इत्यादि फार्मों का शीघ्र सप्लाई की जानी चाहिए।

xiv. सम्पत्ति के खरीद और बेचने की कीमत दिखाने वालों पर उचित रोक लगायी जानी चाहिए।

xv. आय–कर तथा अन्य अनुमान पत्रों का प्रकाशित होना चाहिए।

xvi. अवकाश प्राप्त सरकारी नौकरों पर अवकाश के पश्चात् व्यक्तिगत उद्योग धन्धों तथा व्यापारिक फर्मों में सेवा ग्रहण नहीं करने देना चाहिए।

xvii. निजी सम्पत्ति के समस्त पदाधिकारियों तथा मन्त्रियों द्वारा घोषित किया जाना चाहिए।

xviii. जिन मन्त्रियों पर दोषारोपण किया जाता है उनके द्वारा पद त्याग की व्यवस्था की जानी चाहिए।

xix. पार्टी कोषों की जनता को जानकारी होनी चाहिए।

xx. अधिक पढ़े व्यक्तियों को लिपिक वर्ग के कार्यों के लिए नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त निम्न प्रयास भी किए जाने आवश्यक हैं–

a. भ्रष्टाचार के विरोध में जबर्दस्त लोकमत उत्पन्न किया जाना चाहिए ताकि भ्रष्टाचारियों के दुष्कर्मों का भण्डाफोड़ किया जा सके,

b. चुनाव सुधार किए जाने चाहिए ताकि चुनाव लड़ने में बहुत राशि धनराशि व्यय न करनी पड़े। जब तक चुनाव धन से लड़े जायेंगे, जब तक भ्रष्टाचार चलता रहेगा;

c. भ्रष्टाचार के मामलों पर कार्यपालिका के प्रभाव से सर्वथा निष्पक्ष न्यायाधिशों द्वारा विचार करने और अपराधियों को कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिए। ओम्बडमेन जैसी स्वायत्त संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए;

d. मन्त्रियों एवं सरकार प्रशासकों के लिए निश्चित आचार–संहिता का निर्माण और उसका पूरी कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए;

e. सरकारी कर्मचारियों को उनके काम के अनुसार पूरा वेतन देने और उनकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर करने की व्यवस्था होनी चाहिए;

f. सतर्कता आयोग (Vigilance Commission) का गठन किया जाना चाहिए।

8. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरोः प्रशासनिक भ्रष्टाचार पहली बार द्वितीय विश्व युद्ध काल (1939–45) में जनसाधारण की चिंता का कारण बना। इसकी विशिष्टता थी वस्तुओं का अभाव और कमी, जिसके परिणामस्वरूप सरकारी नियमन एवं नियन्त्रण लागू हुआ। गृह मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने नवम्बर 1946 में ही स्पष्ट रूप से स्वीकार किया की नियन्त्रण, रिश्वत और भ्रष्टाचार साथ–साथ चलते हैं। केन्द्रीय विधानसभा में दिल्ली पुलिस संस्थापन विधेयक (The Delhi Police Establishment Bill) का मार्गदर्शन करते हुए उन्होंने कहाः "जब तक अनेक नियन्त्रण और लाइसेंस हैं, जो हमारे जीवन की सार्वजनिक तथा निजी जीवन की समस्त शाखाओं पर नियन्त्रण करते हैं, तब तक आप रिश्वत और भ्रष्टाचार को रोक नहीं सकते। दिल्ली स्पेशल संस्थान कानून, 1946 (The Delhi Special Police Establishment Act, 1946) के अन्तर्गत एक प्रशासनिक तन्त्र का गठन, लोक सेवकों द्वारा किए गए भ्रष्टाचार के मामलों की जांच के लिए किया गया।

स्पेशल पुलिस संगठन 1963 तक रहा। उस वर्ष इस संगठन के स्थान पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (Central Bureau of Investigation-C.B.I.) की स्थापना हुई, जो आज भारत में भ्रष्टाचार विरोधी सर्वाधिक प्रबल संगठन है। इसकी स्थापना की संस्तुति सन्थानम समिति ने की थी।

1963 में स्थापित सी. बी. आई. कोई कानूनी संगठन नहीं है, जिसे दिल्ली स्पेशल पुलिस संस्थापक कानून, 1964 के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त हों। सी. बी. आई. तो अपराध और भ्रष्टाचार के मामलों के लिए मुख्य पुलिस एजेन्सी है। इसका प्रमुख अधिकारी एक निदेशक होता है, जिसकी सहायता के लिए अनेक अपर निदेशक, संयुक्त निदेशक, पुलिस अधीक्षक, उप–अधिक्षक तथा अन्य पुलिस अधिकारी होते हैं। वर्तमान में सी. बी. आई. आपराधिक मामलों की इन तीन श्रेणियों की जांच करती हैंः

i. भ्रष्टाचार का आरोप।
ii. आर्थिक अपराध, जिनमें धोखाधड़ी भी शामिल है।
iii. आतंकवाद, बम विस्फोट जैसे विशेष अपराध।

विगत कुछ समय से सी. बी. आई. पर कार्यभार बढ़ रहा है। इसलिए सी. बी. आई. को दो भागों में विभाजित करने की आवश्यकता हैः एक भ्रष्टाचार में मामले देखे और दूसरा संगठित अपराधों के मामले देखे। प्रमुख अन्वेषणकर्ता होने के कारण सी. बी. आई. को स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए और इसमें योग्य तथा ईमानदार अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिए।

9. केन्द्रीय सतर्कता आयोगः केन्द्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission) की स्थापना 1964 में, भारत सरकार में भ्रष्टाचार की रोकथाम और ईमानदारी को प्रोत्साहन देने के लिए की गई। इसकी संस्तुति भ्रष्टाचार रोकने के उद्देश्य

से गठित सन्थानम समिति (1946) ने की थी। केन्द्रीय सतर्कता आयोग के पास भ्रष्टाचार के मामलों की जांच के लिए अपना निजी कोई संगठन नहीं है; उसे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी. बी. आई.) पर निर्भर रहना जरूरी होता है। भ्रष्टाचार में लिप्त लोक सेवकों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई के मामलों में यह आयोग परामर्श देता है। यह परामर्श देने वाला संस्थान है, किन्तु इसे अपना कार्य में संघ लोक सेवा आयोग के समान ही स्वतन्त्रता एवं स्वायत्तता प्राप्त है। आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करता है जिसमें वह उन मामलों का उल्लेख करता है जिनमें सरकार ने उसकी सलाह नहीं मानी हो। केन्द्रीय सतर्कता आयोग का जन्म न तो संविधान पर आधारित है और न कानून पर। इसका जन्म तो कार्यपालिका के एक प्रस्ताव (Resolution) पर है जो इसकी कमजोरी का द्योतक है।

सरकार में भ्रष्टाचार विरोधी अभियान दो स्तरों पर संगठित होता है, जबकि केन्द्रीय सतर्कता आयोग भ्रष्टाचार के मामलों का पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण करता है प्रत्येक लोक संगठन में ईमानदारी बनाये रखने की मुख्य जिम्मेदारी स्वयं उस एजेन्सी पर ही होती है और इसके लिए उसमें एक अधिकारी होता है जो मुख्य सतर्कता अधिकारी (Chief Vigilance Officer) कहलाता है। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सतर्कता आयोग की संस्तुति पर की जाती है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग का प्रमुख अधिकारी केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त होता है जिसकी सहायता के लिए अन्य कर्मचारी होते हैं। इस आयोग का कार्य–क्षेत्र केवल राजपत्रित सरकारी अधिकारियों की गतिविधियों तक सीमित रहता है। जैसा की कहा चा चुका है, केन्द्रीय सतर्कता आयोग के पास अपनी निजी जांच एजेन्सी नहीं होती और उसे जांच के लिए केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो पर निर्भर रहना पड़ता है। यह इसकी दूसरी कमजोरी है। यह भी देखा गया है कि सरकार केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त को सेवानिवृत्ति के पश्चात् अन्य सरकारी पदों पर नियुक्त कर देती है।

आजकल ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनियों के कुप्रबन्ध तथा आयात एवं निर्यात निगम सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण मामलों की भी छानबीन विशेष पुलिस संगठन द्वारा की जाती है। विशेष पुलिस संगठन की इस शाखा को, जो इन अपराधों से सम्बन्धित है, विस्तृत और शक्तिशाली बनाना चाहिए जिससे विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) सम्बन्धी नियमों एवं तस्करी, कस्टम करों की चोरी, कम या अधिक मूल्य के बीजक बनाना आदि मामलों को निपटाने तथा निर्णीत करने में समय एवं श्रम की बचत हो।

10. लोकपालः जनता पार्टी की सरकार ने 1977 में सत्ता में आने के तुरन्त बाद देश के सार्वजनिक जीवन से भ्रष्टाचार मिटाने के लिए लोकपाल नामक एक संस्था की स्थापना का वचन दिया था। स्मरणीय है कि 1966 में प्रशासकीय सुधार आयोग ने प्रथम बार भारत में 'ओम्बुड्मैन' जैसी संस्था की स्थापना का सुझाव दिया था। तत्कालीन शासन इस प्रकार की संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में काफी समय तक उदासीन रहा लेकिन 1971

में उसने लोकसभा में 'लोकपाल विधेयक' प्रस्तुत किया, किन्तु लोकपाल के विघटन के साथ ही यह विधेयक स्वतः ही समाप्त हो गया। इस विधेयक में प्रधानमन्त्री के विरूद्ध आरोपों की जांच के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं थी।

जनता सरकार ने जुलाई 1977 में लोकसभा में यह विधेयक प्रस्तुत किया। इस विधेयक की दो प्रमुख विशेष्ताएं थी–प्रथम, प्रधानमन्त्री भी लोकपाल के क्षेत्राधिकार के बाहर नहीं है अर्थात् प्रधानमन्त्री के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोप की जांच करने का अधिकार लोकपाल को प्रदान किया गया था। यह व्यवस्था सर्वथा उचित है। आपातकाल के दौरान जो अनुचित कार्य हुए थे, उन्हें देखकर यह नितांत आवश्यक था कि स्वच्छ प्रशासन की दृष्टि से प्रधानमन्त्री के मामले में भी लोकपाल को जांच का अधिकार दिया जाए। द्वितीय, जांच करने के लिए लोकपाल की अपनी स्वयं की प्रशासनिक व्यवस्था होगी। इसका यह अर्थ है कि लोकपाल को अपने कार्यों के लिए नियमित शासन–तन्त्र पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। केन्द्रीय सतर्कता आयोग की यह एक गम्भीर कमी है।

दुर्भाग्य का विषय है कि भारत में लोकपाल की दृष्टि दीर्घकाल से टलती जा रही है, यद्यपि इस दिशा में ठोस कदम उठाने का दिखावा अवश्य किया जाता रहेगा। देश के लोक प्रशासन में तेजी से फैलते हुए भ्रष्टाचार के प्रति सरकार की बढ़ती हुई उदासीनता के कारण ओम्बुड्मैन के प्रकार की किसी संस्था की स्थापना के लिए 1966 से ही हवा बह निकली थी। प्रशासनिक सुधार आयोग ने, जो 1966 में मोराजी देसाई की और बाद में के. हनुमन्थैया की अध्यक्षता में गठित किया गया था, शिकायतों के समाधान की आवश्यकता का सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की थी। इस आयोग ने अपने प्रथम प्रतिवेदन में ही लोकपाल एवं लोकायुक्त के द्विस्तरीय तन्त्र की स्थापना की संस्तुति की थीः केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के मन्त्रियों एवं सचिवों के विरूद्ध शिकायतों पर कार्रवाई करने के लिए लोकपाल और अन्य अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों पर कार्रवाई करने के लिए एक लोकायुक्त प्रत्येक राज्य में।

लोकपाल की नियुक्ति भारत में राष्ट्रपति के द्वारा, प्रधानमन्त्री के परामर्श पर की जानी थी और प्रधानमन्त्री वह परामर्श भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा विपक्ष के नेता के साथ विचार–विमर्श करके देता। लोकपाल का पद भारत के मुख्य न्यायाधीश के समान होता। अवकाश ग्रहण करने के बाद लोकपाल सरकार के अधीन कोई पद ग्रहण नहीं कर सकता था, ताकि उसकी स्वाधीनता एवं निष्पक्षता अक्षुण्ण बनी रहे। लोकपाल अपने कार्य में पहल कर सकता था। पीड़ित व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य के द्वारा भी शिकायत मिलने पर लोकपाल स्वयं ही प्रशासनिक कार्यों की जांच कर सकता था। उल्लेखनीय है कि उस समय तक जनहित याचिका के सिद्धान्त को न्यायापालिका की स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई थी।

लोकपाल विधेयक

सरकार ने कुछ ढुलमुलपन के बाद इन सिफारिशों को मान लिया और लोकसभा में लोकपाल विधेयक भी पेश कर दिया। संसद भंग कर दिए जाने के साथ ही यह विधेयक समाप्त हो गया। प्रधानमन्त्री का पद इस विधेयक के क्षेत्र से बाहर रखा गया था। विडम्बना यह है कि किसी भी सरकार ने लोकपाल सम्बन्धी प्रस्ताव का सार्वजनिक रूप से विरोध नहीं किया है, और फिर भी इसे आवश्यक कानून बनाने के लिए सक्रियता नहीं दिखयी है।

प्रथम जनता सरकार (1977–79) ने जुलाई 1977 में लोकसभा बिल में भारत के प्रधानमन्त्री को भी लोकपाल की जांच की परिधि में लाने का प्रस्ताव किया था। आन्तरिक आपात काल (1975–77) के दौरान जो गलत काम किये गये थे उनके कारण यह नितान्त आवश्यक था कि स्वच्छ सार्वजनिक जीवन के हेतु प्रधानमन्त्री को लोकपाल की जांच से बाहर नहीं रखा जाए। विधेयक की दूसरी विशिष्टता यह थी कि इसमें लोकपाल के लिए अपना निजी स्वतन्त्र प्रशासनिक तन्त्र का प्रावधान था कि जिसके द्वारा वह स्वयं अन्वेषण कार्य कर सकता था। इसका तात्पर्य यह हुआ कि लोकपाल को अपना कार्य सम्पन्न करने में सरकारी तन्त्र पर निर्भर रहने से मुक्ति मिल जानी थी। किन्तु जनता सरकार के गिरते ही यह विधेयक भी समाप्त हो गया।

लोकपाल के लिए की गई प्रथम संतुष्टि को तीन दशक से अधिक समय व्यतीत हो चुका है और फिर भी, काफी ढोल पीटने के बावजूद लोकपाल का प्रादुर्भाव नहीं हो पाया है। लोकपाल विधेयक का काफी उतार–चढाव वाला लम्बा इतिहास है। प्रशासनिक सुधार आयोग की संतुष्टि पर वह सर्वप्रथम 1968 में प्रस्तुत किया गया था। उसके बाद 1971, 1977, 1985, 1989 और 1995 में इसे पुनर्जीवित किया गया। लोकपाल की नियुक्ति के लिए आवश्यक कानून बनाने का वर्तमान प्रयास सातवाँ है।

देश के लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार के स्तर और व्यापक क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए, लोकपाल की नियुक्ति यथासम्भव शीघ्रताशिघ्र की जानी चाहिए। यह अधिकारी प्रमाणित रूप से स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष होना चाहिए। उसकी नियुक्ति प्रधानमन्त्री की संतुष्टि पर की जानी चाहिए और प्रधामन्त्री को अपनी संतुष्टि भारत के मुख्य न्यायाधीश एवं विपक्ष के नेता से विचार–विमर्श करके देना चाहिए। लोकपाल को भ्रष्टाचार, अन्याय अथवा पक्षपात के कार्यों में कार्यपालिका से स्वतन्त्र होना चाहिए और उसके अधीनस्थ अन्वेषण तन्त्र भी निर्भीक एवं निष्पक्ष रहकर कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होना आवश्यक है। इसी प्रकार राज्य स्तर पर लोकायुक्तों को सजीव होना चाहिए। अभी तक ग्यारह राज्यों ने लोकायुक्तों की नियुक्ति की है, परन्तु उनके अधिकार तथा प्रभाव भिन्न–भिन्न हैं। इस विषय पर कर्नाटक का कानून आदर्श प्रतीत होता है।

सुधार के प्रस्तावों की स्वीकृति तब और अधिक सरल हो जाती है जब सत्तासीन दल उन्हें अपनी पार्टी के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक समझता है। राजनीतिज्ञ के लिए अब तक

कोई आचार संहिता नहीं बनायी गयी है। भारत में अभी तक भ्रष्ट राजनीतिज्ञ पर अभियोग लगाने के लिए नियमित तन्त्र नहीं है। इसका प्रावधान शीघ्रताशीघ्र होना चाहिए। किन्तु यह स्पष्ट कर दिया जाना आवश्यक है कि सम्भवतः उच्च स्तरीय ईमानदारी, निपुणता और लगन वाली सरकार ने लोकपाल को उपयोगी भूमिका का निर्वाह करना है। प्रशासनिक गलतियों का क्षेत्र जितना छोटा होगा उतनी ही अधिक उपयोगिता लोकपाल की होगी। जहाँ भ्रष्टाचार का विस्तार विस्तीर्ण हो और निपुणता अल्प हो, वहाँ तो सम्पूर्ण प्रशासन में सुधार आवश्यक है और लोकपाल इसके पर्याप्त समक्ष नहीं है। लोकपाल प्रशासनिक सुधारों का विकल्प नहीं है।

11.राज्यों में सतर्कता तन्त्रः राज्य स्तर पर सतर्कता व्यवस्था का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रत्येक राज्य में एक राज्य सतर्कता आयोग है जो 1964 से कार्यरत है। इस सम्बन्ध से उनकी कार्य–पद्धति और उनके संगठन एवं कार्यों सम्बन्धी समानता से यह स्पष्ट है कि उन्होंने केन्द्रीय शासन से मूलतः प्रेरणा एवं नेतृत्व प्राप्त किया है। केन्द्र की भांति ही प्रत्येक राज्य में विशेष पुलिस संगठन है। वास्तव में, देश में सच्चरित्रता सम्बन्धी संस्था द्वारा खोज की व्यवस्था का प्रेरणास्त्रोत केन्द्र है और केन्द्रीय शासन ही इस विचार का समर्थन एवं नेतृत्व कर रहा है।

राज्य सतर्कता आयोगों का क्षेत्राधिकार राज्यों की कार्यपालिका शक्तियों सम्बन्धी मामलों से सम्बन्धित है। लेकिन इसके द्वारा राजनीतिक भ्रष्टाचार की जांच नहीं की जा सकती, केन्द्रीय सतर्कता आयोग को भी यह शक्ति प्राप्त नहीं है। जहां तक विभिन्न राज्यों के सतर्कता आयोगों की शक्तियों का सम्बन्ध है, उनमें थोड़ा–सा ही अन्तर है। सामान्यतः आयोग को निम्न अधिकार प्राप्त हैं:

i. ऐसे सभी मामलों की छानबीन करना जिसमें किसी लोक सेवक द्वारा अनुचित उद्देश्यों या भ्रष्ट तरीकों से कार्य करने सम्बन्धी सन्देह या आरोप हैं।

ii. निम्नलिखित मामलों में छानबीन की जा सकती है:

   a. ऐसी शिकायत पर जहां किसी लोक सेवक द्वारा अनुचित भ्रष्ट उद्देश्यों के लिए अपनी सत्ता का प्रयोग किया गया हो, या आवश्यकतानुसार प्रयोग न किया गया हो;

   b. किसी लोक सेवक (जिसमें अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी भी शामिल हैं जो राज्य सरकारों के अधीन सेवारत हैं) के विरूद्ध भ्रष्टाचार, दुराचरणं, सच्चरित्रता–अभाव सम्बन्धी या अन्य प्रकार के दोषारोपण या अन्य कोई गम्भीर अपराध सम्बन्धी शिकायत;

   c. ऐसी सभी शिकायतों, सूचनाओं, मामलों को जिन्हें वह उचित समझे, आगामी कार्रवाई के लिए सीधे अपने नियन्त्रण में ले सकता है जिनका सम्बन्ध या तो–

(अ) राज्य विशेष के पुलिस संगठन के मामलों को पंजीकृत करके उसकी जांच करने से हो; या

(ब) किसी शिकायत, मामले की सूचना छानबीन हेतु राज्य विशेष के पुलिस संगठन या सम्बन्धित विभाग को देने से सम्बन्धित हो।

i. प्रशासनिक में सच्चरित्रता बनाये रखने के लिए प्रशासनिक पद्धतियों एवं कार्यप्रणाली का पुनरीक्षण।
ii. सांख्यिकी एवं अन्य सूचनाएं एकत्र करना जिससे सम्पूर्ण प्रशासन पर सामान्य नियन्त्रण एवं निरीक्षण रखा जा सके।

आयोग की अध्यक्षता राज्य सतर्कता आयुक्त करता है। वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्तर पर होता है। उसका कार्यकाल 5 वर्ष है। इसके पश्चात् वह राज्य व केन्द्र के अधीन किसी पद को धारण करने का अधिकारी नहीं रहता। आयुक्त के अतिरिक्त विभागीय आयुक्त भी होते हैं जिनका कार्य विभागीय भ्रष्टाचार एवं समान प्रकार के अपराधों की छानबीन करना है।

आयोग राज्य शासन को अपने कार्य सम्बन्धी वार्षिक प्रतिवेदन देता है जो राज्य विधानमण्डल में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रतिवेदन द्वारा आयोग विशेष रूप से राज्य शासन का ध्यान उसके द्वारा दी गई किसी सिफारिश को न मानने या क्रियान्वित न करने की ओर आकृष्ट करता है।

सच्चरित्रता सम्बन्धी खोज के सन्दर्भ में जिला–स्तर तक शासन द्वारा जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनके सम्बन्ध में दो शब्द कहना आवश्यक है। सम्भागीय स्तर पर एक सम्भागीय सतर्कता आयुक्त की नियुक्ति की गयी है जो सम्भाग आयुक्त, पुलिस उपमहानिरीक्षक एवं सम्भागीय निरीक्षक अधिकारी के स्तर का होता है। जिला स्तर पर प्रत्येक जिले में एक जिला सतर्कता अधिकारी होता है जिसे जिलाधीश या डिप्टी कमिश्नर द्वारा नियुक्त किया जाता है। यह अधिकारी सम्भागीय सतर्कता आयोग के परामर्श से जिलाधीश के राजपत्रित अधीनस्थों में से नियुक्त किया जाता है।

3.3.4 निष्कर्षः–

इस प्रकार देश में सतर्कता का एक जाल–सा बिछा हुआ है। सच्चरित्रता की समस्या पर विचार हेतु प्रति वर्ष मुख्य सतर्कता आयुक्त की अध्यक्षता में सभी राज्यों के सतर्कता आयुक्तों का एक वार्षिक सम्मेलन होता है। यह वार्षिक सम्मेलन अत्यन्त लाभदायक है, क्योंकि यह पारस्परिक समस्याओं एवं अनुभवों के आदान–प्रदान के लिए अवसर प्रदान

करता है। इससे केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर शासन के भ्रष्टाचार निवारक कार्यों के प्रचार एवं प्रसार का अवसर प्राप्त होता है। इसके फलस्वरूप शासन के उद्देश्यों की ईमानदारी के प्रति जनता में विश्वास का संचार होता है।

खेद है, सतर्कता संगठन खोखले से है। भ्रष्टाचार बढ़ता ही जा रहा है। यह इतना व्यापक हो गया है कि यह कहना अधिक गलत नहीं होगा कि आज भ्रष्टाचारियों का ही जमाना है; यही फल–फूल रहे हैं। बोफोर्स, प्रतिभूति, चीनी जैसे महाघोटालों का अन्तहीन क्रम देश के लिए लज्जा के विषय हैं। लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार तब तक समाप्त नहीं होगा जब तक राजनीतिज्ञ, मन्त्री व नेता राष्ट्रपिता तथा लोकनायक के विचारों की अवहेलना करते रहेंगे।

कुछ बड़े घोटालों की सूची नीचे दी गयी है–

प्रमुख उच्च स्तरीय घोटाले

	वर्ष	विवरण
1.	1949	216 करोड़ रूपयों का जीप घोटाला, जिसमें कृष्ण मेनन शामिल थे, जो उस समय ब्रिटेन में भारत के राजदूत थे।
2.	1956	सिराजुद्दीन वाला मामला जिसमें नेहरू सरकार में खदान तथा ईधन मन्त्री केशदेव मालवीय मुख्य रूप से आरोपित थे।
3.	1958	फीरोज गांधी ने **भारतीय जीवन बीमा निगम** के घोटाले का पर्दाफाश किया। इसमें निगम को फर्जी शेयर बेचने का मामला था। नेहरू सरकार के मन्त्री टी. टी. कृष्णमाचारी को त्यागपत्र देना पड़ा था।
4.	1964	पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रतापसिंह कैरों के विरूद्ध एस. आर. दास जांच आयोग नियुक्त किया गया। कैरों को अपने पद पर रहते हुए अपने परिवार के लिए विशाल सम्पत्ति अर्जित करने के आरोप पर, पदत्याग करना पड़ा।
5.	1971	रूस्तम सोहराब **नागरवाला काण्ड**। भारतीय स्टेट बैंक से 60 लाख रूपयों की धोखाधड़ी की। भारतीय स्टेट बैंक के प्रधान रोकड़िये को प्रधानमन्त्री कार्यालय से टेलीफोन पर आदेश दिया गया कि बैंक से 60 लाख रूपये निकाल कर दे दे। नागरवाला उस रकम से भरा बक्स लेकर फरार हो गया। बाद में उसे 4 वर्ष की कठोर कैद की सजा दी गयी।
6.	1981	एच. डी. डब्लयू. **पनडुब्बी सौदा**। कुछ बिचौलियों को 100 करोड़ रूपये की रिश्वत दी गयी।
7.	1982	अब्दुल रहमान अन्तुले पर आरोप लगा कि उन्होंने सीमेण्ट तथा औद्योगिक

एल्कोहल के लाइसेंस देने के लिए रकमें वसूल की और इस प्रकार अपने द्वारा स्थापित ट्रस्ट के लिए करोड़ों रूपये ऐंठ लिए। न्यायालय का उनके विरूद्ध निर्णय होने पर उन्होंने पद त्याग दिया।

8. 1983 चुरहट **लॉटरी घोटाला**। इसमें कांग्रेसी मन्त्री अर्जुन सिंह कथित रूप से आरोपित थे।

9. 1987 **फेयर फैक्स काण्ड,** जिसमें पूर्व वित्तमन्त्री विश्वनाथ प्रतापसिंह द्वारा विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम का उल्लंघन किये जाने की जांच के आदेश दिये गये। उन्हें झूठा फँसाया गया था।

10. 1988 **बोफोर्स तोप** सौदा। इस तोप का 16,000 करोड़ रूपये का ठेका पाने के लिए राजीव गाँधी की सरकार को रिश्वत दिए जाने का आरोप था।

11. 1991 पुराने वेस्टलैण्ड **हेलिकोप्टरों** की खरीद।

12. 1992 5,000 करोड़ रू. के **प्रतिभूति** घोटाले का भण्डा फूटा। इसका सरगना हर्षद मेहता आरोपित हुआ। अनेक उच्च पदस्थ राजनीतिज्ञ और लोक सेवक इस सौदे में शामिल थे।

13. 1993 **कम्प्यूटर** सौदे में आरोपित कर्नाटक के मुख्यमन्त्री एस. बी. बंगारप्पा को त्यागपत्र देने पर विवश किया गया।

14. 1994 **शक्कर घोटाले**—कल्पनाथ राय को ज्ञान प्रकाश समिति की रिपोर्ट के आधार पर इस्तीफा देने को मजबूर किया गया। समिति का आरोप था कि शक्कर की कीमतों में बेहताशा बढ़ोत्तरी का मुख्य कारण समय पर आयात नहीं किया जाना था।

15. 1994 **दूरसंचार घोटाला**—सुखराम पर विपक्ष के सांसदों ने आरोप लगाया कि दूरसंचार के लिए आमन्त्रित निविदाओं में पक्षपात किया गया। सी. बी. आई. ने 1996 में छापे मारे। भारी सम्पत्ति मिली।

16. 1995 बिहार का 950 करोड़ का **चारा घोटाला**—महालेखाकार की रिपोर्ट के अनुसार बजट अनुदान की धनराशि और पशुपालन विभाग में विद्यमान राशि में भारी अन्तर पाया गया। शीर्षस्थ अधिकारी निलम्बित किये गये। मुख्यमन्त्री लालू प्रसाद समेत 56 अभियुक्तों के विरूद्ध मुकदमे दायर किये गये।

17. 1995 **हवाला काण्ड**— अनेक राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाहों पर हवाला एजेण्ट एस. के. जैन और जे. के. जैन के माध्यम से धन प्राप्त करने का अभियोग।

18. 1995 **आवास घोटाला**— तत्कालीन मन्त्री शीला कौल और पी. के. थुंगन द्वारा आवासों का अनियमित आबंटन। शीला कौल ने उच्चतम न्यायालय के आदेश पर त्यागपत्र नहीं दिया, राष्ट्रपति के आदेश पर दिया। (17.4 करोड़ रू.)

19. 1995 **झारखण्ड मुक्ति मोर्चा रिश्वत काण्ड**—झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के चार सांसदों—सूरज

मण्डलों, शैलेन्द्र महतो, शुबु सोरेन और साइमन मराण्डी–ने, जैसा कि आरोप है, नरसिंह राव सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव के विरोध में मतदाने करने के लिए भारी धनराशियां प्राप्त की थी। (3 करोड़ रू०)

20. 1996 **यूरिया घोटाला**–यूरिया के आयात के लिए अपरिचित तुर्की फर्म कोरसन लिमिटेड को 133 करोड़ रू० अग्रिम दे दिये गये, जबकि यूरिया आया ही नहीं। इस फर्जी सौदे से प्रकट है कि वरिष्ठ राजनीतिज्ञ और अधिकारी किस प्रकार जन सम्पत्ति का अपव्यय करते हैं।

21. 1996 **मुम्बई पोर्ट ट्रस्ट घोटाला**–पोर्ट ट्रस्ट के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष ने, जैसा कि आरोप है, सरकार के आदेशों एवं निदेशों का उल्लंघन करके ट्रस्ट की वकील किरण चौधरी को प्रमुख व्यावसायिक भूमि का आबंटन कौड़ियों के दाम पर कर दिया, जिससे ट्रस्ट को भारी हानि हुई।

22. 2001 **तहलका घोटाला**–जिसमें नेताओं और सरकारी अधिकारियों को रिश्वत लेते हुए फिल्माया गया। (मार्च)

23. 2003 **कारगिल ताबूत घोटाला।**

3.3.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. प्रशासनिक भ्रष्टाचार
2. लोकपाल विधेयक
3. केन्द्रीय सतर्कता उपयोग

3.3.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासनिक भ्रष्टाचार से क्या अभिप्राय हैं?
2. लोकपाल का क्या अर्थ है।
3. भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार के दो कारण बताओ।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार की स्थिति स्पष्ट करें तथा विस्तृत आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।
2. भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार के विभिन्न कारणों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिए वर्तमान में कौन सी विधिक संरचना है, इसकी विस्तार से चर्चा कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. वुडरो विल्सन, दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्टेसन, पोलिटिकल सांइस क्वार्टरली, नं० 2, जून, 1887
2. एल. डी. व्हाईट, इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1926
3. फ्रेंक जे. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1900
4. लूथर गुलिक एवं लैंडल उर्विक, पेपरस ऑन दी सांइस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. अवस्थी एवं महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1983
6. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2002
7. एच. ई. मेकर्डी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए बिबलियोग्राफिक गाइड टू दी लिटरेचर, डेक्कर, 1986
8. जी.ए. ग्रहाम, ट्रेण्ड इन टिचींग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 10, 1950
9. अच. जी. फ्रैडरिक्सन, दी डाइमेन्सन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, 1979
10. आर. सी. चॉदलर एण्ड जे. सी. पलानो, दी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डिक्सनरी, न्यूयार्क, 1982
11. राबर्ट गोलम्ब्यूहकी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डवलपिंग डिसिपलिन, न्यूयार्क, 1977
12. एस. आर. महेश्वरी, प्रशासनिक सिद्धान्त, मेकमिलन, 2003
13. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
14. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
15. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
16. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
17. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
18. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
19. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
20. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
21. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
22. डवाइट वाल्डो (सम्पादित) आइडियाज एण्ड इसूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1953
23. लक्ष्मीनारायण, पब्लिक इन्टरप्राईज मनेजमेंट एण्ड प्राइवेटाइजेशन, 2003

24. पॉल एपलबी, बिग डेमोक्रेसी, न्यूयार्क, 1945
25. जी. टल्लोक, दि पोलिटिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी, वाशिंगटन, पब्लिक अफेयर प्रैस, 1965
26. जे. हारबटमैस, दि स्ट्रकचरल ट्रांसफोरमेसन्स ऑफ दि पब्लिक सफियर, लन्दन, पोलिसी प्रैस, 1989
27. एन. जे. साथर, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन इन दि अमेरिका, न्यूयार्क सैन्टमारटिन्स, 1975
28. आर.एस. लोच, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन्ट पाल, मिनोसोटा, वैस्ट पब्लिसिं, 1978
29. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
30. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
31. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
32. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
33. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
34. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

3.4

प्रशासनिक सुधार

(Administrative Reforms)

3.4.1 परिचयः–

आज का राज्य प्रशासनिक राज्य है। आज प्रशासन मानव जीवन के हरेक पहलू से सम्बन्ध रखता है। नागरिक प्रशासन को एक ऐसे नैतिक एजेंट के रूप में देखता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए है एवं उसकी आकांशाओं और लक्ष्यों तक पहुंचने में उसकी सहायता करता है। किन्तु लोगों की आवश्यताएं तो निरन्तर बदलती रहती है और प्रशासन अचल बना हुआ नहीं रह सकता है। इसे आवश्यक रूप से परिवेश के अनुसार बदलना ही है। प्रशासन में या तो स्वतः परिवर्तन हो सकता है या फिर कृत्रिम रूप से परिवर्तन लाया जा सकता है। कृत्रिम रूप से लाए गए परिवर्तनों को प्रायः प्रशासनिक सुधार कहते हैं।

3.4.2 उदेश्यः–

1. भारत में प्रशासनिक सुधार के लिए किए गए प्रयासों का अध्ययन करना।
2. प्रशासनिक सुधार के प्रकारों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
3. यह जानना की विकासशील राष्ट्रों में प्रशासनिक सुधार अत्यन्त आवश्यक क्यों है।
4. प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया को जानना।
5. प्रशासनिक सुधार के नाते O और M माडल तथा सूचना प्रौद्योगिकी जानकारी प्राप्त करना।
6. भारत में प्रशासनिक सुधार की प्रकृति व इतिहास विकास की जानकारी प्राप्त करना।

3.4.3 प्रशासनिक सुधार :–

परिभाषाएँ (Definitions)

हैराल्ड ई. कैडेन–प्रशासनिक सुधार प्रतिरोध के विरूद्ध प्रशासनिक परिवर्तन का कृत्रिम अभिप्रेरण है।

आर्नी एफ. लीमन्स–प्रशासनिक सुधार यथार्थता और वांछनीयता के बीच के अन्तर को पाटने के प्रयास में सरकारी तन्त्र में किया गया अभिप्रेरित परिवर्तन है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम प्रशासनिक सुधार के निम्नलिखित अन्तर–सम्बद्ध गुणों की पहचान कर सकते हैं।

1. **नैतिक प्रयोजनः** प्रशासनिक सुधार का इस अर्थ में एक नैतिक प्रयोजन है कि इसका लक्ष्य अधिक पूर्णता और परिशुद्धता प्राप्त करने के लिए प्रशासनिक संस्थाओं की हैसियत में वृद्धि करता है।
2. **सातव्यः** हम प्रशासन में दो मूल प्रकार के परिवर्तनों की पहचान कर सकते हैं। नियत परिवर्तन एवं प्रासंगिक परिवर्तन। नियत परिवर्तन का अभिप्राय संवृद्धि परिवर्तन है। संगठन में प्रासंगिक परिवर्तन नहीं होता हैं उनके क्षेत्र बहुत व्यापक एवं विविध होते हैं और उनके लिए शासन में काफी उलटफेर की जाती है। प्रशासनिक सुधार का यही प्रासंगिक चरित्र होता है क्योंकि यह एक सतत् क्रिया है।
3. **प्रशानिक सुधार कृत्रिम होता हैः** प्रशासनिक सुधार स्वतः परिवर्तन नहीं होता है। यह एक ऐसा परिवर्तन है जो प्रशासन की प्रभावनीयता बढ़ाने के लिए बाह्य स्त्रोत से जान–बूझकर अभिप्रेरित कराया गया हो। जैसा कि कैडेन कहते हैं, यह परिवर्ती दशाओं के प्रति स्व–संमजनकारी संगठनात्मक अनुक्रिया नहीं है, बल्कि कृत्रिम रूप से अभिप्रेरित परिवर्तन है जो स्वाभाविक प्रक्रिया के दोषपूर्ण कार्य–संचालन को ठीक करने के लिए आवश्यक हैं।
4. **परिवर्तन का प्रतिरोधः** परिवर्तन का प्रतिरोध एक सार्वत्रिक तथ्य है भले ही मानव शरीर हो अथवा लोक प्रशासन व्यवस्था। जब कभी कोई भी सुधर किया जाता है तब इसके विरूद्ध प्रतिरोध होता ही है। प्रशासनिक सुधार तो लगभग हमेशा ही प्रतिरोध का सामना करता है।

प्रशासनिक सुधार आवश्यक क्यों? (Why Administrative Reform)

कैडेन के अनुसार निम्नलिखित कारणों से प्रशासनिक सुधार आवश्यक है।

1. मनुष्य चाहे जितनी भी उन्नति कर ले, कोई भी मानव संस्था पूर्ण नहीं हेती है। वस्तुतः मानव संस्थाओं में बहुत सारे दोष होते हैं। ऐसे कई इतने भारी दोष होते हैं कि उन्हें दूर करना अनिवार्य होता है। प्रशासनिक सुधार वस्तुतः इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि सभी प्रशासनिक तन्त्रों में चाहे उनका प्रदर्शन जितना भी अच्छा रहे, सुधार की गुंजाइश बनी रहती है।

2. प्रशासनिक सुधार के पीछे दूसरा सिद्धान्त यह है कि बड़े संगठन, विशेषकर बड़े सरकारी संगठन सात्मसंतुष्ट नही ंतो रूढ़िवादी (परिमिति) तो हो ही जाते हैं। सतत परिवर्तनशील परिवेश अभिनव प्रवर्तन का प्रयास करने के बजाय घिसी–पिटी लीक पर चलने की ही व्यवस्था को विवश करते हैं। यदि संगठन सफल हो रहा हो तो वह सिद्ध सूत्र से चिपके रहना चाहता है। सभी संगठन ऐसे प्रशासनिक तन्त्रों को पसंद करते हैं जो पर्याप्त अच्छी तरह चल रहे हों न कि ऐसे जोखिम भरे अभिनव परिवर्तनों को पसंद करते हैं जिनकी विश्वसनीयता स्थापित नहीं हो पाई है।
   इसी रूढ़िवादी प्रवृति के कारण संगठन परिवेश में हुए परिवर्तनों की ओर से आँखें फेर लेते हैं। संगठन स्पष्ट चेतावनी संकेतों की तब तक उपेक्षा करते हैं जब तक कि समस्या का निदान के परे न चली जाए। इसी रूढ़िवादी प्रवृति के कारण प्रशासनिक सुधार आवश्यक हो जाता है।
3. जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, अधिकांश सरकारी संगठनों में रूढ़िवादी प्रवृति होती है और वे अभिनव परिवर्तनों के प्रति उदासीन बने रहते हैं। यदि कोई कार्य करने का बेहतर तरीका भी खोज लिया गया हो तो भी इसे आजमाने के प्रति अनिच्छा या अरूचि रहती है। संगठन किसी अभिनव परिवर्तन को तभी अपनाते हैं जब किसी राज्य संगठन द्वारा उसे परख और आजमा लिया गया हो। जब तक संदेह की यह छाया हट न जाए तब तक संगठन पुरानी घिसी–पिटी पद्धतियों और प्रथाओं को ही जारी रखते हैं, भले इससे उन्हें नुकसान हो रहा हो। अभिनव परिवर्तन के प्रति इस प्रतिरोध के कारण ही प्रशासनिक सुधार आवश्यक हो जाता है।

उपयुक्त तीनों सिद्धान्त शायद ही कभी गलत होते हों और लोक प्रशासन के अध्ययन एवं व्यवहार में प्रशासनिक सुधारों का स्थान बन गया है। इस आवश्यकता को महसूस किए जाने के कारण प्रशासनिक सुधारों का निरंतर संस्थानीकरण हो रहा है। प्रत्येक लोक प्रशासन को अपना सुधारक स्वयं होने के लिए प्रशिक्षित और प्रोत्साहित किया जा रहा है। प्रत्येक सरकारी संगठन में अद्युनातन प्रौद्योगिकी का ज्ञान रखने, अभिनव परिवर्तन को बढ़ावा देने एवं व्यावसायिक रूप से अनुमोदित सिफारिशों को अपनाने की अपेक्षा की जाती है। संक्षेप में, प्रशासनिक सुधारों की सुकल्पना का आगमन हो चुका है।

सुधारों के प्रकार (Types of Reforms)

अपने विस्तार और गहराई के विचार से प्रशानिक सुधार भिन्न–भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। सुधारों को वर्गीकृत करने का एक तरीका उसकी विषय वस्तु पर ध्यान देना है। सामान्यतः निम्नलिखित प्रकार के प्रशासनिक सुधारों की पहचान की जा सकती है।

1. संरचनात्मक सुधार

2. **प्रक्रियात्मक सुधार**
3. **व्यवहारपरक सुधार**

1. **संरचनात्मक सुधारः** प्रत्येक प्रशासनिक संगठन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवयव संरचना है, अर्थात् एक ऐसी युक्ति जो संगठन में कार्य–विभाजन, प्रत्यायोजन एवं विकेंद्रीकरण की व्यवस्था करती है। संरचनात्मक सुधारों का आशय ऐसे सुधार प्रस्तावों से है जो संरचना की प्रभावनीयता और कुशलता बढ़ाने के उद्देश्य से परिवर्तन लाना चाहते हैं।
2. **प्रक्रियात्मक सुधारः** किसी भी संगठन में समय बीतने के साथ प्रक्रियाएं संस्थानीकृत हो जाती है जैसे वित्तीय नियम, कार्मिक नीतियाँ, नत्थीकरण पद्धतियाँ आदि। संगठन पुरानी प्रक्रियाओं से चिपके रहना चाहते हैं। प्रक्रियात्मक सुधार लालफीताशाही को दूर करने के प्रयास में प्रक्रियाओं में परिवर्तन लाना चाहते हैं। उदाहरणः भारत में स्टाफ निरीक्षण इकाई सुधार लाने पर ध्यान केंद्रीत करती है।
3. **व्यवहारपरक सुधारः** सभी बड़े संगठन एक अधिकारी तांत्रिक संरचना विकसित करना चाहते हैं। किसी भी अधिकारी तन्त्र में इसका अवैयक्तिक चरित्र और व्यक्तियों को पर्याप्त महत्त्व का अभाव रहता ही है। व्यक्तियों के अमानवीयकरण के कारण अधिकारीतन्त्र के सदस्यों में अभिप्रेरेणा का अभाव उत्पन्न होता है जो लोगों को उनके द्वारा दी जा रही संवाओं की गुणवत्ता पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। व्यवहारपरक सुधार व्यक्ति की महत्ता और गरिमा को पुनः स्थापित करना चाहते हैं ताकि एकता का वातावरण बने एवं समूहगत सद्भाव पनपे। इस प्रकार ये सुधार कर्मचारियों के अभिप्रेरणा स्तरों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

ऊपर वर्णित भिन्न–भिन्न प्रकार के सुधारों पर अलग–अनग या संयुक्त रूप से विचार किया जा सकता है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि यदि किसी को सुधारों से पूरा–पूरा लाभ उठाना हो तो सभी सुधारों पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए।

प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया (Process of Administrative Reforms)

प्रशासनिक सुधार कोई छोटी–छोटी गतिविधि नहीं है। यह एक सतत् प्रक्रिया है जो समाज में भिन्न–भिन्न प्रकार के परिवर्तनों के निरपेक्ष प्रदर्शन का न्यूनतम स्तर बनाए रखना और सुनिश्चित करना चाहती है। प्रशासनिक सुधार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे विभिन्न चरणों में विभक्त किया जा सकता है। गेराल्ड कैडेन ने प्रशासनिक सुधारों हेतु निम्न प्रक्रिया माडल बताया है। उनके अनुसार प्रशासनिक सुधारों के निम्न चार चरण होते हैं।

1. प्रशासनिक परिवर्तनों की आवश्यकता का बोध
2. लक्ष्यों और उद्देश्यों, योजनाओं और युक्तियों का निर्माण
3. सुधारों का क्रियान्वयन

4. सुधारक के उद्देश्यों के आधार पर सुधारों का मूल्यांकन

1. **प्रशासनिक परिवर्तन की आवश्यता का बोधः** प्रशासनिक सुधार प्रक्रिया का पहला चरण प्रशासनिक परिवर्तन की आवश्यकता की उचित पहचान करना एवं उसे महत्त्व देना। इस आवश्यकता का बोध प्रायः तब होता है जब सेवार्थियों की मांग बढ़ती हैं एवं उन्हें पूरी करने में प्रशासन असमर्थ हो जाता है।
   i. सेवार्थियों की मांगों को पूरा करने में असमर्थ हो जाए।
   ii. अपने समक्ष आने वाली भावी मांगों का अनुमान करने में असमर्थ हो जाए।
   iii. चालू और भावी गतिविधियों को जारी रखने के प्रभावी तरीकों से रहित हो।

   परिवर्तन की आवश्यकता का अनुमान करने में अनेक बाधाएं आती हैं। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

   i. **कुप्रशासन के प्रति सहिष्णुताः** बहुआ अधिकांशतः समाज कुप्रशासन को काफी अंश तक बर्दाशत करते हैं। शीर्ष प्रबन्ध प्रायः यथास्थिति बनाए रखने के पक्ष में होता है। अतः सुधार सम्बन्धी अधिकांश विचारों को नापसंद किया जाता है और उन्हें आरम्भ में ही कुचल दिया जाता है।
   ii. **संसाधनों का अभावः** संसाधनों के अभाव के कारण संगठन सुधारों हेतु अतिरिक्त धन व्यय करने के लिए तैयार नहीं भी हो सकते हैं।
   iii. **परिवर्तन का प्रतिरोधः** सुधार को वस्तुतः वर्तमान स्थिति से विचलन के रूप में देखा जाता है। औपचारिक संगठन व्यक्तियों को अनुगामी बनाना चाहते हैं सुधार प्रस्ताव और गैर–पारंपारिक चाहते हैं और सुधारवादियों को काफी आलोचना, सामाजिक बहिष्कार और संगठनात्मक अभित्रास का सामना करना होता है। कैडेन ने ठीक ही कहा है 'सुधार अल्प–संख्यकों का कार्य होता है।'

   उपर्युक्त कारणों से सुधार प्रस्ताव प्रायः अनिश्चितता, विघटन एवं अव्यवस्था की स्थितियों में ही स्वीकार किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, आर्थिक संकट, तीव्र शहरीकरण, दरिद्रता, बढ़ती अपराध–दर आदि ही असामान्य स्थितियों से निपटने के लिए प्रशासन में परिर्वतन ला सकते हैं।

2. **लक्ष्यों और उद्देश्यों का निर्माणः** प्रशासनिक परिवर्तन की आवश्यकता का बोध हो जाने पर समस्या का विश्लेषण आरम्भ होता है। इसके कारणों की गहराई में जाना पड़ता है और निदानात्मक कार्य हेतु ठोस सुझाव दिए जाते हैं। सुधारों के लक्ष्यों और उद्देश्य स्पष्ट रूप से बताए जाते हैं और सुधारों का क्रियान्वित करने की योजना और युक्ति बनाई जाती है।

इस चरण की सफल समाप्ति हेतु कैडेन ने निम्नलिखित सुझाव दिए–

i. व्यवहार्य प्रस्तावों का निर्माण।

ii. प्रस्तावों की व्यवहार्यता के बारे में लोगों को बताना।

iii. विरोध का अनुमान करना और उसका मुकाबला करने के लिए आधार तैयार करना।

iv. मूल प्रस्तावों के विफल हो जाने की स्थिति में वैकल्पिक प्रस्ताव बनाए रखना।

कैडेन के अनुसार सुधारों की स्वीकृति की संभावना अधिक रहेगी। यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हों:

i. यदि सुधार स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार हो, उनमें स्थानीय लोग भाग लें एवं वर्तमान संस्थाओं के जरिए उनका क्रियान्वयन हो।

ii. यदि वर्ततान संस्थाओं की खुलकर भर्त्सना न की जाए यानी सुधार पूर्व स्थिति के दोषों के बजाए सुधार के गुणों का बखान करने पर ध्यान दिया जाए।

3. क्रियान्वयनः कैडेन क्रियान्वयन के चार तरीकों का उललेख करते हैं।

i. राजनीतिक क्रांति के जरिए सुधार?

ii. संगठन की अनम्यता को दूर करने के लिए लाए गए सुधार

iii. कानूनी व्यवस्था के जरिए सुधार

iv. अभिवृत्ति में परिवर्तन के जरिए सुधार।

i. **राजनीतिक क्रांति के जरिए आरोपित सुधारः** राजनीतिक बल प्रशासन को बल स्वरूप प्रदान करते हैं एवं उस पर प्रभाव डालते हैं। जब प्रशासन में एक राजनीतिक दल के स्थान पर दूसरा राजनीतिक दल आता है तो लोक प्रशासन की संरचना और प्रक्रियाओं को प्रभावित करने वाले परिवर्तन होंगे ही। जब किसी क्रांति के कारण राजनीतिक परिवर्तन होते हैं तो उनके बाद व्यापक प्रशासनिक सुधार होने की सम्भावना रहती है।

ii. **संगठनात्मक अनम्यता को दूर करने के लिए लाए गए सुधारः** सामान्य स्थिति में अधिकारी तन्त्र को मामूली प्रशासनिक परिवर्तनों की आवश्यकता का बोध होता है। कार्य के दौरान ही तरह–तरह की बाधाओं का पता चल जाता है। संरचना और विनियमों का पता चल जाता है। संरचना और विनियमों में अत्यधिक अनम्यता को हटाने का प्रयास किया जाता है। ये परिवर्तन प्रायः अधिकारी तन्त्र द्वारा जाए जाते हैं और वे प्रायः कार्मिक फेर–बदल, शोध–संवर्धन, संरचनाओं में बदलाव एवं चिन्तन प्रोत्साहन एवं अभिनव परिवर्तन और पहल बेहतर जब सम्पर्क के रूप में रहते हैं।

iii. **कानूनी व्यवस्था के जरिए सुधारः** कानूनी व्यवस्था में परिवर्तन के कारण प्रशासनिक सुधार आवश्यक हो जाता है। कोई भी नया कानून प्रशासन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला सकता है। कानून बनाते समष और विधायी बहसों एवं चर्चाओं के दौरान प्रस्ताविक सुधारों का भरपूर प्रचार होता है। प्रायः कानून या विधायन में परिवर्तन के पूर्व अमितियों, आयोगों प्रेस आदि में काफी विचार–विमर्श और सोच–विचार किए जाते हैं।

iv. **अभिवृत्ति में परिवर्तन के जरिए सुधारः** सभी प्रशासनिक संगठन कार्य करने की आदतें विकसित करते हैं। जो विभिन्न पदों पर कार्य कर रहे लोगों में सांस्थानीकृत हो जाती है। संरचना, कानून और विनियमों में औाचारिक परिवर्तन वांछित परिणाम नहीं भी दे सकते हैं जब तक कि संगठन के सदस्य इन परिवर्तनों को स्वीकार न कर लें एवं उनकी सराहना न करें। जब तक लोगों की अभिवृत्ति नहीं बदलती तब तक कोई भी सुधार सफल नहीं हो सकता है।

4. सुधारों का मूल्यांकनः सुधारों की केवल स्वीकृति एवं क्रियान्वयन से ही इस प्रक्रिया का अन्त हो जाता है। क्रियान्वयन की प्रगति पर नजर रखी जानी चाहिए एवं समय–समय पर उसा मूल्यांकन होते रहना चाहिए। क्रियान्वयन प्रक्रियाओं के दौरान ही कई समस्याएं एवं पेशे सम्बन्धी बाधाएं खड़ी हो सकती है। संगठन के इन संकेतों का आभास होना चाहिए एवं मूल प्रस्तावों में आवश्यक संशोधन करने चाहिए। इसका यह अर्थ हुआ कि क्रियान्वयन प्रक्रिया को कई चरणों में संचालित किया जाना चाहिए। प्रत्येक चरण में प्रत्याशित परिणाम का पहले ही निर्धारण हो जाना चाहिए और क्रियान्वयन प्रक्रिया के आगे बढ़ने के साथ–साथ प्राप्त परिणाम की स्वीकृत परिणामों से तुलना की जानी चाहिए।

भारत में प्रशासनिक सुधारों की प्रकृति (Nature of Administrative Reforms)

किसी भी देश में प्रशासनिक सुधार आवश्यक है। प्रत्येक देश का अपना एक विशेष परिवेश होता है जो सुधारकों की प्रकृति और चरित्र निर्धारित करता है। प्रचीन और पारंपरिक सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश एवं दो सदी पुराने औपनिवेशिक शासन का ध्यान में रखते हुए हम भारतीय प्रशासनिक सुधारों के कुछ आधारभूत मुद्दों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं।

भारत में प्रशासनिक सुधारों ने निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया–

1. विरासत में मिले औपनिवेशिक प्रशासन को पुनर्गठित करना।
2. अनुचित दबावों से प्रशासन को बचाना।
3. प्रशासन की निष्पक्षता सुनिश्चित करना।
4. नए कार्य संस्कृति का सृजन करना।
5. कमजोर वर्ग के प्रति प्रशासन को संवेदी करना।

1. **विरासत में मिले औपनिवेशिक प्रशासन को पुनर्गठित करनाः** भारत को प्रशासन का औपनिवेशिक यन्त्र विरासत में प्राप्त हुआ जिसका निर्माण अंगेजों ने भारतीयों पर शासन करने एवं उन्हें सताने के लिए किया था। औपनिवेशिक शासकों द्वारा निर्मित प्रशासनिक क्रियाविधियों ने समाज के प्रति औपनिवेशिक अधिकारीतन्त्र की पूर्ण अभिवृत्ति को प्रतिबिम्ब किया। ये अभिवृत्तियाँ ने केवल निर्मित संस्थाओं में अपितु सिविल सेवकों के व्यवहार में भी प्रतिबिंबित होती थी जो सिविल सेवक लोगों और स्वयं के बीच एक दूरी बनाए रखने में विश्वास रखते थे। इस प्रकार प्रशासन उन्हीं लोगों से विमुख बना रहा जिनकी सेवा करने के लिए वह अभिप्रेरित था। स्वतन्त्र भारत ने संसदीय लोकतन्त्र एवं संघीय शासन प्रणाली अपनाई। इनसे एक प्रशासनिक ढाँचे की पूरी मरम्मत की आवश्यकता होती है। प्रशासको और नागरिकों के बीच स्वस्थ सम्बन्ध कायम करने के लिए नई प्रशासनिक क्रियाविधियों की पहल की जाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार भारत में प्रशासनिक सुधारों का मुख्य प्रयोजन ऐसे परिर्वतन लाता रहा है जो नागरिक एवं प्रशासन के बीच के अन्तर को कम करें। सुधारों को प्रशासन के बीच में अन्तर को कम करें। सुधारों को प्रशासन के लोकतन्त्रीकरण एवं जिसके परिणामस्वरूप नागरिक और प्रशासन के बीच अविश्वास के अन्त की ओर उन्मुख किया जाना चाहिए।
2. **अनुचित दबावों से प्रशासन को बचानाः** पिछले 50 वर्षों के दौरान भारतीय लोक प्रशासन सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों को दर्ज करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका में व्यस्त रहा है। इस भूमिका में उसने सामाजिक और राजनीतिक दबावों के रूप में अनेक बाधाओं का सामना किया है। इन दबावों ने भारतीय समाज को पुनर्गठित करने का लक्ष्य प्राप्त करने की लोक प्रशासन की क्षमता को प्रभावित किया है। अधिकांशतः ये दबाव दबाव–समूहों द्वारा डाले गए हैं जो सामाजिक लाभों के लिए एक–दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। इन दबाव समूहों के अनुचित दबावों ने समाज के जरूरतमन्द लोगों को उपयुक्त सेवाएं प्रदान करने की प्रशासन की क्षमता को प्रभावित किया है। इस प्रसंग में भारतीय प्रशासनिक सुधारों का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह सुनिश्चित करना है कि लोक प्रशासन शक्तिशाली ओर संगठित समूहों के नकारात्मक अनुचित और वर्गीय दबावों से मुक्त रहे। ज्ञातव्य है कि यदि धनवान लोगों के दबाव समूहों को लोक प्रशासन के कार्यों पर प्रभाव डालने दिया गया तो भारत में निर्धन लोगों की उपेक्षा होती रहेगी। प्रशासनिक सुधारों का मुख्य दायित्व यह सुनिश्चित करना है कि प्रशासनिक संरचनाएं दबाव समूहों के अनुचित दबावों से मुक्त रहें और वे निष्पक्ष रूप से कार्य करें।
3- **प्रशासनिक में निष्पक्षता सुनिश्चित करनाः** भारत के सामाजिक परिवेश में जाति, समुदाय, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय एवं क्षेत्र सम्बन्धी संकुचित प्रवृत्तियाँ सबल हैं। आम सामाजिक व्यवस्था में मौजूद ये संकुचित प्रवृत्तियाँ व्यवस्था में दृष्टिगोचर होती है। ये प्रवृत्तियाँ लोक प्रशासन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है और इसे पूर्व ग्रहपूर्ण बनाती है।

भारत में प्रशासनिक सुधारों का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व लोक प्रशासन को सामाजिक समूहों के साथ अपने बर्ताव में निष्पक्ष और दूरस्थ लक्ष्य हैं। फिर यह भी सच है कि भारत में आधुनिक लोक प्रशासन की जड़े तभी मजबूत होगी जब वे सारे सामाजिक मूल्य समाप्त हो जाएँ जो एक निष्पक्ष और तटस्थ लोक प्रशासन के अभ्युदय में रोड़े अटकाते हों।

4. **एक नई संस्कृति का सृजनः** एक औपनिवेशिक कार्य संस्कृति की विरासत पाने के कारण भारतीय प्रशासन एक सख्त पदसोपानिक ढाँचे के भीतर कार्य करने की प्रवृत्ति रखता है। प्रशासनिक ढाँचे में ही सामान्यवादी श्रेष्ठता की धारणा वाला सामान्यवादी–विशेषज्ञ द्विभाजन की औपनिवेशिक विरासत अन्तर्निहित है। परिवेश के परिवर्तन एवं लोगों द्वारा बढ़ती हुई माँगों को देखते हुए यह एक आवश्यक है कि प्रशासन अधिक अनौपचारिक हो जाए एवं सामान्यवादी–विशेषज्ञ द्विभाजन को तर्कसंगत बनाया जाए। यह सुनिश्चित करना प्रशासनिक सुधारों का तत्काल दायित्व है कि एक नई कार्य संस्कृति का आरम्भ है। जिनमें ईमानदारी और व्यवसायवाद के मूल्य व्याप्त हो जहाँ प्रशासन के भीतर हैसियत सम्बन्धी अन्तर कम हो। प्रशासनिक सुधारों को सामान्यवादी–विशेषज्ञ द्विभाजन को ध्यान केंद्रित करना चाहिए जहाँ दलीय कार्य को व्यर्थ हैसियत भेद से अधिक महत्त्व मिले।
5. **कमजोर वर्गो की ओर प्रशासन को संवेदी बनानाः** स्वतन्त्र भारत ने एक ऐसी नई सामाजिक–आर्थिक प्रशासनिक व्यवस्था बनाने का दायित्व ग्रहण किया है जहाँ अमीर और गरीब के बीच का अन्तर कम हो एवं एक समतावादी समाज कायम हो। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रशासन को दलित के उत्थान में प्रयास करना होगा। निस्संदेह व्यवहार में कई बाधाएं आती हैं जो लोक प्रशासन को समाज के कमजोर तबकों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने से रोकती है। भारत में प्रशासनिक सुधारों को कमजोर तबकों के उत्थान हेतु निर्मित विभिन्न कार्यक्रमों के कुशल क्रियान्वयन पर ध्यान केंद्रीत करना चाहिए। संस्थात्मक और प्रक्रियात्मक दोनों ही स्तरों पर सुधार लाने होंगे ताकि विकास कार्यक्रमों का तीव्र और प्रभावोत्पादक क्रियान्वयन सुनिश्चित हो सके। **"भारत में प्रशासनिक सुधार बहुआयामी है"** निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को निष्पक्ष बनाया जाना चाहिए तथा इसे आर्थिक दबाव समूहों एवं जाति और धर्म के आधार पर बने समूहों से मुक्त रखा जाना चाहिए।

साथ ही भारत में प्रशासनिक सुधारों को कुछ भारतीय समाज में रहे सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक नियोजन के सन्दर्भ में अप्रसांगिक हो गए हैं। भारत में प्रशासनिक सुधारों का मुख्य दायित्व लोगों की लोकतान्त्रिक भावनाओं एवं समाज के कमजोर वर्गों के प्रति सकारात्मक रूप से संवेदी होने की हमारी क्षमता से उत्पन्न होता है।

प्रशासनिक सुधार का इतिहास

(History of Administrative Reforms)

ऐसे कई कारण है जिसने राज्य सरकारों, राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकों का ध्यान प्रशासनिक सुधारों की ओर आकृष्ट किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से प्रशासनिक पद्धति को सुधारने के कई प्रयत्न किये गये। सर्वप्रथम सन् 1948 में बचत समिति (Economy Committee) की स्थापना की गयी, जिसका प्रमुख कार्य सार्वजनिक सेवाओं में अत्याधिक खर्च की समस्या को हल करना था। इस समिति के अध्यक्ष प्रसिद्ध उद्योगपति श्री कस्तूरभाई लालभाई थे और व्यवस्थापिका सभा, व्यापारी वर्ग तथा अधिकारी वर्ग के कुछ लोग इसके सदस्य थे।

गोरवाला रिपोर्ट, 1951

(Gorwala Report, 1951)

भारतीय प्रशासन का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम गम्भीर प्रयास एक भूतपुर्व भारतीय सिविल सेवा के अधिकारी श्री ए. डी. गोरवाला ने किया। उन्होंने 70 पृष्ठों वाला एक प्रतिवेदन "लोक प्रशासन पर प्रतिवेदन" सरकार के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रचलित लोक प्रशासन की व्यवस्था और नौकरशाही की मूल धारणाओं को किसी प्रकार क्षति पहुँचाये बिना उसमें व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए तथा उन्हें सक्षम बनाने के लिए मुख्यरूप से निम्नलिखित सुझाव दिये हैं:

1. नीति निर्माण एवं उसकी क्रियान्विति में स्पष्ट अन्तर हो।
2. विभागों के अध्यक्षों के कार्यों में कोई भी मन्त्रालय हस्तक्षेप न करे।
3. वित्त मन्त्रालय के अधिकारियों का अच्छी रीति से चुनाव किया जाये।
4. सचिवालय स्तर पर समन्वय का कार्य ठीक ढंग से हो।
5. प्रशासकीय मन्त्रालयों को अधिक स्वतन्त्रता दी जाये, उन पर वित्त मन्त्रालय का सूक्ष्म नियन्त्रण न हो।
6. मन्त्री–परिषद (कैबिनेट) की कार्य प्रणाली में सुधार किया जाये।
7. मन्त्री एवं सचिव के सम्बन्ध को मधुर बनाया जाये।
8. संसदीय नियन्त्रण को श्रेष्ठतर बनाने के लिए अनुमान समिति एवं लोक लेखा समिति के माध्यम को अपनाया जाए।
9. जाँच एवं निरिक्षण का कार्य वरिष्ठ अधिकारियों के द्वारा हो।
10. अधिक अधिकारी एवं कम क्लर्क रखे जांए।
11. कनिष्ठ अधिकारियों को अधिक कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपा जाए।
12. व्हिटले परिषदों की स्थापना की जाए। अल्प वेतन वाले कर्मचारियों के लिए कल्याण–अधिकारियों की नियुक्ति की जाए।

13. अच्छे वेतन, पुरस्कार दिए जांए एवं दण्ड द्वारा अनुशासन स्थापित किया जाए।
14. प्रशिक्षण तथा संगठन प्रणाली के निदेशक की नियुक्ति की जाए एवं उसे स्टाफ दिया जाए।
15. भारतीय प्रशासन सेवा के प्रशिक्षण स्कूल के संगठन को और अधिक श्रेष्ठ बनाया जाए तथा उसके लिए एक पूर्णकालिक प्रधानाचार्य की नियुक्ति की जाए।
16. अधिकारियों की भर्ती सामान्य प्रशासकों के रूप में की जाए, विशेषज्ञों के रूप में नहीं जैसा आर्थिक सिविल सेवा अथवा औद्योगिक विशेषज्ञों की सेवा में होता है।
17. प्रतियोगी परीक्षाओं में मौखिक परीक्षाओं के स्थान पर मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ ली जाएँ।
18. विशेष विषयों के स्थान पर सामान्य विषयों के प्रश्न पत्रों के अधिक अंक निर्धारित किए जाँए।
19. विश्वविद्यालों, सरकारी विभागों तथा लोक सेवा आयोग द्वारा किये जाने वाले चुनाव में उन्नत तकनीकें अपनाई जाएँ।
20. अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी, राज्यों को सौंपे जायें न कि राज्य स्वयं नियुक्ति करें। श्री गोरवाला का कथन था कि उपर्युक्त सुझावों को यदि लागू किया गया तो उससे नौकरशाही की कार्यप्रणाली शक्तिशाली होगी और उसकी गति में प्रगति आ जायेगी।

डॉ. पी. डी. शर्मा के शब्दों में "श्री गोरवाला ने केंद्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर मौलिक प्रशासनिक सुधारों के लिए योजनाबद्ध सुझाव दिये किन्तु भारत सरकार ने इन्हें क्रियान्वित करने में अधिक रूचि नहीं दिखायी।"

गोपालस्वामी प्रतिवेदन, 1952

(Gopalswami Report, 1952)

सरकारी तन्त्र की कार्यकुशलता की अभिवृद्धि पर प्रतिवेदन देने का कार्य एक सिविल सेवा अधिकारी श्री गोपालस्वामी आयंगर को सन् 1952 में सौंपा गया। इस प्रतिवेदन में श्री आर. एस. गोपालस्वामी ने केन्द्रीय सरकार के सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन तथा कार्य प्रणाली की आलोचनात्मक समीक्षा की। उन्होंने मुख्यरूप से सुझाव दिया कि केंद्र में संगठन एवं प्रणाली की स्थापना की जाय। यह एक गुप्त दस्तावेज था। जिसे कि आयंगर रिपोर्ट के पूरक के रूप में रखा गया था। इस रिपोर्ट में केंद्रीय सरकार के तन्त्र के काम करने की साधारण क्रिया का विस्तृत पुनरावलोकन किया गया। सचिवालय के सुधार के लिए कई योजनाएँ इस रिपोर्ट में थी। इसमें 28 विभागों को 20 मन्त्रालयों के अन्तर्गत संगठित करने का सुझाव था। संगठन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए दिन–प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्यों को उन विभागों से अलग रखने को कहा गया। आयंगर द्वारा निकाली गयी प्रशासन सम्बन्धी बातें बहुत सीमा तक एक कागजी योजना ही रही, क्योंकि इसे कुछ अंशों में ही कार्य रूप में परिणत किया

गया। आयंगर के मौलिक सुझाव "संगठन और विधियों" के उपविभाग को सन् 1964 में बनाया गया। आयंगर के सुझाव सम्भवतः अपने समय से बहुत आगे थे। इस रिपोर्ट में उन्होंने लिखा कि सरकार के सन्मुख उपस्थित होने वाली समस्यायें स्थायी नहीं होती। भूत की अपेक्षा अब द्रुत गति से उनके परिवर्तित होने की सम्भावना है और फलतः प्रशासन से संगठन एवं विधियों में भी इन परिवर्तनों के अनुरूप ही बदलने की आवश्यकता है।"

पाल एच. एपलबी का प्रतिवेदन

(Report of Paul H. Appleby)

लोक प्रशासन के अमेरीकी विशेषज्ञ पाल एच. एपलबी ने सन् 1953 और 1956 में क्रमशः अपनी प्रथम एवं द्वितीय रिपोर्ट भारत सरकार को दी। इस रिपोर्ट का सरकारी क्षेत्रों तथा शिक्षित जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। इससे प्रशासनिक सुधारों में महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। एपलबी में अपनी रिपोर्ट में "भारत सरकार को संसार की दर्जनों अत्यन्त उन्नत सरकारों की श्रीणी में रखा" और कह की भारत इन सेवा (I.C.S./I.A.S.) में उस ब्रिटिश सेवा के समकक्ष है जिसे की संसार में सामान्य सिविल सेवकों का सर्वोत्तत समुदाय रखने की विशिष्टता प्राप्त है। "उन्होंने कहा कि कार्मिक प्रशासन बहुत कुछ सामन्तवादी विरासत में मिला है, मूलरूप से वह एकाडमिक और इन्टेलेक्चूअल है।" लोक सेवा आयोग द्वारा जो चुनाव होता है उसका ढ़ंग ठीक नहीं है। आयोग को भर्ती के विषय में सक्रिय होने का सुझाव दिया। उन्होंने महालेखा परीक्षक के नीरस कार्यों की आलोचना की और कहा की वित्त मन्त्रालय में प्रत्यायोजन (Delegation) का अभाव पाया जाता है। विकास कार्यों को लागू करने के लिए विभिन्न मन्त्रालयों में समन्वय नहीं पाया जाता। उनके सुझाव निम्नलिखित हैं:

संगठन तथा प्रबन्ध (Organisation and Management)

उपयुक्त मंत्री के अधीन संगठन तथा प्रबन्ध अथवा लोक प्रशासन का कार्यालय स्थापित किया जाए, जिसे सरकार का दृढ़ समर्थन प्राप्त हो। इस कार्यालय की आवश्यता इसलिए है कि इसके द्वारा सरकारी ढाँचे में तथा प्रशासनिक पद्धतियों में सरलता से सुधार लाया जा सके, तत्सम्बन्धी अध्ययन जारी रखा जा सके तथा क्षमता एवं उत्तरदायित्व को केन्द्रित किया जा सके। प्रशासन के इस नए ढाँचे की पहुँच प्रशासन के सभी कार्यालय तक हो। इस कारण परम्परागत वित्तीय समीक्षा अथवा कर्मचारी वर्ग पर नियन्त्रण द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं रहेगी।

विशेषज्ञों की नियुक्ति

बाहरी विशेषज्ञों के एक दल द्वारा आगे ओर विशिष्ट अध्ययन जारी रखने की व्यवस्था की जाए।

लोक प्रशासन की संस्था का निर्माण

भारत में लोक प्रशासन की संस्था अर्थात् इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना की जाए जो लोक प्रशासन को एक व्यवसाय के रूप में अपनाये जाने की ओर राष्ट्र का ध्यान केन्द्रित कर सके। ऐसा संगठन अपनी व्यवसायिक पत्रिकाओं के माध्यम से प्रशासकीय ज्ञान की अभिवृद्धि करें। इसे स्वीकार करते हुए भारत ने दिल्ली में लोक प्रशासन की संस्था की स्थापना की।

प्रशिक्षित करना

लोक प्रशासन ने स्नातकों को प्रशिक्षित करने का कार्यक्रम बनाया जाए। इस प्रकार के प्रशिक्षित युवकों को सार्वजनिक सेवाओं में प्रविष्ठ कराया जाए। इससे चुने हुए विश्वविद्यालयों तथा सरकार के बीच घनिष्ठता तथा कार्य करने का सम्बन्ध स्थापित होगा।

सामुदायिक प्रोजेक्ट को लागू करें

सामुदायिक प्रोजेक्ट को लागू करने तथा उनकी स्थिति को मजबूत बनाने तथा इनके प्रबन्ध में लचीलापन तथा विवके लाने के लिए आवश्यक है कि प्रशासनिक उत्तरदायित्व को संगठित किया जाये।

उत्तरदायित्व को संगठित करना

सभी विकास एवं सामाजिक कार्यों के क्षेत्रों में उत्तरदायित्व को संगठित किया जाए। यह कार्य मन्त्रालय की परस्पर सम्बद्धताओं एवं समीक्षाओं (Reviews) को सरल बनाकर तथा कम करके, सरकार के निभिन्न स्तरों में समीक्षा की रीति में सुधार करके तथा प्रशासनिक कार्यों से सम्बद्ध कागजों के आवागमन की प्रणाली में सुधार करके सम्पन्न किया जा सकता है।

प्रशानिक पदसोपान के ढांचों को व्यापक बनाया जाए

प्रशासनिक पदसोपान को ऐसा वास्तविक एवं पिरामिडीय (Pyramidal) स्वरूप प्रदान किया जाए जिसमें प्रशासन के अधिकांश स्तर अधिक कार्यकारी (Executive) अधिकारी हो, प्रशासन के स्तरों में वृद्धि की जाए तथा सभी स्तरों के बीच, विशेषतः निम्न स्तरों के बीच की खादयों (Gaps) की वर्तमान व्यापक चौड़ाई को कम किया जाए। इससे मध्यम पदक्रम (Middle Grade) के अधिक कर्मचारियों की तथा पदो ंके एक पूर्णतया नए ढाँचे की स्थापना होगी।

कर्मचारियों का चयन

वर्गो एवं पदों की सीमाओं से निर्धारिण को समाप्त किया जाए। चयन (Selection) की कैसाटी को विविधता प्रदान की जाए। विशेषरूप से कार्य की ओर झुकाव पर अधिक जोर दिया जाए और भर्ती को अधिक विचारपूर्ण बनाया जाए। उन व्यक्तियों में से चयन किया जाए जिन्हें लोक सेवा आयोग योग्य समझे। इसी प्रकार कर्मचारियों के अनुशासन के सम्बन्ध में प्रशासनिक अभिकरणों को अधिक अधिकार प्रदान किए जाएं।

कार्मिक वर्ग में सुधार

कार्मिक वर्ग में सुधार का ऐसा व्यापक एवं दीर्घकालिक कार्यक्रम बनाया जाए जिसका उद्देश्य सरकार के अधीन काम करने वाले सभी व्यक्तियों की सम्भावनाओं एवं (Potentialities) शक्तियों को अधिकतम करना हो।

राजस्व अधिकारियों की भर्ती

उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध होने पर यथाशीघ्र राजस्व अधिकारियों की भर्ती की जाए, उनको प्रशिक्षित किया जाए। इसमें उनकी संख्या की कोई सीमा उस समय तक न की जाए जब तक कि कर संग्रह पूर्णतया सामान्य न हो।

लगान निर्धारण

राज्यों के साथ मिलकर ऐसी तालमेलयुक्त कार्यवाइयाँ की जाएँ जिससे लगान निर्धारण तथा करों की दरों एक ठोस एवं उचित चालू दर तक लाया जा सके, कृषि आयकर लागू किया जा सके, भूमि के लगान की सीमाएँ बाँधी जा सकें तथा राज्यों कत्रमें कर–संग्रह करने वाले प्रशासन में सुधार किया जा सके, ताकि कर के अनुमानों एवं कर की वास्तविकताओं के बीच की खई को छोटा करके तालमेल के अनुपात तक लाया जा सके।

जाँच–पड़ताल की उचित व्यवस्था

कार्य करने वाले अभिकरणों को उच्च उत्तरदायित्व सौंपे जाने के फलस्वरूप यह भी आवश्यक है कि कार्यों के मध्य अथवा बाद में उनकी जाँच–पड़ताल की समुचित रीतियों का निश्चय किया जाए।

योजना आयोग

उनके अनुसार योजना आयोग का कार्य योजना बनाना है। योजनाओं को क्रियान्वित करना उसका कार्य नहीं है। डॉ. एपलगी के इस सुझाव को मानते हुए योजना आयोग की कार्यकारिणी को उत्तरदायित्वों से मुक्त कर दिया।

अत्यधिक कर्मचारी

एपलबी ने कहा कि भारत सरकार ने अत्यधिक कर्मचारियों को रखा है, उनमें बेईमानी प्रवेश कर गई है, वे अकुशल हो गए हैं तथा उनमें आवश्यक लाल–फीताशाही बढ़ गई है। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने भ्रष्टाचार पर भी अध्ययन किया है। भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए उन्होंने दफतरी व्यवस्था में कुछ परिवर्तन करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि उत्तरदायित्वों का विभाजान किया जाए। एक संगठनात्मक इकाई के वेतन–चेकों को प्राप्त करने, प्रमाणित करने की जिम्मेदारी एक साथ नहीं सौपना चाहिए।

सरकारी निगमों को स्वायत्तता

उनका विचार था कि सरकारी निगमों को अधिक स्वायत्तता प्रदान की जाए। निगमों के दैनिक प्रशासन में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप नहीं किया जाए। नीतियों के सम्बन्ध में सरकारी निगमों को सरकार के प्रति उत्तरदायी रखा जाए। सरकारी निगमों को विवेकपूर्ण निर्णय करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जाए एवं कम से कम संसदीय नियन्त्रण हो।

शक्तियों का प्रत्यायोजन

शक्तियों का कम से कम प्रत्यायोजन किया जाए। अधिक मात्रा में प्रत्यायोजन करने से उत्तरदायित्व के क्षेत्र में शिथिलता आ जाती है।

संसद का कार्य

संसद का मूल कार्य नियन्त्रण के स्थान पर निर्देशन होना चाहिए। संसद के अधिकारियों के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966

(Administrative Reforms Commission, 1966)

देश की प्रशासनिक जाच तथा आवश्यकतानुसार प्रशासन में सुधार एवं पुनर्गठन के सम्बन्ध में सिफारिशें करने के लिए एक उच्चाधिकारीयुक्त प्रशासनिक सुधार आयों की स्थापना 5 जनवरी, 1966 को की गई। प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रथम सभापति श्री मोरारजी देसाई

व्यक्ति और जनता के प्रतिनिधि थे। इन अध्ययन दलों की मिली–जुली प्रकृति की रचना इस कारण की गई थी कि लोक प्रशासन की समस्याओं की जाँच ईमानदारीपूर्ण संतुलित एवं वास्तविक रूप से हो सके। आयोग की सफलता को देखकर कुछ मन्त्रालयों द्वारा यह प्रार्थना कि गई थी कि उनके विषय में भी अध्ययन किया जाए। इस कारण नवम्बर 1966 में सुरक्षा विषयों पर, जून 1967 में संघीय प्रदेशों पर तथा सितम्बी 1967 में रेलवे पर भी अध्ययन दल नियुक्त किए गए। आयोग के इन सभी निकायों में लगभग 206 प्रभावशाली व्यक्ति थे। इनमें 6 केन्द्रिय मन्त्री, 7 मुख्यमन्त्री तथा 3 राज्यमन्त्री थे। इसके साथ ही उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, एटार्नी जनरल, रिजर्व बैंक के गवर्नर, विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रोफेसर आदि नियुक्त किए गए थे। आयोग के कार्यालय में अधिकारी एवं कर्मचारियों की संख्या 169 थी, जिसमें 1 सचिव, 1 संयुक्त सचिव, 9 उप सचिव, 1 अवर सचिव (Under Secretary), 42 रिसर्च अधिकारी तथा अन्य साधारण कर्मचारी थे। इसमें कुल व्यय 66,59,231 रूपये हुए। आयोग ने औसतन पांच महीने में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस आधार पर यदि कहा जाए कि आयोग को काम करने से अधिक समय लगा तो यह कहना निर्रथक है। आयोग ने 5 जनवरी, 1966 से 30 जून, 1970 तक कार्य किया और अपना प्रथम प्रतिवेदन नागरिकों के कष्ट निवारण की समस्या के लिए 20 अक्टूबर 1966 को सरकार के सन्मुख प्रस्तुत किया।

आयोग के विभिन्न प्रतिवेदन

(various Reports of the Commission)

आयोग ने कुल मिलाकर 20 प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। इन प्रतिवेदनों की कुल 537 सिफारिशें थी। आयोग ने विभिन्न सिफारिशें प्रस्तुत करते समय निम्नलिखित मूलभूत सिद्धान्तों को ध्यान में रखा था–

1. आयोग सिफारिश करते समय प्रशासनिक अपर्याप्त अथवा न्यूवता को ध्यान में रखेगा और विचार करेगा कि क्या मन्त्री अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करते हुए भी लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है अथवा नहीं?
2. आवश्यमता के अनुरूप प्रशासनिक व्यवस्था अथवा प्रक्रिया को ढालना।
3. आयोग के प्रस्तावित सुधर, प्रचलित प्रशासनिक सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियों के अनुरूप हो।
4. कार्यकुशलता सुधारने, मितव्ययता एवं प्रशासनिक स्तर को ऊँचा उठाने की ओर ध्यान देना।
5. वर्तमान एवं नवीनीकृत प्रशासन के बीच संतुलन की ओर ध्यान देना।
6. प्रशासन पर जनता की प्रक्रिया को सुधारने की ओर ध्यान देना।

7. प्रशासन में सुधार करेगा।
8. वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखेगा।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक सुधार आयोग ने निम्नलिखित प्रतिवेदन शासन को न्मिनांकित तारिखों पर प्रस्तुत किए थे।

क्र.	प्रतिवेदन का नाम	शासन को प्रस्तुत करने की तारीख
1.	नागरिकों के कष्टों व शिकायतों को दूर करने कर समस्या (अंतरिम)	20–10–1967
2.	नियोजन की दफ्तरी व्यवस्था (अंतरिम)	29–04–1967
3.	सरकारी क्षेत्र के उद्यम	17–10–1967
4.	वित्त, लेखे एवं लेखा–परीक्षण	13–01–1968
5.	नियोजन की दफ्तरी व्यवस्था (अंतरिम)	14–03–1968
6.	आर्थिक प्रशासन	20–07–1968
7.	भारत सरकार की दफ्तरी व्यवस्था और उसकी कार्यविधियाँ	16–09–1968
8.	जीवन बीमा प्रशासन	10–12–1968
9.	केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर प्रशासन	06–01–1969
10.	संघीय क्षेत्रों तथा नेफा का प्रशासन	28–11–1969
11.	कार्मिक वर्ग प्रशासन	18–04–1969
12.	वित्तीय एवं प्रशासनिक शक्तियों का हस्तांतरण	12–06–1969
13.	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	19–06–1969
14.	राज्य प्रशासन	04–11–1969
15.	छोटे पैमाने का क्षेत्र	24–12–1969
16.	रेलवे	30–01–1970
17.	राजकोष	27–02–1970
18.	भारतीय रिजर्व बैंक	11–03–1970
19.	डाक तथा तार	15–05–1970
20.	वैज्ञानिक विभाग	03–06–1970

प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशें

(Recommendation of the Report of Administrative Reforms Commission)

प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों का सारांश निम्नलिखित है–

1. विभिन्न मन्त्रालयों में संगठन तथा प्रणाली को पुनः सक्रिय किया जाए। इन इकाइयों के माध्यम से कर्मचारी वर्ग को आधुनिक विधियों का प्रशिक्षण दिया जाए।
2. केन्द्रीय सुधार अभिकरण में ठोस एवं दृश्य सुधारों का एक विशिष्ट कोष्ठ स्थापित किया जाए।

3. केन्द्रीय सुधार अभिकरण को कार्य करने, भर्ती करने तथा अपने संगठनात्मक ढाँचे के तरीकों में अनुसंधान प्रमुख होना चाहिए।
4. उप–प्रधानमन्त्री के अधीन प्रशासनिक सुधारों के विभाग को रखा जाए।
5. प्रशासनिक सुधारों एवं प्रगतियों के अध्ययन का कार्य स्वायत्तता प्राप्त व्यवसायिक संस्थाओं के हाथ में सौंपा जाना लाभप्रद हो सकता है, जैसे–लोक प्रशासन का भारतीय अनुसंधान, व्यावहारिक मानव–शक्ति अनुसंधान संस्थान, प्रशासनिक स्टाफ कालेज, हैदराबाद, इसी प्रकार कलकत्त एवं अहमदाबाद के प्रबन्ध संस्थान तथा कुछ चुने हुए विश्वविद्यालय।
6. प्रशासनिक सुधारों की एक परिषद स्थापित की जाए जो प्रशासनिक सुधार अभिकरण के कार्यक्रमों को बनाने, योजनाओं के निर्माण, लोक प्रबन्धों की समस्याओं पर अनुसंधान करने में सहायता दें। परिषद में आठ सदस्य हों। इनमें कुछ संसद सदस्य, कुछ अनुभवी प्रशासक तथा लोक प्रशासन में रूचि रखने वाले विद्वान हों। इनमें प्रधानमन्त्री करेगा और वह स्वयं भी देखेगा कि प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें किस प्रकार लागू हो रही हैं।
7. प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा स्वेच्छा या स्व–विवके के दुरूपयोग को देखने के लिए, लोक सेवकों में सत्यनिष्ठा, सिविल सेवा की क्षमता, नागरिकों पर किए गए अन्याय को देखने एवं जाँच करने के लिए "लोकपाल" तथा "लोकायुक्त" को नियुक्त करने की सिफारिश आयोग ने की।
8. भारतीय प्रशासनिक सेवा एक सामान्यतावादी सर्वगुण सम्पन्न अधिकारी (Generalist all rounder) बन गई है जो सरकारी क्षेत्र के उद्यमों का प्रबन्ध नहीं कर सकती। वह भारी उद्योगों, इस्पात तथा खान, पट्रोलियम तथा रसायन जैसे तकनीकी प्रकृति के मन्त्रालयों या विभागों में नीति–निर्माण सम्बन्ध कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकती। अतः आयोग ने सिफारिश की है कि ऐसे कार्यों के प्रमुख पदों पर उन्हीं व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की जानी चाहिए, जिन्हें की सम्बद्ध विषय का विशिष्ट अनुभव अथवा विशिष्ट ज्ञान हो। आयोग के शब्दों में, विशिष्टीकरण पर जोर देने तथा उच्च प्रशासन में विशिष्ट कौशल की आवश्यकता पर जोर देने से हमारा आशय, किसी भी प्रकार, यह नहीं है कि सामान्यतावादी अधिकारी पूर्णतया फालतू या आवश्यकता से अधिक है। एक तथ्य जिसे हम सर्वाधिक प्रकाश में जाना चाहेगें "यह है कि कुछ पदों एवे पदों की श्रेणियों को केवल सामान्तावादी श्रेणी के अधिकारियों के लिए अब और अधिक समय तक सुरक्षित नहीं माना जाना चाहिए.....। कार्यों की योजना में सामान्यतावादी अधिकारियों को अपना स्थान है और यह कि महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु वैसे ही महत्त्वपूर्ण स्थान विशेषज्ञों तथा टैक्नोलॉजी विशेषज्ञों का भी है।
9. वरिष्ठ प्रबंधकीय पद सभी के लिए खोल दिए जाना चाहिए। उन्हें किसी विशेष श्रेणी या वर्ग के लिए सुरक्षित न रखा जाए। प्रशासन में विशेषाों को स्थान दिया जाए।

10. आयोग में वर्तमान कार्मिक वर्ग की वर्तमान व्यवस्था की कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया और भारतीय प्रशासन सेवा के ढाँचे में पुनर्गठन के लिए समुचित सुझाव दिए। आयोग का यह सुझाव था कि "भारतीय प्रशासन सेवा के लिए कार्यात्मक क्षेत्र का निर्धारण कर दिया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में भू–राजस्व प्रशासन, मेजिस्ट्रेट सम्बन्धी कार्य तथा नियामकीय कार्य सम्मिलित किए जाना चाहिए, किन्तु ये कार्य राज्यो के केवल उन क्षेत्रों तक ही सीमीत रहना चाहिए जिनकी देखभाल अन्य कार्यात्मक सेवाओं के अधिकारियों द्वारा नहीं की जाती है।"
11. भारत सरकार के वर्तमान युग में गठित विभागों का पुर्गठन किया जाना चाहिए। मन्त्री–परिषद की संख्या प्रधानमन्त्री को मिलाकर 16 हो। सभी मन्त्रियों की संख्या 40 हो और उसे विशेष परिस्थितियों में 45 की जा सकती है। मन्त्रियों के वर्तमान में तीन स्तर को जारी रखा गया। मन्त्रियों को विभाग देने के पूर्व सम्बन्धित मन्त्रियों से प्रधानमन्त्री परामर्श अवश्य कर ले। निर्णय लेने का कार्य दो से अधिक मन्त्रियों को न दिया जाए। प्रधानमन्त्रियों के पास प्रमुख विभाग रहना चाहिए और उसे विभिन्न मन्त्रालयों के बीच तालमेल बनाए रखने का कार्य करना चाहिए। समय–समय पर प्रधानमन्त्री विभिन्न मन्त्रियों से कार्यों के विषय में मिलते रहें।
12. जिस मन्त्रालय में एक से अधिक विभाग अथवा सचिव हों, उसमें पूर्णतया समन्वय बनाये रखने का कार्य एक ऐसे विभाग अथवा सचिव को सौंपा जाना चाहिए जो इस कार्य के लिए सर्वधिक उपयुक्त हो।

संगठन तथा पद्धति (O & M)

अर्थ

यह शब्द दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है। व्यापक अर्थ में इसका तात्पर्य 'संगठन तथा प्रबंध' है, जिसमें प्रबन्ध की सभी प्रक्रियाओं (जैसे–योजना बनाना, संगठन करना, समन्वय करना, प्रेरित करना, संचालन तथा नियन्त्रण करना इत्यादि) का अध्ययन सम्मलित है। किन्तु **संकुचित अर्थ** में इसका तात्पर्य **'संगठन और पद्धतियाँ'** होता है। उस समय इसका सम्बन्ध केवल लोक निकायों या निजी संस्थानों के संगठन तथा उनकी कार्यालय सम्बन्धी कार्यविधियों से होता है। चाहे जिस अर्थ में O&M का प्रयोग किया जाए, दोनों का उद्देश्य सुधार करना है। लोक निकायों या निजी संस्थानों के संगठन का तथा कार्यालय में उनके द्वारा अपनायी जा रही कार्य–विधि का जो अध्ययन कर्मचारी करते हैं उसे संगठन तथा पद्धति की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार ओ एण्ड एम कार्य के तत्व हैं–संगठन और पद्धतियाँ। वस्तुतः O & M के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक यह है कि किसी संगठन की इस उद्देश्य से समीक्षा की

जानी चाहिए कि वह पूर्ण व्यवस्थित हो जाए। फिर भी O & M का कार्य किसी इकाई के केवल आन्तरिक ढाँचे का सुधार करने तक ही सीमीत है।

परम्परानुसार किसी उच्चतम स्तर के ढाँचे का पुनसंगठन करना O & M के अधीन नहीं आता है। यह कार्य अधिक उच्च निकायों के लिए छोड़ दिया जाता है। जैसे–संयुक्त राज्य अमेरीका में हूवर आयोग, ब्रिटेन में हाल्डेन समिति और भारत में एक संसदीय आयंगर समिति, जहाँ तक पद्धतियों का सम्बन्ध है O & M इकाइयों से यह आशा की जाती है कि वे कार्य की प्रक्रियाओं तथा कार्य की पद्धतियों की समीक्षा करें ताकि उनमें सुधार किया जा सके। ऐसा करते समय कार्य सरलीकरण तक्ता कार्य–माप की प्रसिद्ध तकनीकें अपनायी जाती हैं। अतः सीमित अर्थ में प्रस्तुत किए जाने पर O & M कार्य–अध्ययन, प्रवर्तन अनुसंधान, तथा स्वचालन जैसी तकनीकों के वर्ग में आता है। ये तकनीकें अपने–अपने तरीके से प्रशासन में सुधार करने का प्रयास करते हैं। संक्षेप में O & M के साधारण कार्य हैं–समीक्षा के अधीन संगठन की संरचना का परीक्षण और प्रशासकीय व लिपिक सम्बन्धी कार्यविधियों और रीतियों, कार्यालय के यन्त्रीकरण और सज्जा तथा कार्यालय की रूप–रेखा, कार्य करने की परिस्थितियों का अध्ययन करना।

कार्य अध्ययन का सम्बन्ध अनुसंधान, अभिलेख, माप तथा सुधार सम्बन्ध क्रमिक क्रिया–कलापों के निम्नलिखित तत्त्वों से है–श्रमिक जो कार्य करता है, प्रयोग में आने वाले यन्त्र तथा उपकरण, सामग्री तथा कार्य करने की अवस्थाएं, प्रवर्तन अनुसंधान किसी संगठन के भीतर की समस्याओं का विश्लेषण करता है, तथा उनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है जिससे प्रबन्ध को सर्वाधिक प्रभावशाली प्रवर्तन सूचना प्राप्त हो सके। लेकिन O & M की उपर्युक्त व्याख्या अत्यधिक सीमित है। कई बार इस शब्द का प्रयोग 'प्रबन्ध के सुधार' के लिए किया जाता है। इस अर्थ में O & M केवल एक तकनीक ही नहीं रह जाता है अपितु वह कार्य बन जाता है अर्थात् प्रशासन को सुधारने का कार्य। इस सम्बन्ध में मिलवर्ड कहते हैं–"यह केवल प्रबन्ध के उपकरण अर्थात् शीर्षस्थ प्रबन्ध के अभिकर्ता (Agent) के रूप में ही नहीं होता बल्कि प्रबन्धकों, लेखा परीक्षकों या अन्य लोगों की सेवा करता है जिन्हें इसकी आवश्यकता है और जिनके पास समय तथा आवश्यक विशेषज्ञ नहीं है। एजेण्ट तथा सेवा सम्बन्धी यह दुहरा उद्देश्य स्थिति को जरा कठिन बना देता है। कुछ कम्पनियों में तो एजेण्ट होते हैं तथा अन्य में केवल सेवा ही होती है। किन्तु फिर भी दोनों कार्यों का संयोजन करने की आवश्यकता होती है। O & M की अन्तर्वस्तुओं के विषय में ही नहीं बल्कि प्रभावशाली तथा कार्यकुशलता का सुधार करने सम्बन्धी अन्य तकनीकों से इसके सम्बन्धों के विषय में विस्तृत मतभेद है।" ऐपल्बी ने O & M इकाई के लिए एक व्यापक कार्यक्षेत्र की कल्पना की थी और इसकी स्थापना के लिए उसने भारत सरकार से निम्नलिखित सिफारिश की थी।

"मैं यह सिफारिश करता हूँ कि भारत सरकार एक केन्द्रीय कार्यालय की स्थापना पर विचार करें जिसे संरचना प्रबन्ध तथा कार्यविधि के सम्बन्ध में विस्तृत तथा गम्भीर नेतृत्व प्रदान करने का उत्तरदायित्व सौंपे जाए। अत्यधिक तकनीकी तथा वैज्ञानिक ढंग के स्तर पर वह कार्य–माप, कार्य–प्रवाह, कार्यालय–प्रबन्ध, नस्तीकरण प्रणाली (Filling System) स्थान प्रबन्ध तथा अन्य ऐसी ही बातों पर ध्यान दें, दूसरे स्तर पर इसे सामान्य सरकारी संरचना सम्बन्धी अध्ययनों एवं प्रस्तावों का भार सौंपा जाना चाहिए। मुझे आशा है कि इस स्तर पर भी यह नौकरशाही के भीतर तथा नौकरशाही और जनता के बीच प्रजातान्त्रिक तरीकों तथा रीतियों के विकास के लिए उत्तरदायी होंगी।"

कार्य

संगठन तथा पद्धति कार्यालय का प्रयोजन प्रबन्ध को सुधारने हेतु सूत्र अधिकारियों की सहायता करना है। सारांश में O & M के कार्य इस प्रकार हैं–"व्यय कम करने में सहयोग, मानव–शक्ति की बचत, कार्यविधि का सरलीकरण, सामग्री की बचत, कार्य की गति में वृद्धि तथा संगठन में सुधार। इनके तरीके निम्न हैं।

1. **शोध तथा विकासः** केन्द्रीय संगठन तथा पद्धति कार्यालय का प्रधानतः यह मुख्य कर्त्तव्य है कि उन प्रशासनिक प्रणालियों का विकास करे जिनका सम्बन्ध संगठन, कर्मचार वर्ग, बजट तथा लेखा निर्माण, प्रदत्तीकरण समन्वय, पर्यवेक्षण, इत्यादि कार्यों से है। इसके अतिरिक्त कार्य प्रबन्ध, कार्य सरलीकरण, सांख्यिकीय पद्धतियां तथा उत्कृष्टता नियन्त्रण जैसी तकनीकों का प्रयोग, कार्यालय के यन्त्रों के प्रयोग, उत्तम रूपरेखा, उचित लेखा प्रबन्ध तथा प्रमाणों, मापों और मूल्य–नियन्त्रण की अच्छी प्रणाली के सम्बन्ध में नवीन विचार प्रदान करें जिससे कार्यालय के प्रबन्ध में सुधार हो सके।
2. **प्रशिक्षणः** ओ एण्ड एम के किसी संगठन में O & M की तकनीकों के माध्यम से कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। ऐसे प्रशिक्षण के दो उपयोगी काम हैं:
   i. इससे प्रशासन की विभिन्न O & M इकाइयों के कर्मचारी वर्ग के लिए योग्य व्यक्ति तैयार करने में सहायता प्राप्त होती है।
   ii. O & M की रीतियों में सूत्र अधिकारियों को प्रशिक्षण देकर योग्य व्यक्तियों के एक समूह को ही नहीं निर्मित करना बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से O & M कार्यक्रमों में रूचि प्रोत्साहित करता है तथा प्रशासकीय संगठन का सामान्य स्तर ऊँचा उठाने में सहायता देना है।
3- **अनुसंधानः** विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों में संगठन, प्रक्रियाओं तथा रीतियों का विश्लेषण करना O & M कार्यालय का मुख्य कार्य है। केन्द्रीय कार्यालय प्रायः ऐसे अनुसंधानों का

संचालन करता है जिसमें स्थानीय ज्ञान की उपेक्षा अधिक विस्तृत तथा विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। वे विभाग या कार्यालय, जिनके साथ अपनी निजी O & M सेवा नहीं होती है, यदि अनुसंधान सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रार्थना करते हैं तो उनका तथा अन्य संस्थाओं का काम निकल सकता है।

4. **प्रबन्ध–सुधार कार्यक्रमों का समन्वयः** विकेन्द्रित O & M कार्यक्रम के लिए आवश्यक है कि समन्वय के लिए अर्थात् अतिच्छादन रोकने विरोधों को दूर करने, झगड़ों से बचने, आदि के लिए कोई व्यवस्था होनी चाहिए। केन्द्रीय O & M इकाई का मुख्य दायित्व कार्यक्रम में रूचि प्रोत्साहित करना तथा समझदार अधिकारियों को योजना बनाने एवं उनके O & M प्रयत्नों को कार्यान्वित करने में सहायता देना। संक्षेप में, "केन्द्रीय ओ एण्ड एम इकाई निर्देश का अन्तिम बिन्दु है।"
5. **सूचनाः** O & M कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सूचना का प्रसार करना हैं इसे सरकार के सभी स्तरों पर केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय बल्कि विदेशों में भी सम्पादित O & M के से सम्बन्धित सूचना के वितरण केन्द्र का कार्य करना है। संक्षेप मेंख इसे उपर्युक्त सूचनाएं एकत्र करनी चाहिए तथा एक पुस्तकालय की स्थापना करनी चाहिए और आवश्यकतानुसार सूचना तथा सामग्री प्रदान करने में सहायता देनी चाहिए।
6. **प्रकाशनः** केन्द्रीय O & M कार्यालय मार्गदर्शकों, नियमावलियों, अन्वेषण सामग्री, हस्त–पुस्तितकाओं, विवरण पत्रिकाओं, पाक्षिक पत्रिकाओं और O & M के सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करके सहायता प्रदान करता है।

प्रकृति

O & M कार्य का स्वरूप निम्नलिखित ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

1. **O & M एक सेवा कार्य हैः** संगठन तथा प्रणाली इकाई का कार्य एक सेवा के रूप में है। यह इकाई सरकार करके विभिन्न मन्त्रालयों, विभागों तथा कार्यकलापों की कार्यक्षमता में वृद्धि हेतु सुझाव देकर उन्हें सहायता पहुँचाती है। O & M के सुझाव थोपे नहीं जा सकते।
2. **O & M एक परामर्श कार्य हैः** O & M की प्रकृति का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व यह है कि उसका कार्य परामर्श देना मात्र है, नीति निर्धारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतः इसका कार्य **स्टाफ** सम्बन्धी है, न कि सूत्र सम्बन्धी। उसे केवल परामर्श देना चाहिए। यदि कोई विशेष विभाग यथोचित कारण के बिना इन इकाइयों से परामर्श नहीं करता है तो सुझाव रूप में उच्च स्तर पर किसी कार्यवाही की व्यवस्था होनी चाहिए, बल प्रयोग कभी नहीं किया जाना चाहिए।

3- **O & M सकारात्मक कार्य हैः** O & M इकाइयों का कार्य सकारात्मक है न कि नकारातमक। इनकी प्रवृति सुधारात्मक है न कि दोष–खोजी। इसका कार्य आलोचना

करना नहीं है। इस प्रकार साधारण अर्थों में O & M निरीक्षण तथा लेखा परीक्षण से भिन्न है।

4- **O & M प्रशासन में सुधार के विभिन्न प्रयत्नों का अंगमात्र है:** यह नहीं समझना चाहिए कि O & M संगठन सम्बन्धी सभी बीमारियों की रामबाण औषधि है अथवा अकेली O & M इकाई ही समस्त प्रशासन में सुधार करने के लिए उत्तरदायी है, वस्तुतः O & M इकाई तो कार्य सुधार हेतु किए गए सरकार के सम्पूर्ण प्रयत्नों का केवल ऐ अंश मात्र है।

5- **अत्यधिक रहस्यमय और तकनीकी नहीं:** O & M सुझाव को अत्यधिक रहस्यमय और तकनीकी रहस्यमय और तकनीकी बनाने की भूल नहीं करनी चाहिए। उसे "सामान्य बुद्धि पर आधारित सिफारिशें" ही देनी चाहिए। उनका कार्य इतना अधिक तकनीकी न बन जाए कि केवल विशेषज्ञ ही उसे समझ सकें।

उपयोगिता अथवा लाभ

1. **प्रशासकीय सुधार का महत्त्वपूर्ण साधन:** प्रशासन में सुधार करने हेतु निरन्तर प्रयत्न करते रहने के लिए यह एक साधन प्रदान करता है। ऐसे सुधार यह अपनी विभिन्न शाखाओं के संगठन तथा उनमें कार्यपद्धतियों की आलोचनात्मक समीक्षा करके करता है। इस प्रणाली का सार यह है कि यह समीक्षा विशेषज्ञ पदाधिकारियों द्वारा की जाती है।
2. **क्रियाविधि को आधुनिकतम बनाना:** O & M संभाग द्वारा विभागिय प्रक्रिया सरल बनायी जाती है तथा इसके द्वारा सरकारी कार्यालयों की संरचना तथा उनके द्वारा अपनायी गई कार्यविधि दोनों को ही आधुनिकतम बनाए रखने में याग दिया जाता है जिससे वह बदलते परिप्रेक्ष्य में कदम मिलाकर चल सके।
3. **अनुभव का भण्डार:** O & M अनुसंधान केन्द्रों के रूप में कार्य करते हैं। इनके पास पर्याप्त अनुभव एकत्रित हो जाता है। इस प्रकार एकत्रित किया हुआ अनुभव कार्यालय एंव संस्थाओं को संगठित करते समय पर्याप्त लाभ का सिद्ध होता है।

स्थिति

यह एक विचारणीय प्रशन है कि O & M का कार्य पृथक् विभाग द्वारा किया जाए अथवा वह कार्य विभागीय कर्मचारियों द्वारा ही किया जाए? यह तर्क दिया जाता है कि यदि विभागीय कर्मचारी O & M कार्यों का भी संपादन करें तो वे अधिक व्यावहारिक सुझाव दे सकेंगे, चूंकि उन्हें विभाग की कार्यप्रणाली का समुचित ज्ञान होता है। परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि इस विभाग को पृथक् ही रखना चाहिए। इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं।

1. **समयः** विभाग के वरिष्ठ कर्मचारियों के पास प्रायः समयाभाव रहता है इसलिए O & M गतिविधियों के सम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दे सकता। इसके विपरीत O & M के पृथक् होने से इसके कर्मचारी अपना पूरा समय दे सकते हैं और विभाग के बारे में वस्तुपरक दृष्टिकोण अपना सकते हैं।
2. **स्वतन्त्रताः** विभाग के कर्मचारी संगठन सम्बन्धी आवश्यकताओं पर इस स्वतन्त्रता के साथ विचार नहीं कर सकते जितने कि O & M विभाग के कर्मचारी कर सकते हैं। जो व्यक्ति विभाग की प्रक्रियाओं से स्वयं सम्बन्धित नहीं है उनसे हम अच्छे निष्कर्षों की आशा करते हैं।
3. **अनुभवः** O & M के अन्तर्गत कार्य करने वाले लोगों में विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव होता है जिससे वे विभाग के कर्मचारियों को नवीनतम एवं मितव्ययी विधियों से अवगत करा सकते हैं।

कर्मचारी

O & M इकाई में कार्य करने वाले कर्मचारियों का चयन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारक है। हर एक कर्मचारी एक अच्छा O & M विशेषज्ञ नहीं बन सकता। अतः O & M इकाई में कार्य करने वाले अधिकारी में निम्न गुण होने चाहिएः

1. उसमें सभी स्तरों पर लोगों में घलमिल जाने के योग्यता होनी चाहिए।
2. उसमें ऐसे गुण होने चाहिए कि वह पदाधिकारियों के उत्साहपूर्वक सहयोग प्राप्त कर सके।
3. उसमें बुद्धि तथा विचारों की कल्पना औसत से अधिक नहीं होनी चाहिए।
4. उसमें लेखन तथा मौखिक रूप से मत अभिव्यक्त की योग्यता होनी चाहिए।
5. O & M का पदाधिकारी अच्छा स्त्रोत भी होना चाहिए।
6. उसे सरकारी संगठन तथा कार्यालय का कार्य सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिए।
7. शिक्षा सम्बन्धी पृष्टभूमि की अपेक्षा O & M कार्य का उसे प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए।
8. सामान्यतः नवयुवकों को O & M इकाइयों में नियुक्त करना चाहिए। अधिक आयुवाले वरिष्ठ व्यक्तियों में नवीन विचार तथा तकनीकें ग्रहण करने की शक्ति कम होती है।

डॉ. अवस्थी एवं माहेश्वीर के शब्दों में, "O & M के व्यक्ति को धर्यवान, परिश्रमी, विचारशील, सूक्ष्मावलोकी, साहसी, समझौतावादी, चतुर तथा सहयोग करने और उसका प्रयोग करने की क्षमता युक्त होना चाहिए।"

ओ एण्ड एम तकनीकें

1. **सर्वेक्षण (Survey):** सर्वेक्षण वह मुख्य तकनीक है जिसके द्वारा कोई भी O & M विश्लेषण अपने दायित्वों का पालन करता है। सर्वेक्षण विधि से किसी संगठन की वर्तमान स्थिति के बारे में पहले सब तथ्यों को संकलित करने का प्रयास किया जाता है। इसके बाद संगठन और प्रबन्ध की समस्याओं का निर्धारण करके इनके कारणों और समाधानों का पता लगाया जाता है।

   प्रबन्ध सर्वेक्षण कई प्रकार का होता है जैसे–

   i. प्रारम्भिक सर्वेक्षण
   ii. पूरा सर्वेक्षण
   iii. संगठन सर्वेक्षण
   iv. कार्यात्मक सर्वेक्षण
   v. कार्यविधि सर्वेक्षण

   सर्वेक्षण के लिए साक्षात्कार (Interview) प्रश्नावली (Questionnaire) तथा निरीक्षण (Inspection) की विधियों का प्रयोग करते हुए सभी आवश्यक सामग्री एकत्रित कर ली जाती है। इसके बाद विश्लेषणकर्ता इस सामग्री का इस ढंग से विश्लेषण करते हैं कि संगठन समस्याएँ उत्पन्न करने वाले और अच्छे एवं बुरे तत्वों का तथा समस्याओं के मूल कारणों का पता लगाया जा सके। इस विश्लेषण के आधार पर विशेषज्ञ किसी समस्या के समाधान के बारे में अपने विभिन्न सुझाव तथा उपाय प्रस्तुत करते हैं।

2. **निरीक्षण:** O & M शाखा के विश्लेषण विशेषज्ञ विभागीय अधिकारियों के साथ मिलकर उनके कार्यालय का निरीक्षण करते हैं। कर्मचारियों के काम में सुधार के लिए और अपेक्षित मापदण्डों के अनुसार निश्चित काम कर्मचारियों से लेने के उपाय बताकर उनको सहायता देते हैं। O & M शाखा का निरीक्षण विभागाध्यक्षों के निरीक्षण से सर्वथा भिन्न होता है। इसका उद्देश्य प्रबन्धकों को इस बात में सहायता देना होता है कि किन कारणों से काम में कमी आ रही है और इसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है।
3. **फॉर्म नियन्त्रण:** आज के युग में शासन चलाने के लिए अनेक फॉर्मों (प्रपत्रों) की आवश्यकता होती है। फॉर्म नियन्त्रण का लक्ष्य यह है कि सरल फॉर्मों के माध्यम से उत्तम कार्यों पद्धति प्राप्त की जाए। इसके लिए O & M इकाई अनेक कदम उठाती है। उदाहरणार्थ–अनावश्यक फॉर्मों को हटा देना, आवश्यक फॉर्मों के स्वरूप में सुधार करना, फॉर्मों के छापे जाने में मितव्ययिता के सुझाव देना आदि।
4- **कार्य–माप:** यह ऐसी रीति है जिससे किसी कार्यालय द्वारा किए जाने वाले कार्यों तथा इसे करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति अपना पूरा कार्य ठीक ढंग से निश्चित अवधि के भीतर पूरा

कर रहा है या नहीं। इसमें एक ओर तो किसी नापे जाने वाले कार्य की सही व्याख्या और लक्षण किया जाता है तथा दूसरी ओर इस कार्य को करने में लगाए जाने वाले काम के घण्टों का पूरा हिसाब रखा जाता है। यह तकनीक यान्त्रिक और ऐसे लिपिकीय कार्यों में सफलतापूर्वक प्रयुक्त की जा सकती है, जिसमें किसी कार्य को बार–बार दोहराया जाता है। इस तकनीक की सफलता इस बात पर निर्भर है कि किए जाने वाले कार्य के तथा काम के घण्टों का पूरा प्रामाणिक तथा विस्तृत रिकार्ड रखा जाए।

कार्यमाप के लिए तीन प्रकार की पद्धतियाँ प्रचलित हैं–

i. परीक्षण करने और गलती करके सीखने की पद्धति
ii. सांख्यिकीय पद्धति
iii. समय अध्ययन

इसमें तीसरी विधि का प्रयोग बार–बार दुहराई जाने वाली ऐसी यान्त्रिक क्रियाओं के लिए होता है, जो बड़े कारखानों में उत्पादन के लिए प्रयोग में लाई जाती है। यह कार्य–माप प्रबन्धकों के लिए बड़ी उपयोगी पद्धति है, क्योंकि इसकी सहायता से प्रबन्धकों को यह पता लग जाता है कि किसी निश्चित समय में एक व्यक्ति द्वारा कितना कार्य किया जा सकता है। इसके आधार पर वह अपने समूचे कार्य की योजना और बजट बना सकता है और पहले से ही यह निश्चित कर सकता है कि किस काम को कितनी अवधि में पूरा किया जा सकता है।

5. **कार्य सरलीकरणः** प्रक्रिया के सरलीकरण द्वारा प्रबन्धक की बहुत सी समस्याओं पर काबू पा लिया जा सकता है। कार्य सरलीकरण से तात्पर्य है काम करने की कम थकान वाली विधियों का विकास करना। डॉ. अवस्थी एवं माहेश्वरी का कहना है कि '**कार्य सरलीकरण O & M का हृदय है।**' प्रबन्ध की एक प्रमुख समस्या 'लालफीताशाही' की बुराई को कम करना है। इस समस्या का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कार्य सरलीकरण से है। इसके अतिरिक्त कार्यविधि की समस्या को सरल तथा मितव्ययी बनाने की कोशिश की जाती है। इसमें प्रक्रियाओं का अनवरत् रूप से मूल्यांकन होता रहता है। कार्यसरलीकरण वितरण चार्ट तथा प्रक्रिया चार्ट का मिश्रण है।
6. **स्वचालनः** स्वचालन कार्य की विलम्ब सम्बन्धी समस्याओं को हल करने का एक उपाय है। इसमें कार्यालयों की बहुत–सी क्रियाएं मनुष्यों द्वारा न की जाकर मशीनों अथवा यन्त्रों द्वारा की जाती है, जैसे–सूची बनाना, सारणी तैयार करना, छाँटना, छिद्र करना संगणना आदि।

स्वचालन धीरे–धीरे बड़े संगठनों की कार्यविधियों का रूप बदल रहा है। कार्यालय में स्वचालन के प्रयोग के कुछ उदाहरण हैं। विद्युद्‌णु द्वारा विवरण तैयार करना (Electronic

Data Processing); छिद्रित कार्ड (Punched Card) बनाना, एकीकृत विवरण तैयार करना। इन कार्यों के लिए विद्युद्णु संगणक (Electronic Computers) काम में लाए जाते हैं।

7. **नस्तीकरण प्रणाली:** नस्तीकरण प्रणाली अभिलेखों को क्रमबद्ध अनुक्रम में व्यवस्थित करने की रीति है। नस्ती में से कोई विशेष अभिलेख सरलता से खोज निकालने के लिए यह प्रणाली आवश्यक है। नस्ती का एकमात्र लाभ यह है कि आवश्यकता पड़ने पर अभिलेख तुरन्त मिल जाते हैं। नस्ती की व्यवस्था का सीधा प्रभाव दैनिक कार्यों की गति तथा कार्यकुशलता पर पड़ता है। अनुपयुक्त नस्ती व्यवस्था से कार्यवाही में विलम्ब होता है तथा निर्णय में बाधा व कार्य में अवरोध उत्पन्न होता है। अतएव O & M इकाई कार्यालयों को नस्तीकरण के मामले में सहायता देती है और उसकी विधि सिखाती है।

   नस्ती सम्बन्धी सामग्री को चार मोटे भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

   i. ऐतिहासिक या अभिलेखीय
   ii. स्थायी
   iii. अस्थायी
   iv. केवल प्रचलित मूल्य

   अभिलेख प्रबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण तकनीक माइक्रोफिल्मिंग है।

कार्य अध्ययन

उच्चतर उत्पादन हेतु कार्य का सूक्ष्म विश्लेषण करने की क्रिया को कार्य अध्ययन कहते हैं। इसका उद्देश्य क्रमबद्ध पद्धतियों तथा किसी वैज्ञानिक तरीके से कार्य का सरलतम, सुगमतम अधिक प्रभावशाली तथा अधिक मितव्ययी मार्ग खोज निकालना है। संकीर्ण या व्यापक अर्थ में यह कार्य का विश्लेषण करने की केवल एक क्रमबद्ध तथा विवेकपूर्ण तकनीक है। इस शब्द के प्रयोग में, "पद्धति अध्ययन (Method Study) तथा कार्यमाप (Work Measurement) की तकनीकें सम्मिलित हैं जिनका प्रयोग किसी कार्य विशेष को पूरा करने में मानवीय तथा भौतिक साधनों का अधिकतम प्रयोग करने के लिए किया जाता है।" इस अर्थ में कार्य अध्ययन की पृथक् किन्तु वे अन्योन्याश्रित तकनीकें भी आती हैं जिनका नाम पद्धति अध्ययन तथा कार्यमाप है। पद्धति अध्ययन का लक्ष्य कार्य की पद्धतियों में सुधार करना है ताकि कर्मचारी वर्ग, उपकरण, लेखन–सामग्री, स्थान इत्यादि का अधिक अच्छा उपयोग हो सके। कार्यमाप का सम्बन्ध कार्यभार (Task) की कार्य वस्तु (Work-Content) से है, जो मानवीय प्रभावशीलता को निर्धारित करता है। इनमें मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं को निश्चित करने के लिए कार्यपालन में आवश्यक समय की मात्रा को माप लिया जाता है। विस्तृत अर्थ में कार्य अध्ययन शब्द के अधीन सभी "क्रमबद्ध कार्यकलाप होता है जिसका सम्बन्ध कार्य के अनुसंधान, अभिलेख माप तथा सुधार से है।" इस अर्थ में कार्य अध्ययन में कार्य के वे सभी पहलू आ जाते हैं जिनका प्रभाव उपलब्ध साधनों के उपयोग पर

पड़ता है, और इनमें संगठन का विश्लेषण पद्धति अध्ययन, कार्यमाप, कार्य सरलीकरण, प्रपत्र विश्लेषण, स्थान, कर्मचारवर्ग तथा उपकरण का उपयोग तथा कार्य अनुसंधान के अन्य तत्व आ सकते हैं। संघीय वित्त मन्त्रालय की कर्मचारी निरीक्षण इकाई इस शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ में करती है।

विशेष प्रकार के कार्य अध्ययन में तीन मुख्य तत्व होते हैं पद्धति अध्ययन, कार्य माप तथा संगठन का विश्लेषण कर्मचारी निरीक्षण इकाई में कार्य अध्ययन में व्यवहारतः तीन अन्तः सम्बन्धी तत्व होते हैं।

1. कार्य पद्धतियों य उस परीके का अध्ययन जिससे कार्य का अपेक्षाकृत सरलीकरण एवं सुधार की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। इन अध्ययनों का परिणाम यह होता है कि खर्चीले तथा प्रभावहीन कार्य की कार्यविधियाँ अधिक युक्तिपूर्ण तथा सरल पद्धतियों को अपना लेने के कारण समाप्त होती जाती है। इस प्रकार के क्रियाकलाप को पद्धति अध्ययन कहते हैं।
2. व्यक्ति और इकाई द्वारा किए गए कार्य के लिए उचित तथा वास्तविक मानदण्ड के अनुसार किए गए कार्य की मात्रा का विश्लेषण करके कर्मचारी वर्ग की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना। इस पद्धति में कार्यमाप तथा कार्य सम्पादन के प्रमापों का विकास शामिल है।
3. विद्यमान संगठनात्मक संरचना के कार्य का विश्लेषण और किसी ऐसे संगठनात्मक नमूने का विकास जिससे कार्य की संशोधित कार्यविधियों के लाभ प्राप्त हो सकें।

कार्यमाप

अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन ने इसकी इस प्रकार परिभाषा दी है। "कार्यमाप किसी विशिष्ट कार्य की विषय–वस्तु को पूरी करने के लिए आकल्पित की गई तकनीकों का ऐसा प्रयोग है जो किसी योग्य कर्मचारी द्वारा निश्चित स्तर पर उसे कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक समय निर्धारित करके किया जात है।" कार्य माप को कभी–कभी कार्य सम्पादन का मूल्यांकन या कार्य सम्पादन करत्रा विश्लेषण या कभी–कभी कार्य सम्पादन का लेखा परीक्षण भी कहते हैं। इसका प्रयोजन प्रशासन को वे साधन प्रदान करना है जिनके द्वारा वह कार्य उत्पादन तथा मानव शक्ति के बीच समुचित प्रबन्ध स्थापित कर सके। इसे किसी रूप में भी किसी कार्य में लागू किया जा सकता है। फिर भी सामान्यतः यह तकनीक ऐसे कार्य सम्बन्ध में अधिक अच्छी तरह प्रयोग में लाई जा सकती है जो मापी तथा पहचानी जा सके, तथा जिन्हें पुनरावर्तनीय इकाइयों के रूप दिया जा सकता हो। दूसरी ओर, कुछ प्रकार के क्रियाकलाप तथा/या पद ऐसे होते हैं, जो कार्य–माप की तकनीकों की आवश्यकता को नहीं समझते हैं।

इस श्रेणी में चोटी के प्रशासकीय पद अंवेषण योजना, अग्निशमन सेवा आदि सम्बन्धी कार्य आते हैं।

उद्देश्य

1. कार्य अनुसूचीयन तथा वैयक्ति दायित्वों पर उत्तम आन्तरिक नियन्त्रण।
2. आधुनिक प्रभावशाली तरीके से बजट–निर्माण, व्ययों का पूर्वानुमान तथा आवंटन।
3. पद्धति सरलीकरण तथा संगठनात्मक प्रभार के लिए आधार का निर्माण तथा भावी कार्यवाही के लिए लाभदायक आधार सामग्री प्रदान करना।
4. यथार्थ तथा उचित उत्साहवर्द्धक योजनाएँ बनाने में सहायता देना।

लाभ

1. कार्य को पूरा करने के तदर्थ मानदण्डों के स्थान पर अधिक युक्तिपूर्ण मानदण्डों की स्थापना की जाती है।
2. कार्य को कुशलतापूर्वक निपटाने के लिए मानव शक्ति और कार्यभार के बीच संतुलन स्थापित किया जाता है।
3. सम्पादित कार्य के आन्तरिक मूल्य के साथ कार्य के लिए आवश्यक कर्मचारियों के नमूने की उपयुक्तता का निर्धारण।
4. कार्य सम्पादन के लिए उपयुक्त साधनों का विकास तथा कर्मचारी वर्ग की शक्ति में सुविधा सम्बन्धी संशोधन करना।

माप की इकाइयाँ

माप की दो इकाइयाँ हैं–कार्य इकाई (Work Unit) तथा समय इकाई (Time Unit)। कार्य इकाई के चयन में माप किए जाने वाले कार्य के स्तर विशेष का प्रभाव पड़ता है। क्रिया, प्रक्रिया तथा प्रवर्तन–क्रम स्तरों का ही अधिक प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार जिस कार्य इकाई का माप करना है उसमें कार्य के ये क्रम हो सकते हैं–प्रार्थनापत्र जिसकी समीक्षा की गई हो, लिखा गया कोई पत्र या कोर्ट परीक्षित प्रमाणक (Voucher) या कोई विशेष प्रक्रिया जिसका कार्य से निकट का सम्बन्ध हो। समय इकाई प्रायः घण्टा तथा मिन्टों से सम्बन्ध रखती हैं। कभी–कभी यह आवश्यक होता है कि कार्य का सम्बन्ध समय की बड़ी–बड़ी इकाइयों से स्थापित किया जाए, जैसे एक दिन, एक सप्ताह या एक माह, किन्तु प्रायः घण्टे की इकाई का ही प्रयोग किया जाता है। कार्य इकाइयों का माप समय के अनुपात में प्रकट किया जाता है, जैसे कितने समय के भीतर कितना उत्पादन हुआ है। अनुपात यह देखकर प्रकट किया जाता है कि कार्य की एक इकाई को या कुछ इकाइयों को पूरा होने में कितना समय लगा या अनुपात इस तरह भी प्राप्त किया जा सकता है कि एक समय इकाई में

कितना कार्य हुआ, और इस प्रकार इसे हम यह कहकर भी स्पष्ट कर सकते हैं कि प्रति घण्टा या प्रतिदिन इतना कार्य हुआ है।

तकनीकें

1. अनुभवजन्य अनुमान पद्धति
2. सांख्यिकी माप या कार्य प्रतिदर्श पद्धति
3. विराम घड़ी प्रमाण द्वारा माप या समय अध्ययन पद्धति

1. **अनुभवजन्य अनुमान पद्धतिः** इस पद्धति के अन्तर्गत प्रमाप प्रायः सामान्य अवलोकन, जाँच तथा त्रुटि, अनुभव एवं पर्यवेक्षकों, प्रवर्तकों व विश्लेषकों के सम्मिलित निर्णयों पर आधारित होता है।

   इस पद्धति के लाभ हैंः

   i. इसमें जटिल वैश्लेषित तकनीकों का प्रयोग नहीं करना पड़ता।

   ii. निर्णय अपेक्षाकृत शीघ्र होते हैं तथा माप में खर्च भी अधिक नहीं होतौ

   हानियाँः इस पर निर्भर रहना संदेहपूर्ण है क्योंकि यह पद्धति कितनी ठीक रहेगी यह कहा नहीं जा सकता तथा प्रस्तावित प्रमापों के विषय में मतभेद दूर करने के लिए तथ्य न होने पर कठिनाइयाँ आती हैं।

2. **कार्य–प्रतिदर्श पद्धतिः** यह सांख्यिकी पद्धति है इसे क्रिया प्रतिदर्श भी कहते हैं जिसमें लम्बे समय तक कार्य का अवलोकन करके उसका माप प्राप्त करने के स्थान पर कार्य के प्रतिदर्शन या सैम्पल से काम लिया जाता है। इस तरीके का सिद्धान्त यह है कि यदि सैम्पल कार्य के समय के वास्तविक योग का प्रतिनिधि है और शुद्ध तकनीकों के अनुसार प्राप्त किया गया है तो एक सैम्पल माप के प्रयोजनों के लिए काफी शुद्ध होता है। सैम्पल के अवलोकन का प्रयोग करने के फलस्वरूप कार्य का परीक्षण करने में समय लगता है, और जब समुचित रीति से सैम्पल का परीक्षण किया जाता है तो कर्मचारियों को कम से कम परेशानी होती है। कार्य–प्रतिदर्श पद्धति कार्य की चेष्टाओं की विशेषताओं का अध्ययन यह देखने के लिए करना पड़ता है कि कर्मचारियों (या एक कर्मचारी) का समय किस प्रकार बाँटा गया है। कार्य के सैम्पल का लक्ष्य यह देखना है कि सम्पूर्ण प्रयत्न (Work Effect) को विभिन्न चेष्टाओं में किस प्रकार वितरित किया गया है, कितना समय उत्पादक तथा कितना अनुत्पादक है, क्या अनुत्पादक समय का अनुपात बहुत अधिक है, और क्या जितना समय व्यतीत किया गया है वह प्राप्त परिणाम के अनुसार उचित है।

3- **समय पद्धति अध्ययनः** समय अध्ययन पद्धति का प्रयोग दैनिक, पुनरावर्ती तथा बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाले प्रवर्तनों के लिए वहां किया जाता है जहां श्रम मूल्य की

इकाई का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है। इस पद्धति में विशेषतः प्रशिक्षित टेकनीशियनों की आवश्यकता होती है, और इसमें कार्य समय तथा धन काफी मात्रा में लगता है। कम प्रमाणिक कार्यों के लिए पद्धति इतनी अधिक खर्चीली है कि व्यय को देखते हुए कोई लाभ नहीं होता।

कार्य पद्धति का चरम रूप 'निर्मित विराम–घड़ी प्रमाप' है। इन मापदण्डों या प्रमापों का विकास परिष्कृत समय–माप पद्धतियों में कार्य का अध्ययन विस्तार से किया जाता है और–

i. उसका वर्गीकरण बुनियादी पत्रों तथा गतियों में किया जाता है।
ii. कार्य–सम्पादन के कुशलतम मार्ग का भी विकास किया जाता है और उसमें उपकरणों, कार्य–स्थान तथा कार्य–प्रवाह की गुंजाइश होती है।
iii. विराम घड़ी या माइक्रोमोशन अध्ययनों द्वारा विस्तार से समय दर्ज करके शुद्ध समय मूल्य प्राप्त किए जाते हैं।
iv. कार्य सम्बन्धी सारे तत्वों की गणना एकत्र करके, समय का औसत निकालकर तथा समन्वय करके तथा थकान, विश्राम के घण्टे और कार्य प्रवाह के विलम्बों से उत्पन्न अनुत्पादक समयों के लिए तत्वों को सामान्य एवं समतल करके प्रमाणिक समय–उत्पादन के अनुपात निकाले जाते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी

सूचना तकनीक के क्षेत्र में पिछले एक दशक में आई क्रांति ने अब अपना प्रभाव देखना शुरू कर दिया है। आज एक छोटे से कम्प्यूटर का पुश बटल विश्व के किसी भी कोने से सम्पर्क कायम किया जा सकता है। एक छोटे से मोबाइल फोन से आप न केवल संदेश, बल्कि चाहें तो अपने अतिगोपनीय दस्तावेज की फोटो कॉपी इच्छित व्यक्ति तक पहुँचा सकते हैं। सूचना औद्योगिक ने दैनिक कार्य–प्रणाली से लेकर चिकित्सा, स्वास्थ्य, कृषि, बैंकिग, बीमा के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन का आधार बनता जा रहा है। घर बैठे किसी भी पुस्तकालय की पुस्तक पढ़ना अथवा किसी भी चिकित्सक से परामर्श लेना अब साधारण–सी बात हो गई है। इंटरनेट के माध्यम से विश्व के किसी भी बेहतरीन डिपार्टमेंटल स्टोर से खरीदारी करना पड़ोस की दूकान से सामान खरीदनें से ज्यादा सरल हो गया है। सूचना क्रांति की ध्वज वाहक बनने वाली इस तकनीक के विभिन्न आयामों की चर्चा इस लेख में सारगर्भित रूप से की गई है।

सूचना के क्षेत्र में इस नई क्रांति का सूत्रपात 19वीं शताब्दी के टेलीग्राफ के आविष्कार के साथ हो गया था। बाद में रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीफोन, सेल्युलर फोन, कम्प्यूटर, दूर संचार उपग्रह, टेलीविजन, इंटरनेट, वीडियोफोन, प्रिंटर, मल्टीमीडिया इत्यादि ने इस प्रौद्योगिकी को वर्तमान क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान किया। इन सबमें कम्प्यूटर के बिना सूचना प्रौद्योगिकी के परिवर्तन

स्वरूप की कल्पना करना बेईमानी है। आज पूरे विश्व में औद्योगिक रूप से विकसित समाज ऐसे सूचना समाज में परिवर्तित होता जा रहा है। जो कम्प्यूटर के बिना एक सेकंड भी जीवित नहीं रह सकता। कम्प्यूटर आज सूचना–तन्त्र का एक प्रमुख हिस्सा हो गया है।

कम्प्यूटर

भारत में कम्प्यूटर का प्रवेश सन् 1950 में इकाई संसाधन मशीनों तथा डेस्कटाप कम्प्यूटर्स के रूप में हुआ जो हम उन्नत कम्प्यूटर देख रहे हैं उसकी प्रारम्भिक रूप सेवा सन् 1642 में 18 वर्षीय वैज्ञानिक ब्लेज पास्वल ने एक यान्त्रिक संगणक के रूप में प्रस्तुत किया था। इस यन्त्र का नाम पास्कल रखा गया था। सन् 1833 में ब्रिटेन के गणितज्ञ चार्ल्स बेवेज ने एक मशीन का आविष्कार किया जिसको एनेलिटिक इंजन नाम दिया गया। पूर्णतः स्वचालित इस इंजन में इनपुट, मेमोरी, अर्थमेटिक आउटपुट तथा केंट्रोल यूनिटें थी। यह मशीन 20 स्थानों तक शुद्ध और 60 जोड़ प्रति मिनट गति से गणना करती थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद गणना करने वाले यन्त्रों की बढ़ती मांग को देखते हुए अमेरीकी वैज्ञानिक डॉ. हारवर्ड माइकन ने अन्तराष्ट्रीय व्यापार कम्पनी के सहयोग से सन् 1944 में हारवर्ड विश्वविद्यालय में पहले कम्प्यूटर मार्क–1 का विकास किया। यह कम्प्यूटर चार्ल्स बेवेज के सिद्धान्त पर आधारित था। इसमें इनपुट अर्थात् आँकड़ों के भरने के लिए छिद्रित टेपों तथा कार्डों का उपयोग किया गया था। सन् 1945 में डॉ. जान माचले ने इलेक्ट्रिोनिक कैलकुलेटर तैयार किया जिसे ई. एन. आई. ए. सी. नाम दिया गया। सन् 1950 में अमेरीका के निजी उद्यमियों ने कम्प्यूटर उत्पादन के क्षेत्र में कदम रखा। लगभग इसी समय भारत में भी कम्प्यूटर ने प्रवेश किया।

कम्प्यूटर का विकास

वर्तमान में कम्प्यूटर प्रयोग किया जा रहा है वह चौथे चरण का कम्प्यूटर है। पांचवें चरण के कम्प्यूटर के विकास के लिए शोघ तथा अनुसंधान जारी है। पहले पीढ़ी के कम्प्यूटर का निर्माण सन् 1944 में किया गया था। ये वैक्यूम ट्यूब–बल्बों पर आधारित थे। इन कम्प्युटरों में इलेक्ट्रानों के प्रवाह का प्रयोग किया गया था। सन् 1948 में ट्रांजिस्टर के आविष्कार के बाद सन् 1956 में दूसरी पीढ़ी के कम्प्यूटर का विकास किया। इस कम्प्यूटर में ट्रांजिस्टर का प्रयोग किया गया। सन् 1965 में कम्प्यूटर की तीसरी पीढ़ी अस्तित्व में आई। इन कम्प्यूटरों में सिलिकॉन चिप्स का उपयोग किया गया था। अभी तक कम्प्यूटरों का प्रयोग शोधशालाओं में वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता था, किन्तु सिलिकॉन चिप्स का प्रयोग शुरू होने के बाद इसी वर्ष कम्प्यूटर बाजार में जनसाधारण के लिए उपलब्ध हुए। कम्प्यूटर की चौथी पीढ़ी सन् 1971 के बाद अस्तित्व में आई। अब वैज्ञानिक पांचवीं पीढ़ी के विकास की दशा में संलग्न है।

जनवरी 2000 में पुणे में सम्पन्न विज्ञान कांग्रेस में अप्रवासी ई. सी. जी. सुदर्शन ने लगभग 5 वर्षों के अन्दर विकसित हो जाने वाली पांचवी पीढ़ी के क्वंटम कम्प्यूटर की क्रियाविधि की जानकारी दी थी।

भारत में इंटरनेट

भारत में इंटरनेट सुविधा की शुरूआत 5 अगस्त, 1995 में हुई। 1991 में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत के साथ–साथ भारत को सूचना राजमार्ग के रूप में इंटरनेट की सुविधा मिलना भारत के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। उदारीकरण के लाभ का जन–जन तक पहुँचाने की राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत सन् 1995 से इसे जनसाधारण के लिए मुक्त कर दिया गया। पूर्व में यह सुविधा केवल शिक्षण संस्थानों, अनुसंधानशालाओं तथा सरकारी उपक्रमों का अर्नेट एवं निकनेट के द्वारा ही उपलब्ध थी।

वर्तमान भारत में इंटरनेट की सुविधा विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNL) के द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। इंटेरनेट की सुविधा प्राप्त करने के लिए एक टेलीफोन लाइन, कम्प्यूटर, मोडेम तथा इंटेरनेट तक पहुँचाने वाला सॉफ्टवेयर जिसे ब्राउजर कहते हैं, कि आवश्यकता होती है। इंटरनेट का कनेक्शन मिलने के बाद उपभोक्ता इंटरनेट पर उपलब्ध हर प्रकार की सूचना को इच्छानुसार प्राप्त कर सकता है। ये सूचनाएँ शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, व्यापार से लेकर खेलकुद, चिकित्सक से परामर्श, नौकरी की तलाश तक विस्तृत है।

भारत में विदेश संचार निगम लिमिटेड द्वारा इंटरनेट सेवा के लिए मुम्बई स्थित इंटरनेट एक्सेस नोड को अमेरीका और यूरोप के नोड के क्रमशः उपग्रह तथा समुद्र के नीचे बिछी केबिलों को जोड़ा गया है। भारत के अन्य स्थानों पर रिमोट कंट्रोल एक्सेल नोड स्थापित किए गए हैं। नोड से जुड़ाव के लिए दूर संचार निगम द्वारा इंटरसिटी लिंक का प्रयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विदेश संचार निगम द्वारा गेटवे पैकेज स्विच सर्विस (G.P.S.S.), रिमोट एरिया मैसेज नेटवर्क (RAMN), आई. नेट के डोमेस्टिक पैकेज स्विच नेटवर्क (DPSN) तथा हाई स्पीड री–सेट नेटवर्क (HRN) इत्यादि से भी जुड़ाव कायम किया जा रहा है, ताकि इसका और विस्तार दिया जा सके।

भारत में इंटरनेट का प्रवेश और विस्तार

भारत में इंटरनेट का प्रवेश हुए अभी सिर्फ 10 वर्ष ही हुए हैं। इस दृष्टि से अभी भारत में इंटरनेट के विस्तार की काफी सम्भावनाएं हैं। हमारे देश में इन्टरनेट पर उपलब्ध सुविधाओं को प्रचलित करने के लिए नित नई वेबसाइटें आ रही हैं। 1988–89 में भारत में कुल 90 हजार डाटकाम कम्पनियाँ रजिस्टर्ड थी। वर्ष 2000 के अन्त तक इन कम्पनियों की संख्या में 200 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

नवम्बर 1988 में भारत में निजी इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर (ISP) के आने से पुर्व देश में 1,70,000 इंटरनेट उपभोक्ता थे। 1999 की मई तक उपभोक्ताओं की संख्या में 1,30,000 की वृद्धि हुई। मई 1999 में ही 5,00,000 अन्य लोग इंटरनेट से जुड़ने के लिए प्रतिक्षारत् थे। इन्हें ढाँचागत सुविधाओं की कमी के कारण कनेक्शन नहीं दिया जा रहा है। नासकाम (National Association of Software and Services Company-NASSCOM) द्वारा करवाए गए ताजा सर्वेक्षण के अनुसार देश में वर्तमान इंटरनेट कनेक्शनों की कुल संख्या 6.10 लाख है। जिसके मार्च 2001 तक बढ़कर 14 लाख हो जाने की सम्भावना है। इसी अवधि में इंटरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या 21 लाख से बढ़कर 50 लाख हो जाने की सम्भावना है। नासकाम के अनुसार वित्तीय वर्ष, 1999–2000 में भारत में लगभग 450 करोड़ रूपये का सौदा ई कॉमर्स के द्वारा हुआ है। वर्ष 2000–2001 में इस सौदे में 500 प्रतिशत की वृद्धि होना सम्भावित है। फरवरी, 2000 मुम्बई में आयोजित एक पत्रकार संगठन में जानकारी प्राप्त हुई कि वर्ष 1999–2000 में देश में सॉफ्टवेयर उद्योग का कुल कारोबार 5.7 अरब डॉलर था जो वर्ष 2000–2001 में बढ़कर 8.85 करोड़ अरब डॉलर (लगभग 38,500 करोड़ रूपये) हो जाना सम्भावित है।

इन्टरनेट पर मिलने वाली सुविधाएँ

ई–मेलः ई–मेल (Electronic Mail) सूचना संप्रेक्षण का एक रूप है। इन प्रणाली में नेटवर्क के द्वारा एक कम्प्यूटर को दूसरे कम्प्यूटर से जोड़कर तत्काल सूचना को संप्रेषित करने की सुविधा प्राप्त की जाती है। एक कम्प्यूटर से भेजी गई सूचना को दूसरे कम्प्यूटर में पढ़ा जा सकता है। मुद्रित किया जा सकता है तथा आवश्यकता होने पर सुरक्षित किया जा सकता है। ई–मेल प्रणाली में मोडेम का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जब एक कम्प्यूटर सुदूरवर्ती दूसरे कम्प्यूटर के साथ संलग्न मोडेम कम्प्यूटर में भण्डारित डिजीटल सूचना कोड को टेलीफोन लाइन द्वारा एनलॉग रूप में परिवर्तित कर दूसरे कम्प्यूटर में भेजता है। दूसरी ओर दूसरे कम्प्यूटर में डिजीटल रूप में बदलकर भण्डारित करता है। इस प्रणाली में एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर में संदेश भेजने के लिए दूसरे कम्प्यूटर तक प्रेषित करना है, तो उनके पते की जानकारी होना जरूरी है। ई–मेल का महत्त्व व्यवसाय एवं औद्योगिक क्षेत्रो में सर्वाधिक है इसके प्रयोग से कम व्यय में ही संदेशों का आदान–प्रदान होता है। एक पृष्ठ ई–मेल का व्यय लगभग 5 रूपया आता है। जो फैक्स, टेलेक्स, एस.टी.डी. अथवा कूरियर से सस्ता है।

भारत में ई–मेल का सर्वाधिक प्रयोग ऑटोमोबाइल, इंजीनियरिंग के क्षेत्र में होता है। भारत में ई–मेल से अधिक तीव्र गति से संदेश पहुँचाने वाली वर्तमान में कोई सेवा नहीं है। ई–मेल के माध्यम से ध्वनि रूप में संदेश भेजने की सुविधा देने वाले टाओटाक नामक सॉफ्टवेयर के साथ एक साउंड कार्ड माइक्रोफोन तथा स्पीकर्स की आवश्यकता होती है। भारत में वर्तमान में 8

कम्पनियाँ ई–मेल सुविधा उपलब्ध करा रही हैं। इनमें वीप्रो, वीटीमेल, एक्ससेस, ग्लोबमेट, एक्स ई–मेल तथा स्प्रिंट मेल प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNL) में एकाउंट के द्वारा इन्टरनेट पर ई–मेल की सुविधा प्राप्त की जा सकती है। इन्टनेट पर ई–मेल की सुविधा का कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं देना होता है। VSNL द्वारा उपलब्ध कराई गई ई–मेल सुविधा का व्यवसायिक इस्तेमाल करने पर शुल्क देना होता है।

ई–कॉमर्सः ई–कॉमर्स इंटरनेट आधारित उपभोक्ता बाजार की एक नई कार्यप्रणाली है जिसके अन्तर्गत इन्टरनेट पर ठीक उसी प्रकार की वस्तुओं का क्रय–विक्रय किया जाता है। भारत में ई–कॉमर्स अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। फिर भी इस वर्ष ई–कॉमर्स द्वारा भारत में किया जाने वाला व्यापार 500 करोड़ रूपये तक पहुँचने की आशा है। ई–कॉमर्स के माध्यम से सेवाएं देने वाली भारतीय कम्पनियों में मुख्य हैं। अमूल, ICI तथा राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज, भारत में ई–कॉमर्स से सम्बन्धित विनियमों तथा कानूनों का अत्यधिक अभाव है जिसके कारण इस माध्यम का विस्तार नहीं हो पा रहा है। हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा ई–कॉमर्स को विस्तार की दिशा में कुछ ठोस पहल की गई है।

ई–कॉमर्स प्रणाली का मुख्य आधार इलेक्ट्रॉनिक डाटा–इंटरचेंज है जिसके अन्तर्गत आँकड़ों को परिवर्तित करने तथा स्थानांतरित करने की सुविधा होती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत ग्राहक जब वेबसाइट पर उपलब्ध सामान को पसंद करके क्रय करता है, तो उसे भुगतान के लिए कम्प्यूटर पर उपलब्ध एक फार्म भरना होता है। इस फार्म में अपना क्रेडिट कार्ड नंबर, देय राशि, पाने वाली फर्म का नाम इत्यादि सूचनाएं अंकित करनी होती हैं। फार्म के भरते ही ग्रहक के खाते से धनराशि निकलकर विक्रेता के खाते में स्थानांतरित हो जाती है। इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज के अन्तर्गत अभी हाल में एक नई प्रणाली का सूत्रपात हुआ है। इस प्रणाली के अन्तर्गत क्रेता कम्प्यूटर पर अपने डिजिटल हस्ताक्षर द्वारा चेक कहा जाता है। यह प्रणाली उन देशों में लागू है जहाँ डिजिटल हस्ताक्षर को कानूनी मान्यता मिली हुई है।

पेजिंग एवं सेल्युलरः सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व्यापारिक रूप से परिवर्तन लाने में पेजिंग एवं सेलयुलर प्रणालियों का विशेष योगदान है। इन दोनों प्रणालियों में संदेश भेजने के लिए रेडियों तरगों का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में इस प्रणाली में वैप (Wireless Application Protocal-WAP) नामक तकनीक का समायोजन कर इसे और भी अधिक सक्षम बना दिया गया है। वैप तकनीक की शुरूआत 1999 के प्रथम तिपाही में की गई है। इस तकनीक के माध्यम से सेल्युलर फोन के द्वारा इंटरनेट से जुड़ाव कायम किया जा सकता है। इसमें फैक्स तथा ई–मेल की सुविधा प्राप्त की जा सकती हैं। इधर बीच वैप का प्रसार काफी तेजी से हुआ है अब तक विश्व में लगभग 9 हजार वेवसाइटों से जुड़ने जा रही हैं। ऐअर रेल नं इंडिया टुडे ऑन वाहन,

इंडिया इंफोलाइन तथा इंडिया गाइड के साथ समझौता किया है। भारत में इंटरनेट सेवा प्रदान करने वाली सत्यम् ऑन लाइन द्वारा शीघ्र ही वैप गेटवे की स्थापना देश में की जा रही है। वैप तकनीक पर आधारित फोन गति तथा वैड विड्थ के मामले में कुछ कमजोर है। भारत में वर्तमान में G.S.S. तकनीक का प्रयोग हो रहा है जिसके माध्यम से मात्र 9.6 किलोवाइट्स प्रति सेकंड की गति से सूचनाओं का प्रेषण किया जा सकता है। मई 2000 में G.P.R.S. नाम नई तकनीक का प्रयोग शुरू हुआ है। जिसकी गति 176.2 किलोबाइट्स प्रति मिनट है। इस तकनीक के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था मोटोरोला तथा B.V.L. में एक समझौता अभी हाल ही में सम्पन्न हुआ है। जहाँ तक डाटा ट्रांसमिशन का प्रश्न है तीसरी पीढ़ी की तकनीक जिसे ब्राइबैंड मोबाइल कहा जाता है शीघ्र ही बाजार में आ चुका है।

मोबाइल फोनः देश में वर्तमान में लगभग 1.90 करोड़ लोग मोबाइल फोन का प्रयोग कर रहे हैं। इनकी संख्या में लगातार तेजी से वृद्धि हो रही है। 1999 की प्रथम छमाही में लगभग 80,000 लोग मोबाइल फोन से जुड़े, किन्तु बाद के 6 महीने में इनकी संख्या प्रतिमाह 70,000 की वृद्धि हुई है। जनवरी 2000 में लगभग 87,000 लोग मोबाइल फोन से जुड़े, जबकि फरवरी–मार्च 2000 में प्रतिमाह एक लाख लोग इस सेवा से जुड़े। एक सर्वेक्षण के अनुसार देश के सेल्युलर फोन के बाजार में 80 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। गत वर्ष सेल्युलर फोन बाजार का कुल कारोबार 2,252 करोड़ रूपये का था जिसमें हैंड सेटों के बिक्री से 536 करोड़ रूपये अर्जित किए गए।

सेटेलाइट फोनः मोबाइल अथवा सेल्युलर फोन की भांति सेटेलाइट फोन भी दूर संचार प्रौद्यागिकी की अनुपम देन है। उपग्रह आधरित मोबाइल फोन के क्षेत्र सेल्युलर फोन से कहीं अधिक विस्तृत तथा व्यापक आधार वाला होता है। सेटेलाइट फोन के माध्यम से किसी भी एक अन्य स्थान पर तुरन्त सम्पर्क कायम कर सकता है। इस प्रणाली की विशेषता यह है कि एक ही हैंडसेट से फोन, फैक्स तथा पेजिंग सेवा का उपयोग किया जा सकता है।

फैक्सः संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में फैक्स एक लोकप्रिय प्रणाली है। फैक्स का उपयोग मुख्यता दस्तावेजो को भेजने में किया जाता है। इस उपकरण की सहायता से टेलीफोन नेटवर्क के द्वारा किसी दस्तावेज को दूरवर्ती स्थान पर बिलकुल इस प्रकार से भेजा जाता है जिस प्रकार से हम किसी दस्तावेज फोटोस्टेट मशीन से प्रतिलिपि प्राप्त करते हैं। फैक्स की प्रणाली त्वरित एवं सस्ती है।

वर्ल्ड वाइड वेबः मेल के बाद इंटरनेट पर प्राप्त सर्वाधिक लोकप्रिय सुविधा वर्ल्ड वेब है। कम्प्यूटर की दुनिया में इसे W.W.W. कहा जाता है। पहले W.W.W. में केवल लिखित सामग्री ही उपलब्ध थी, किन्तु वर्तमान में अब वेब पर चित्र, कार्टून, ध्वनि इत्यादि के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यूजनेटः यूजनेट एक ऐसी सुविधा है जिसकी सहायता में नेटवर्क में निहित सूचनाओं के भण्डार को किसी पर आधारित समूह में आ जा सकता है तथा एक विषय पर रूचि रखने वाले व्यक्ति सूचनाओं का आदान–प्रदान एवं विचार–विमर्श कर सकते हैं। यह सुविधा ई–मेल सुविधा की भांति है, किन्तु इसका विस्तार अधिक है। ई–मेल सुविधा जहाँ एक से एक सीमित है। वहीं यूजनेट सुविधा एक से अधिक तक विस्तृत है।

टेलनेटः टेलनेट एक ऐसी सुविधा है जिसके माध्यम से जुड़े विश्व के किसी भी कम्प्यूटर पर 'लॉग इन' कर उस पर इस प्रकार कार्य कर सकते हैं। जैसे उक्त कम्प्यूटर का 'की–बोर्ड' आपके पास है। इसलिए इस सुविधा को 'रिमोट लॉग इन' भी कहते हैं। टेलनेट के माध्यम से विश्व के किसी भी पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तक को पढा जा सकता है और उसके किसी पेज का प्रिंट आउट भी निकाला जा सकता है।

पुशनेटः पुशनेट की सहायता से उपभोक्ता अपना संदेश इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन बोर्ड पर भेज सकता है। इस संदेश को इंटरनेट से जुड़ा कोई भी उपभोक्ता पढ़ सकता है। यद्यपि पुशनेट की सुविधा के लिए इंटरनेट की आवश्यकता नहीं होती।

ई–फैक्सः ई–फैक्स सूचना प्रौद्योगिकी की एक नई विद्या है। ई–फैक्स की सुविधा इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज के माध्यम से उपलब्ध होती है। ई–फैक्स का उदाहरण फैक्स मशीन के साथ नेटवर्क डिवाइस जैसी एक छोटी सी युक्ति लगाने मात्र से काम करने लगता है। जब कोई दस्तावेज ई–फैक्स मशीन पर रखा जाता है, तो स्वयं उस पते को खोज लेता है जहाँ उस दस्तावेज को भेजना होता है। यदि दस्तावेज को एक साथ कई स्थानों पर प्रेषित किया जाना है, तो सर्विस प्रोवाइडर इसे एक साथ प्रेषित कर देता है। ई–फैक्स मशीनों की प्रेषण गति सामान्य फैक्स मशीनों की तुलना में काफी अधिक होती है। इससे समय की काफी बचत होती है। ई–फैक्स अभी भारत में अधिक प्रचलित नहीं हो पाया है।

टेलीटेक्स्टः यह वास्तव में एक ऐसी इलेक्ट्रानिक पत्रिका है। जिसे घर बैठे कम्प्यूटर स्क्रीन पर सबसे पहले सूचनाओं की क्रम सूची आती है, जिसे देखकर यह जाना जा सकता है कि किस विषय से सम्बन्धित सूचना किस पृष्ठ पर है इसके द्वारा रेलवे की समय–सारणी, बाजार भाव, शेयर बाजार, समारोहों, बैठकों, टेलीफोन डायरेक्टरी, विमानों की समय–सारणी इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। भारत में टेलीटेक्स्ट सेवा दुरदर्शन, इलेक्ट्रॉनिक विभाग तथा भारत सरकार के उपग्रह नेटवर्क के लिए स्थापित भारतीय राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र के संयुक्त प्रयास से किया गया है। सभी सूचनाओं का हर समय अद्यतन बनाए रखने तथा उपलब्ध कराने के लिए सूचना बैंक की स्थापना की जा रही है। यह केन्द्र सभी संस्थाओं तथा एजेंसियों की सूचनाओं को अद्यतन रूप से प्राप्त कर मेमोरी में संगृहीत करेगा तथा इनका प्रेषण करेगा।

वर्तमान में देश में यह सुविधा अंग्रेजी में चुने हुए स्थानों पर प्राप्त है। शीघ्र इस सुविधा को हिन्दी भाषा में भी दिए जाने की योजना है।

मल्टी–मीडिया: यह एक तकनीक है जो वर्तमान में आधुनिक कम्प्यूटर का एक आवश्यक अंग बन चुका है। पूर्व में मल्टी–मीडिया का अर्थ संचार के विभिन्न साधनों के मिलेजुले स्वरूप में लगाया जाता था, किन्तु सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इस शब्द का अर्थ एक ही कम्प्यूटर पर टेक्स्ट, ग्राफिक्स, एमीनेशन, ओडियो, विडियो इत्यादि सुविधाओं के प्राप्त होने से लगाया जाता है। इस तकनीक से युक्त कम्प्यूटरों पर टेलीविजन के कार्यक्रम देखे जा सकते हैं, संगीत सुना जा सकता है। C.D. लगाकर विभिन्न विषयों की जानकारी ली जा सकती है। आम व्यक्तिगत कम्प्यूटरों की तुलना में मल्टी–मीडिया कम्प्यूटरों में ध्वनि ब्लास्टर कार्ड, स्पीकर माइक्रोफोन एवं कांपैक्ट डिस्क ड्राइव शामिल होता है, जिन्हें संयुक्त रूप से मल्टी–मीडिया प्रोग्राम का प्रयोग किया जाता है। जिसे C.D. ROM कहा जाता है।

उत्पादन सूचना मनोरंजन शिक्षा तथा सृजनात्मक कार्यों में मल्टी–मीडिया का जबरदस्त उपभोग है। यह प्रोग्राम दो तरह के हो सकते हैं। लीनियर तथा इंटरएक्टिव प्रोग्रामों में विषय की प्रस्तुति एक बंधे बंधाए रूप में होती है। इस उपभोक्ता का कोई हस्तक्षेप नहीं होता, जबकि इंटरएक्टिव प्रोग्रमों में उपभोक्ता हस्तक्षेप कर सकता है। इसकी डिजिटल तकनीक ने मनोरंजन के क्षेत्र में जबरदस्त क्रांति लाई है। फिल्मों तथा विज्ञापन फिल्मों में काल्पनिक दृश्यों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाना आज मल्टी–मीडिया के कारण ही सम्भव हुआ है। बहुचर्चित फिल्म (जुरासिक पार्क) के अधिकांश दृश्य इसी तकनीक के द्वारा तैयार किए गए हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी: सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए क्रोतिकारी परिवर्तनों ने अब शिक्षा का पाठशालाओं और विश्वविद्यालय के दायरे से निकालकर कम्प्यूटर और उसके बटन पर लाकर समेट दिया है। शिक्षा की इस पद्धति को ऑन लाइन एजुकेशन अथवा साइबर शिक्षा कहा जाता है। ऑन लाइन एजूकेशन को आमतौर पर तीन चरणों में बांटा जा सकता है। एक तो कम्प्यूटर पर डिस्क लगाकर शिक्षा प्राप्त करना, तीसरा इच्छानुसार विषय से सम्बन्धित शिक्षक से कम्प्यूटर द्वारा सम्पर्क स्थापित कर तथा वार्तालाप कर शिक्षा प्राप्त करना। विश्व स्तर पर होमवर्क हेल्प डाटकॉम, गेट ऐजूकेटेड डाटकॉम तथा टेक्स्वट प्रेप हेल्प डाटकॉम इत्यादि कई वेबसाइटों पर शिक्षा देने का काम हो रहा है। भारत में इस माध्यम से शिक्षा तथा प्रशिक्षण देने का काम करने वाली संस्थाओं की वेबसाइटों में प्रमुख हैं। styluinc.com, स्कूल नेट इंडिया डाटकॉम, कैरियर लांचर डाटकॉम, आई. आई. टी. बंगलौर तथा एन. आई. आई. टी. बंगलौर द्वारा पिछले वर्ष ही ऑन लाइन एजूकेशन की व्यवस्था की शुरूआत की गई है।

इसके अतिरिक्त इनटेल एच. सी. एल. इंफोसिस्टम सफल, माइक्रोसॉफ्ट तथा नेशनल इंस्ट्रीट्यूट ऑफ इंफोर्मेशन टेक्नोलॉजी द्वारा भी इस दिशा में तेजी से कार्य किया जा रहा है। इंटरनेट पर

अनेक ऐसी वेबसाइटें मौजूद हैं जिनका उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जा सकता है। विश्व की अधिकांश बड़ी तथा प्रसिद्ध लाइब्रेरियां इंटरनेट से जुड़ चुकी हैं। जिनकी पुस्तकों को किसी भी समय न केवल पढ़ा जा सकता है, बल्कि उनका प्रिंट आउट भी निकाला जा सकता है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार

भारत का दूरसंचार नेटवर्क एशिया के विशालतम नेटवर्कों में लगभग 1,49,000 किमी० रेडियो प्रणाली तथा 1,08,032 किमी० लम्बी आप्टिक फाइबर प्रणाली कार्यरत है। देश के 18,000 से अधिक केन्द्र एन. एस. डी. सुविधा तथा विश्व के लगभग सभी देशों के लिए आई. एस. डी. सुविधा उपलब्ध है। अन्तराष्ट्रीय जगत् में संचार प्रणाली में आते हुए बदलाव तथा उदारीकरण के प्रति विश्व के अन्य देशों की नीतियों में आए परिवर्तनों को देखते हुए भारत को भी सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित अपनी नीतियों में बदलाव लाना पड़ा।

1994 में इंटरनेट सुविधा प्राप्त करने के बाद 15 अगस्त, 1995 में यह सुविधा विदेश संचार निगम लिमिटेड के अन्तर्गत करते हुए जनसाधारण के लिए मुक्त कर दी गई। 1994 में ही देश के लिए नई दूरसंचार नीति की घोषणा की गई। नीति में सुचना प्रौद्योगिकी संयोजन पर विचार करते हुए एक आधुनिक और कुशल दूरसंचार बुनियादी ढाँचे का निर्माण कर भारत को सुचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर करने के लिए प्रतिबद्धता की घोषणा की गई। वर्तमान सरकार द्वारा सत्ता प्राप्त करने के तुरन्त बाद घोषित राष्ट्रीय एजेंडा में सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के लिए आधारभूत ढाँचे को उपलब्ध कराने की बात की गई थी। इसी के तहत योजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष जसवंत सिंह की अध्यक्षता के सुचना प्रौद्योगिकी पर कार्यदल का गठन किया गया था।

इस कार्यदल में 3 नवंबर, 1998 को अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रधानमन्त्री को सौंपी थी। कार्यदल द्वारा इसके पूर्व जुलाई 1998 में एक अंतरिम रिपोर्ट में सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग को ढाँचागत उद्योग का दर्जा देने तथा सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित इकाइयों को शुल्कमुक्त आयात की अनुमति देने की अनुशंसा की गई थी। इसके अतिरिक्त कार्यदल में कम्प्यूटर तथा सॉफ्टवेयर के निर्माण में संलग्न कम्पनियों को 6 वर्ष के लिए मुक्त करने की अनुशंसा भी की थी। इसके अतिरिक्त देश में सूचना प्रौद्योगिकी को पर्याप्त रूप में विकसित होने के लिए आवश्यक सुविधाएं मुहैया कराने की सिफारिश भी कार्यदल ने की थी। कार्यदल की संस्तुतियों में से अधिकांश संस्तुतियों को केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृति दे दी गई है। इसके साथ ही केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 1999 में देश में प्रति 500 व्यक्ति पर एक पर्सनल कम्प्यूटर की उपलब्धता थी। सॉफ्टवेयर तथा सेवाओं के निर्यात का लक्ष्य वर्ष 2008 तक प्रतिवर्ष 50 अरब डॉलर का कर देने का निर्धारित किया गया है। वर्ष 1999–2000 में देश में सॉफ्टवेयर उद्योग का कुल कारोबार 5.7 अरब डॉलर का था। जो वर्ष 2000–2001 में बढ़कर 80.85 अरब डॉलर तक हो जाना सम्भावित है। विश्व से सॉफ्टवेयर

उद्योग में भारत का अंश भाग 0.5 प्रतिशत है जिसे 22 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

देश में वर्तमान में इंटरनेट कनेक्शनों की संख्या लगभग 7 लाख है। जो वर्ष 2000–2001 में बढ़कर 14 लाख हो जाने की सम्भावना है। इसी अवधि में देश में इंटरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या वतैमान स्तर 21 लाख से बढ़कर 50 लाख हो जाने की सम्भावना है। इसी प्रकार देश में सेल्युलर फोन के उपभोक्ताओं की संख्या मार्च 1999 में 10 लाख थी, जो फरवरी 2000 में बढ़कर 15 लाख हो गई है। देश में सेल्युलर फोन एक इस्तेमाल को बढ़ावा देने के उद्देश्य से वर्ष 2000–2001 के बजट में इसके आयात शुल्क को 25 प्रतिशत से हटाकर 5 प्रतिशत तक कर दिया गया है।

देश में सुचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक सार्थक पहल करते हुए गत 16 मई, 2000 को लोकसभा द्वारा सुचना प्रौद्योगिकी विधेयक 2000 पारित किया गया है। राज्यसभा द्वारा 17 मई, 2000 को इस विधेयक को पारित करने के बाद यह विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति की प्रतीक्षा में है इस विधेयक के अन्तर्गत ई–मेल, इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेज तथा डिजिटल हस्ताक्षरों को कानूनी मान्यता दी गई है। साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बढ़तें साइबर अपराधों पर रोक लगाने के लिए कड़े दण्ड का प्रावधान किया गया है। देश में सूचना प्रौद्योगिकी के समुचित विकास के लिए इस विधेयक की आवश्यकता पिछले 5 वर्षों से महसूस की जा रही थी। इस विधेष्क के अधिनियक बन जाने से देश में सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग का जबर दस्त विस्तार मिलने की सम्भावना है।

3.4.4 निष्कर्षः–

किसी भी लोकतान्त्रिक देश के लिए यह आवश्यक है कि वह नागरिकों की आवश्यकताएँ व राष्ट्रीयहितों को समय पर पुरा करें और यह भी हो सकता है जब प्रशासन अपना कार्य राजनीतिक कार्यपालिका के अनुभव समयबद्ध तरिके से पूर्ण करें। आज प्रशासन मानव जीवन के हरेक पहलू से सम्बन्ध रखता है। नागरिक प्रशासन को एक ऐसे एजेंट के रूप में देखता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए है एवं उसकी आकाक्षांओं और लक्ष्यों तक पहुँचने में उसकी सहायता करता है। उतरोक्त के लिए कृत्रिम तौर से लाए गए परिवर्तन को प्रशासन में प्रशासनिक सुधार कहते हैं। परम्परागत प्रशासनिक संगठन के ढ़ाँचे में निरन्तर सुधार विकास प्रशासन की माँग है तथा कर्मचारियों की कार्य संस्कृति में भी निरन्तर सुधार चलता रहना चाहिए ताकि प्रशासन ठिक से राजनीतिक कार्यपालिका के लक्ष्यों को पुरा करने में मदद करता है। प्रशासन में निरन्तर संरचनात्मक प्रक्रियात्मक और व्यवहारात्मक सुधार चलते रहते हैं। प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए। भारत में प्रशासनिक सुधारों की प्रकृति अनेक पहलूओं से प्रभावित रही हैं, उनका विश्लेषण ठिक से चलता रहना चाहिए। प्रशासनिक सुधार के लिए भारत में निरन्तर निम्न समितियों का गठन किा गया है जैसे गोरवाल रिपोर्ट, (1951)

गोपालस्वामी प्रतिवेदन (1952), पाल.एच.एवलबी का प्रतिवेदन (1953, 1956), प्रशानिक सुधार आयोग (1966) आदि। इन सबकी विशिष्ट जानकारी प्रशासको को रखनी चाहिए। संगठन तथा पद्धति माडल किस प्रकार सहयोग कर सकता है यह भी प्रशासनिक सुधारकों को ध्यान में रखना चाहिए। सूचना प्रौद्योगिकी की विशेष योगदान भी इस सन्दर्भ में सकारात्मक आँकना चाहिए।

3.4.5 मुख्य शब्दावली:–

1. संगठन एवम् पद्धति
2. प्रशासनिक सुधार
3. सूचना और प्रौद्योगिकी
4. प्रशासनिक सुधार आयोग
5. गोपालस्वामी प्रतवेदन

3.4.6 अभ्यास के लिए प्रश्न :– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशानिक सुधार से क्या अभिप्राय है?
2. पाल. एच. एपलबी रिपोर्ट क्या है?
3. गोपालस्वामी प्रतिवेदन की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करें।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में प्रशासनिक सुधार किस तरह आगे बढ़ रहें हैं इसके इतिहास विकास की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सुझाये गए विभिन्न पहलूओं पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. संगठन एवम् पद्धति माडल (o&m) की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करें।

सन्दर्भ सूची

1. वुडरो विल्सन, दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्टेसन, पोलिटिकल सांइस क्वार्टरली, नं० 2, जून, 1887
2. एल. डी. व्हाईट, इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1926
3. फ्रेंक जे. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1900
4. लूथर गुलिक एवं लैंडल उर्विक, पेपरस ऑन दी सांइस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937

5. अवस्थी एवं महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1983
6. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2002
7. एच. ई. मेकर्डी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए बिबलियोग्राफिक गाइड टू दी लिटरेचर, डेक्कर, 1986
8. जी.ए. ग्रहाम, ट्रेण्ड इन टिचींग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 10, 1950
9. अच. जी. फ्रैडरिक्सन, दी डाइमेन्सन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, 1979
10. आर. सी. चॉदलर एण्ड जे. सी. पलानो, दी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डिक्सनरी, न्यूयार्क, 1982
11. राबर्ट गोलम्ब्यूहकी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डवलपिंग डिसिपलिन, न्यूयार्क, 1977
12. एस. आर. महेश्वरी, प्रशासनिक सिद्धान्त, मेकमिलन, 2003
13. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
14. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
15. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
16. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
17. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
18. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
19. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
20. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
21. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
22. डवाइट वाल्डो (सम्पादित) आइडियाज एण्ड इसूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1953
23. लक्ष्मीनारायण, पब्लिक इन्टरप्राईज मनेजमेंट एण्ड प्राइवेटाइजेशन, 2003
24. पॉल एपलबी, बिग डेमोक्रेसी, न्यूयार्क, 1945
25. जी. टल्लोक, दि पोलिटिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी, वाशिंगटन, पब्लिक अफेयर प्रैस, 1965
26. जे. हारबटमैस, दि स्ट्रकचरल ट्रांसफोरमेसन्स ऑफ दि पब्लिक सफियर, लन्दन, पोलिसी प्रैस, 1989
27. एन. जे. साथर, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन इन दि अमेरिका, न्यूयार्क सैन्टमारटिन्स, 1975
28. आर.एस. लोच, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन्ट पाल, मिनोसोटा, वैस्ट पब्लिसिं, 1978
29. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010

30. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
31. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
32. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
33. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
34. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

इकाई – 4

शिकायत निर्वारण संस्थाएं, पंचायत और उदारीकरण

4.0 इकाई की भूमिकाः–

किसी भी लोकतान्त्रिक देश लोक प्रशासन का मुख्य उदेश्य नागरिकों की शिकायतों का समाधान करना होता है, यही उसकों प्रशासनिक संस्कृति का एक अभिन्न अंग होता हैं। दोनों के आपसी सम्पर्को में जितनी वृद्धि हाती है। सरकारी नियन्त्रण और कानूनी दायरा बढ़ता चला जाता है। नागरिकों और प्रशासन तनाव के करे कारण हो सकता हैं। कर्मचारी का व्यक्तिगत व्यवहार प्रशासनिक ढ़ाँचा या प्रशासनिक प्रक्रिया तथा कायदे कानून इस अलगाव के कारण बन सकते हैं। प्रशासन नागरिकों की जरूरतों को पूरा नही कर पाता तो अंसतोष उत्पन्न होता है। नागरिक इस कार्य को सरकार का दमन पूर्ण नीतिगत व्यवहार मानती है और नागरिक दबाव समूह और हीत समूहों के द्वारा सरकार पर किन नीति निर्माण के लिए प्रयास करते हैं। इस इकाई में हम सरकार के शिकायत निर्वारण संस्थाओं का अध्ययन करेंगे। जनता का पंचायती देखेगें तथा साथ–साथ आज के उदारिकरण के दौर में लोक प्रशासन पर इसका प्रभाव भी विश्लेषित करेगें। देश की संसद और मंत्रालय नीति की समस्या का प्रथम स्तर पर ही निवारण करने का प्रयास करते हैं। न्यायिक उपायों की दृष्टि से न्यायलय इसके लिए ढ़ाँचागत उपचार में पूर्ण प्रयास करते है न्यायालय संविधान द्वारा प्रथम की गई 'रिटों' के माध्यम से जाता की शिकायतों का निर्वारण करने का प्रयास करते है जैसे बंदी प्रत्पक्षकिरण, परमादेश निषेद और अधिकार पृच्छा आदि, इसके अतिरिक्त लोक हित मुकदद्ें प्रशासनिक ट्राइब्यूनल, उपयोक्ता झगड़े निवारण संगठन भी इसके लिए लगातार प्रत्यत्न करते हैं। देश में औम्बड्समैन के नाते लोकपाल व लोकायुक्त की व्यवस्थाओं के माध्यम से प्रयास करते है। भारत में 279 में लोकपाल की स्थापना के द्वीप स्तर पर हो चुकी है तथा लगभग सभी राज्यों में लोकायुक्तों की स्थापना की जा चुकी है ताकि सभी राज्यों में राज्य स्तर पर ही समस्याओं का निदान हो सके। इसके अलावा प्रशासनिक सुधार आयोग ()भी लगातार अपनी सिपारिसें करता रहता है।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की भावना को ध्यान में रखते हुए, राज्यके नीति–निर्देशक सिद्धान्तों के निदेशों पर देश में बलवंत राय महता रिपोर्ट के आधार पर तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए पंचायती राज की स्थापना त्री–स्तरीय आधार पर राजस्थान के नागौर में 2अक्टूबर 1959 में पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गई।

भारत में उदारीकरण का दौर 1990 के बाद शुरू हुआ और पी.वी. नरसिम्हा राव व मनमोहन सिहं ने इसकर प्रारम्भ आर्थिक उदारीकरण के रूप में किया। भारत की अर्थव्यवस्था को विश्व

की अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा गया। प्रशासनिक दृष्टि से भारत प्रशासनिक संस्कृति इससे काफी प्रभावित हुई। इस इकाई में हम यह भी अध्ययन करेगें कि मण्डलीकरण का लोक प्रशासन पर क्या प्रभाव पड़ा।

4.1 इकाई के उदेश्यः–

1. प्रशासनिक संस्कृति में शिकायत निवारण संस्थाओं की प्रक्रियात्मक गतिविधियों का मूल्यांकन करना।
2. भारत में लोकपाल व लोकायुक्त की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करना।
3. भारत में पंचायती राज की सफलताओं व असफलताओं का मूल्यांकन करना।
4. लेक प्रशासन पर उदारीकरण के प्रभावों को सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलूओं के मध्यनजर विश्लेषित करना।
5. उन कानूनी संस्थाओं का मूल्यांकन करना जो नागरिकों की शिकायतों कों इसके लिए बनाई गई है।

4.0

शिकायत निर्वारण संस्थाएँ

(Grievance Redressal Institutions)

4.2.1 परिचयः–

आज दैनिक जीवन में नागरिकों और प्रशासन के बीच निरंतर सम्पर्क रहता है। किसी प्रशासनिक विभाग के साथ नागरिक सम्पर्क के कई उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे पानी की सप्लाई, बिजली का कनेक्शन और स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त करने जैसे सामान्य काम तथा किसी मामले में सलाह और मदद लेने अथवा ऋण, बीज, उर्वरक आदि लेने जैसे व्यक्तिगत काम। सम्पर्कों में जितनी वृद्धि होती है, सरकारी नियन्त्रण और कायदे कानून भी उतने ही बढ़ते चले जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि इन्हीं नियन्त्रणों के दौरान प्रशासक की छवि बनती या बिगड़ती है। जगन्नाथ और मखीजा ने स्पष्ट किया है, "प्रशासन की छवि का बनना–बिगड़ना बहुत कुछ इन सम्पर्कों पर ही निर्भर करता है। अहं और घमंड भरा रुख, चिढ़ जाना, असभ्य व्यवहार, उचित उत्तर न देना, रूखे तरीके से किसी काम के लिए मना करना, काम टालना और देरी करना–ये सब बातें नागरिकों की दृष्टि में प्रशासक की छवि खराब करती है।" नागरिकों और प्रशासकों के बीच अलगाव के कई कारण हैं। व्यक्तिगत व्यवहार प्रशासनिक ढाँचा या प्रशासनिक प्रक्रिया तथा कायदे–कानून इस अनगाव के कारण बन सकते हैं। लोगों की अपेक्षाओं और प्रशासन की कार्यकुशलता में बहुत अन्तर होने से नागरिकों में असंतोष पैदा होता है। आधुनिक काल में यह बात काफी आम हो गई है। यही असंतोष अक्सर शिकायत का रूप ले लेता है। इसका मतलब है कि नागरिक किसी स्थिति को गलत और दमनपूर्ण मानता है। कभी–कभी जब सरेारी नीतियाँ समाज के किसी संगठीत समूह के हितों के प्रतिकुल जाती हैं, तो नागरिकों को नीति से ही शिकायत हो जाती है। इन शिकायतों का समाधान यही है कि विभिन्न दबाव ग्रुपों के जरिए सरकार पर जोर डालकर नीतियाँ बदलवायी जाएँ या उनमें अपेक्षित सुधार किया जाए।

लोग सामान्यतः यह भी सोचते हैं कि नीतियों पर उचित तरीके सक अमल नहीं किया जा रहा है। कई बार प्रशासनिक प्रक्रिया बड़ी बोझिल और काम करने का तरीका अन्यायपूर्ण लगता है। भ्रष्टाचार के कारण राजनीति और प्रशासन में ईमानदारी तथा निष्ठा की कमी एक अन्य समस्या है। कायदे–कानून का कट्टर तरीके से पालन, नागरिकों की शिकायतों तथा प्रतिवेदनों की प्राप्ति

तक स्वीकार न करना, विभिन्न मामलों के निपटान में अनावश्यक देरी आदि से लोगों का प्रशासन में विश्वास उठ जाता है।

4.2.2 उदेश्यः–

1. भारतीय प्रशासनिक ढ़ाँचे में नागरिकों की शिकायत निवारण संस्थाओं की जानकारी प्राप्त करना।
2. भारत में शिकायत निवारण के लिए विधानमण्डलों के योगदान का विश्लेषण करना।
3. वर्तमान में भारत के सन्दर्भ में लोकपाल व लोकायुक्त की स्थिति का आँकलन करना।
4. भारत में मंत्रालय/विभाग स्तर पर शिकायते दूर करने की प्रणाली को जाँचना।
5. नागरिक अधिकारों के दायरे में रहने वाली 'रिटों' की जानकारी प्राप्त करना जो शिकायत निवारण के लिए भारतीय नागरिकों को दी गई है।

4.2.3 शिकायत निवारण संस्थान – लोकपाल एवं लोकायुक्त :–

मोहित भट्टाचार्य के अनुसार, प्रशासन के प्रति लोगों की आम धारणा में निम्न बातें शामिल हैं–

1. कर्मचारियों, खास तौर से निचले स्तर के कर्मचारियों की मदद न करने का रवैया
2. नागरिकों को अपना काम करवाने की सही सरकारी प्रक्रिया की जानकारी न होना
3. अनावश्यक देरी और इंतजार
4. प्रशासन में पक्षपात
5. कर्मचारियों में भ्रष्टाचार
6. काम करवाने में बिचौलियों पर भरोसा करना
7. प्रशासन में गरीबों और अमीरों के बीच भेदभाव–अमीर लोगों की प्रशासन में पहुँच होती है और कर्मचारियों की आम प्रवृत्ति गरीबों को टालने और उनकी जरूरतों और हितों को अनदेखा करने की होती है।

डब्ल्यू० ए० रौबसन (W.A. Robson) के अनुसार, "आम नागरिक यह सोचता है कि नौकरशाही अभी भी परम्परागत बुराइयों से मुक्त नहीं हुई है। अधिकारियों में खुद को बहुत बड़ा समझने की प्रवृत्ति होती है–या वे अपने पद का नाजायज लाभों के बारे में सोचते हैं। नागरिकों की सुविधाओं और भावनाओं के प्रति वे बिलकुल उदासीन होते हैं। कायदे–कानून और औपचारिकताओं का पालन वे सनक की हद तक करते हैं। लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में शासकों और लोगों के बीच जो सम्बन्ध होने चाहिए, वे उन्हें नहीं समझ पाते।" अगर प्रशासन के प्रति नागरिकों के असंतोष को दूर करने के प्रयास नहीं किए गए तो इससे समाज में व्याप्त तनाव और अव्यवस्था और बढ़ जाएगी। इससे विकास की गतिविधियों में नागरिकों का सहयोग भी मिल सकेगा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, सरकार हर स्तर पर

नागरिकों की शिकायतें दूर करने का प्रयास कर रही है। प्रशासनिक सुधार समिति ने नागरिकों की शिकायतें दूर करने के बारे में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट में कहा है कि अगर देश की शक्ति उसकी समृद्धि में निहित है तो लोकतन्त्र की सुरक्षा और स्थिरता नागरिकों के सन्तुष्ट होने पर ही निर्भर करती है।

नागरिकों की शिकायतें दूर करने के तरीके

(Methods)

अब तक हमने नागरिकों और प्रशासन के सम्बन्धों के बदलते स्वरूप और नागरिकों के प्रशासन के प्रति असंतोष के कारणों की चर्चा की। जैसा कहा जा चुका है कि सरकारी गतिविधियाँ बढ़ने के साथ–साथ नौकरशाही जीवन के हर पक्ष में छा गयी है। उच्च सरकारी अधिकारियों ने भी नागरिक प्रशासन की समस्याओं को महसूस किया है और इन समस्याओं का समाधान तलाशने के लिए समय–समय पर समितियाँ और आयोग बनाये जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए भारत में 1962 में भ्रष्टाचार रोकने के उपाय समझने के लिए संथानम (Santhanam) समिति गठित की गई। समिति की राय थी कि सरकारी कर्मचारियों को विभिन्न स्तरों पर अनेक विवके से निर्णय लेने के जो अधिकार दिये गये हैं, उनके इस्तेमाल से "लोगों को परेशान करने, अनियमितताएँ बरतने और भ्रष्टाचार" की गुंजाइश बनती है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने लोगों की इन शिकायतों पर भी गौर किया कि प्रशासन में भ्रष्टाचार, व्यापक स्तर पर कार्यकुशलता के अभाव तथा जनता की जरूरतों पर ध्यान न देने की प्रवृत्ति है। ऐसी स्थितियों के हावी होने की स्थिति में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि अगर किसी प्रशासक किसी नागरिक के मामले न्यायपूर्ण और वैध तरीके से नहीं निपटाता तो क्या कर सकता है। इसलिए यह जरूरत महसूस की गई कि नागरिकों की शिकायतें दूर करने के उचित तरीके निर्धारित किए जाए और ऐसी कारगर संस्थागत मशीनरी बने जो नौकरशाही को नियन्त्रण में रखे और कुप्रशासन को जनता कर जरूरतों के अनुरूप काम करने वाले प्रशासन में बदलें।

यह कहा जा सकता है कि लोकतन्त्र में चुनाव ऐसे दीर्घकालीन उपाय हैं जिनके जरिये जनता सत्ता को अपने नियन्त्रण में रख सकती है। मताधिकार नागरिकों का ऐसा शक्तिशाली हथियार है जिससे वे अपनी अपेक्षओं के अनुरूप काम न करने वाली सरकार को सत्ता से हटा सकते हैं। लेकिन यह उपाय पांच साल में केवल एक बार ही किया जा सकता है इसलिए इससे नागरिकों की तत्कालिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता।

भारत में नागरिकों के पास प्रशासन पर नियन्त्रण रखने के मुख्य रूप से तीन महत्त्वपूर्ण तरीके या रास्ते हैं। ये हैं–विधायिकाओं के जरिए, न्यायालयों के जरिए तथा प्रशासनिक उपाय।

इनके अलावा, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और नागरिकों की शिकायतें दूर करने के लिए अनेक संस्थाएँ भी हैं, जैसे केन्द्रीय सतर्कता आयोग, लोकपाल, लोकायुक्त आदि। अब हम इन तरीकों की चर्चा करेंगे।

संसद/विधानमण्डलों के जरिए शिकायतें दूर किया जाना

आधुनिक संसदीय लोकतन्त्रों का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है कि संसद/विधायिका को नागरिकों की शिकायतें दूर करने का मंच माना जाता है। भारतीय संसद नागरिकों के विशाल समूह की शिकायतों पर चर्चा करने का उपयोगी मंच रही है। राज्यों में भी, नागरिक अपनी शिकायतों के जल्दी निपटाने के लिए विधानमण्डलों का सहारा लेते हैं। शिकायतों को संसद/विधायिकाओं में प्रश्नों, विशेष बहसों, स्थगन बहसों और विधायी समितियों के जरिए उठाया जाता है। अब हम इनमें कुछ संक्षेप में चर्चा करते हैं।

1. **संसदीय प्रश्नः** संसदीय प्रणाली की सरकार में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि संसद में प्रश्नकाल के दौरान सरकार की कमियों को बताते हैं। जब संसद का सत्र चल हो रहा होता है तो जनता से जुड़े कई मामलों जैसे पुलिस की ज्यादतियाँ और दमन के मामले, उठाए जाते हैं। इस समय कोई भी सदस्य संसद/विधानमण्डल में कोई भी प्रश्न पूछकर किसी भी मामले में जानकारी मांग सकता है। लोगों की शिकायतों को समाधान ही सही दिशा में ले जाने का यह महत्त्वपूर्ण तरीका है। प्रश्न राष्ट्रीय, राज्य सम्बन्धी या स्थानीय महत्त्व के हो सकते हैं।
2. **विशेष बहसः** इन बहसों के जरिए प्रशासनिक गलतियों, कुप्रशासन और अकुशल प्रशासन के मामलों में उठाया जाता है और उन पर चर्चा की जाती है।
3. **ध्यानाकर्षण प्रस्तावः** यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है और इसके जरिए किसी सार्वजनिक हित के तुरन्त ध्यान देने की जरूरत वाले मुद्दे पर मन्त्री का ध्यान आकर्षित किया जाता है। इस प्रस्ताव के विभिन्न मुद्दों पर जानकारी प्राप्त की जाती है और सरकार के कामों की गलतियों का पता चलता है।

इसके अलावा बजट पर बहस के दौरान जनता की शिकायतें उठायी जाती हैं और विभिन्न प्रस्तावों के जरिए सरकारी नीतियों की आलोचना की जाती है। सरकारी आश्वासनों के बारे में भी एक समिति होती है जो इस बात का हिसाब–किताब रखती है कि मन्त्रियों ने सदन में क्या–क्या आश्वासन दिये और संसद को इस बात की रिपोर्ट पेश करती है कि इनमें कितने आश्वासन पूरे किये गए। इस समिति की स्थापना 1953 में की गई थी। संसद की एक प्रतिवेदन समिति भी होती है जो लोकसभा को दिये गए प्रतिवेदनों की जांच कर उन्हें सम्बद्ध मन्त्रालय या विभाग में जाँच के लिए भेजती है। इससे सरकार को जनहित के मामलों पर ज्यादा ध्यान देने और उन पर तुरन्त कार्यवाही करने में मदद मिलती है।

इस विधायी उपायों की उपयोगिता इस तथ्य से सीमित हो जाती है कि संसद/विधानमण्डलों के सत्र के दौरान ही इन्हें उठाया जा सकता है। इनमें व्यक्तिगत शिकायतें नहीं उठायी जा सकती, जब तक कि इन शिकायतों में सामान्य नीति सम्बन्धी मामला न बनता हो।

मन्त्रालयों/विभागों में शिकायतें दूर करने वाली प्रणाली

अब हम जनता की शिकायतों से सीधे जुड़े हुए कुछ मन्त्रालयों/विभागों में शिकायतें दूर करने की प्रणाली की चर्चा करते हैं। लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली में कमियों को देखते हुए और जनता के साथ लगातार सम्पर्क वाले संगठनों में लोगों की शिकायतें दूर करने की कारगर प्रणाली मजबूत करने के लिए मार्च, 1985 में एक अलग प्रशासनिक सुधार और सार्वजनिक शिकायतों का विभाग बनाया गया। जनता से ज्यादा सम्पर्क वाले कार्यालयों/विभागों में शिकायत कक्ष बनाए गए हैं। एक वरिष्ठ अधिकारी, जिसे शिकायत अधिकारी/निदेशक कहा जाता है, इन मामलों पर निगरानी रखता है। विभिन्न मन्त्रालयों और विभागों में, प्रशासनिक सुधार और सार्वजनिक शिकायतों के विभाग और सम्बद्ध मन्त्रालय/विभाग के बीच लगातार बैठकें करके शिकायतें दूर करने का प्रयास किया गया है।

नागरिकों और प्रशासन के बीच सम्बन्ध मजबूत करने के लिए अनेक उपाय शुरू किए गए हैं। इन में, जहाँ तक सम्भव हो, मौके पर शिकायत को दूर करना शामिल है। इसके अलावा सार्वजनिक सहायता काउन्टर बनाए गए हैं और कार्यप्रणाली को सुचारू तथा आसान बनाने के प्रयास किए गए हैं। केन्द्र और राज्य सरकारों ने सार्वजनिक शिकायतों पर निगरानी रखने की प्रणाली को सक्रिय बनाने और नये तरीके तथा कार्यप्रणाली विकसित करने की दिशा में प्रयास किए हैं। टेलीफोन सलाहकार परिषद् बनायी गई है जिनमें जनता और प्रशासन के प्रतिनिधि समय–समय पर मिलते हैं इससे अनेक समस्याओं को हल करने में मदद मिलती है। इसी तरह गृह मन्त्रालय में आप्रवासी विभाग में पिछले कुछ वर्षों से लोगों की शिकायतें सुनने की नई प्रणाली शुरू की गया है। लोगों की समस्यसओं की अधिकारियों के सामने सार्वजनिक सुनवाई होती है। ऐसा देखा गया है कि ज्यादातर मामलों में तुरन्त समाधान होता है। 80 प्रतिशत मामलों में 24 घण्टों के अन्दर जरूरी कार्रवाई कर ली जाती है। दिल्ली विकास प्राधिकरण में, जहाँ अनेक तरीके की शिकायतें आती हैं और जिसका भूमि प्रबन्ध, मकान बनाने तथा महानगर के विकास और नियोजन में एकाधिकार है, ऐसी प्रणाली शुरू की गई है। ठीक ऐसे ही कई राष्ट्रीयकृत बैंकों में विभिन्न केन्द्रों पर केन्द्रीकृत ग्राहक सेवा चलाई गई है जिसमें किसी भी बैंक के खिलाफ लोगों की शिकायतों को सुना जाता है और उनकी जांच की जाती है।

राज्यों में भी नागरिकों की शिकायतें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाए गए हैं। विशेष समितियाँ और सलाहकार परिषदें बनाई गई हैं जिनमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधि भी शामिल

किए जाते हैं। ये समितियाँ सार्वजनिक शिकायतों में मामले में समाधान प्रस्तुत करती है। उत्तर प्रदेश में मुख्यमन्त्री सचिवालय के सीधे नियन्त्रण में सार्वजनिक शिकायत निदेशालय बनाया गया है। पंजाब में लोगों की शिकायतों को तुरन्त निपटाने के लिए पिछले दिनों एक नई प्रणाली शुरू की गई है। जिसमें जनता सरकार की कार्यप्रणाली के प्रति कोई भी शिकायत आकाशवाणी के जरिए व्यक्त कर सकती है।

यहाँ ये बताना जरूरी है कि उचित प्रशासनिक सुधार और शिकायतें दूर करने में सरकार की मदद करने में स्वयंसेवी संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका महसूस की गया है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, पेंशन तथा पेंशनभोगियों के कल्याण जैसे कुछ विभागों में स्वयंसेवी एजेंसियों के बारे में स्थायी समितियाँ गठित की गई हैं।

पिछले कुछ वर्षों से प्रचार माध्यमों ने सार्वजनिक राय को प्रभावित करने और सामाजिक चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समाचार पत्र शिकायतों की अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली माध्यम बन गए हैं जो सामयिक मुद्दों पर ध्यान केन्द्रीत कराते हैं और जिनमें उठाये गये मामलों पर फिर सम्बद्ध प्रशासनिक विभाग विचार करते हैं। अखबारों की खबरों के जरिए कानून और व्यवस्था की स्थिति, कोई मनमानी प्रशासनिक कार्यवाई या बेहतर सुविधाओं का मांग जैसे मामले संबद्ध अधिकारियों तक पहुँचते हैं। समाचार पत्रों के अलावा टेलीविजन और रेडियो भी प्रशासन की कार्यप्रणाली के बारे में लोगों की प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने और शिकायतों को दूर करने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायिक उपाय

राज्य की गतिविधियों में बहुत अधिक वृद्धि होने से प्रशासन के पास अनेक कामों को करने तथा अपने विवेक से निर्णय करने के अधिकार और सत्ता आ गई है। इसलिए यह जरूरी हो गया है कि प्रशासन के मनमाने निर्णयों से नागरिकों के हितों की रक्षा की जाए। न्यायापालिका लोगों के अधिकारों की सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। **एल. डी. व्हाइट** के अनुसार, "कर्मचारियों और उनके कामों पर बाहरी औपचारिक नियन्त्रण के दो मुख्य रूप हैं–विधायी संस्थाओं (संसद/विधानमण्डल आदि) द्वारा तथा न्यायालयों द्वारा। विधायिका का क्षेत्र मुख्य रूप से कार्यपालिका की नीतियों और व्यय पर नियन्त्रण रखना है। न्यायपालिका का काम यह देखना है कि प्रशासनिक काम वैध तरीके से हो रहे है या नहीं। इस तरह न्यायपालिका यह सुनिश्चित करती है कि नागरिकों के संवैधानिक और अन्य अधिकारों को गैर–कानूनी तरीके से कम या समाप्त किया जाए।" नागरिकों की ज्यादातर शिकायतें तब होती हैं जब प्रशासन बपने मन में निर्णय लेने के अधिकार के तहत कोई काम करता है। न्यायपालिका ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करती है जब कोई अधिकारी या कर्मचारी अपने

अधिकार–क्षेत्र के विपरीत काम करता है या कानून की गलत व्याख्या पर किसी नागरिक को नुकसान पहुँचाता है, पद का दुरूपयोग करता है या गलत तरीके से काम करता है।

न्यायपालिका नागरिक की शिकायत पर सम्बद्ध सरकारी अधिकारी पर मुकदमा चला सकती है। न्यायपालिका प्रशासनिक कार्य के क्षेत्र और कार्य करने के तरीके पर विचार कर उसकी वैधता की जांच कर सकता है। न्यायालय अब उचित आदेश या निर्देश देकर नागरिक के अधिकारों को लागम करवा सकता है। लेकिन अदालत में ऐसे ही मामले लाए जा सकते हैं जहाँ आरोप लगाया गया हो कि प्रशासनिक कार्य गलत इरादे से किया गया था या सम्बद्ध प्रशासनिक अधिकारी को यह काम करने का अधिकार नहीं था या काम संविधान या कानून के प्रावधानों के अनुरूप नहीं था।

प्रशासनिक अधिकारियों के कुछ कार्यों के लिए क्षतिपूर्ति की मांग की जा सकती है, जब ऐसे अवैध या गैर–कानूनी कार्य को समाज को नुकसान पहुँचाने वाला बताकर चुनौती दी गई हो।

असाधारण उपचार

ये ऐसे "रिट" (Writ) आदेश होते हैं जिन्हें न्यायालय, सरकारी अधिकारियों द्वारा नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन किए जाने कि स्थिति में इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए जारी करते हैं। "रिट" न्यायालय के ऐसे आदेश होते हैं जो, जिनके खिलाफ जारी किए जाते हैं उन्हें किसी काम को करने का निर्देश दिया जाता है। इनमें निम्न तरीके के आदेश शामिल हैं:

1. **बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus):** यह उस व्यक्ति के खिलाफ जारी किया जाता है जिसने किसी व्यक्ति को गैर कानूनी तथा अवैध रूप से बन्दी बना रखा हो। इस आदेश में न्यायालय बन्दी बनाने वाले व्यक्ति को आदेश देता है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को अदालत में पेश करे।
2. **परमादेश (Mandamus):** यह अदालत द्वारा जारी ऐसा आदेश है जिसमें किसी सरकारी अधिकारी या किसी निचली अदालत या अन्य किसी अधिकारी से अपना कानूनी दायित्व पूरा करने को कहा गया होता है।
3. **निषेध (Prohibition):** यह किसी निचली अदालत को दिया गया ऐसा आदेश है जिसमें उसे अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर कोई काम नहीं करने को कहा गया होता है।
4. **अधिकार–पच्छा (Quo Warranto):** अदालत इस आदेश के जरिए किसी व्यक्ति के किसी सार्वजनिक पद पर उसके अधिकार के दावे की वैधता के बारे में पूछ सकती है।

लेकिन न्यायिक नियन्त्रण की कुछ सीमाएँ हैं। सभी प्रशासनिक निर्णयों पर विचार करना न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता और न्यायालय किसी प्रशासनिक निर्णय से नुकसान

उठाने वाले व्यक्तियों की शिकायत पर ही हस्तक्षेप कर सकते हैं। साथ ही न्यायिक प्रक्रिया धीमी, बोझिल और महंगी भी मानी जाती है।

लोकहित मुकदमे

(Public Interest Litigation)

भारत में पिछले दिनों यह उपयोगी न्यायिक पहल की गई है। नागरिकों की शिकायतों पर न्यायिक उपचार दिलाने वाला यह प्रगतिशील उपाय भारत में ही नहीं, अमेरीका और इंग्लैण्ड में भी उपलब्ध है। उच्चतम न्यायालय ने 1978 में उदार रवैया अपनाते हुए सार्वजनिक दायित्व को पूरा करने में कोई कमी और संविधान के उल्लंघन के कारण सार्वजनिक जीवन में हुए नुकसान की स्थिति में नागरिकों को न्यायिक उपचार दिलाने की बात को समर्थन दिया। मरीजों का अस्पताल में उचित दवा न मिलना, जेलों में गलत प्रबन्ध, प्रशासन का पर्यावरण प्रदूषण रोकने में विफल रहना, शैक्षिक संस्थाओं के प्रशासन में अनियमितताओं जैसे कुप्रशासन के मामलों में शिकायतें लोकहित के मामलों के तहत उठायी जा सकती हैं। उच्चतम न्यायालय के नियमों में संशोधन कर बाद में यह प्रावधान भी रखा गया कि कोई भी नागरिक या ग्रुप किसी सरकारी कानून से नुकसान उठा रहे समुदाय की ओर से अपील कर सकता है। इस तरह, भले ही किसी नागरिक की प्रशासन से कोई व्यक्तिगत शिकायत न भी हो पर वह फिर भी ऐसे मामले में शिकायत कर सकता है जब उसकी राय में प्रशासनिक अन्याय हो रहा है।

न्यायमूर्ति भगवती के अनुसार भारत में सामाजिक–आर्थिक बाधाओं के कारण लोग न्यायालयों तक नहीं पाते, इसलिए यह जरूरी है कि न्यायिक उपचारों का लोकतान्त्रिकरण किया जाए, न्याय प्राप्त करने में प्रक्रिया सम्बन्धी तकनीकी अड़चनें दूर की जाएँ और लोकहित में मामले उठाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाए ताकि वंचित और शोषित लोग भी अपने सामाजिक–आर्थिक अधिकार पा सकें और ये अधिकार उनके लिए वास्तव में सार्थक हो सकें, झूठी आशाएँ भर न रहें। उनकी राय में, "अगर हमें सार्वजनिक दायित्वों का पालन करवाना है और समाज और समूह के अधिकारों को सुरक्षित रखना है तो हमें सार्वजनिक हित में सोचने वाले लोगों को सामान्य अथवा समूह के हित के लिए अदालतों में जाने का अधिकार देना ही होगा, भले ही उनके खुद के हितों पर सीधे–सीधे कोई असर न पड़ रहा हो। तभी हम उनके उत्साह और पहल का लाभ उठा सकते हैं।"

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, देश में कुप्रशासन का मुकाबला करने के लिए अदालतों में मामला दायर करने के कानूनों का उदार होना जरूरी है ताकि सार्वजनिक हित के लिए काम करने को तैयार लोग आगे आ सके और कुप्रशासन को उजागर कर सके अथवा किसी

उद्देश्य के लिए कुछ काम कर सके। लोकहितकारीवाद का उदाहरण 1982 का (मुन्ना बनाम उत्तर प्रदेश सरकार) मामला था। इस मामले में एक सार्वजनिक कार्यकर्ता ने कुछ विचाराधीन बाल कैदियों को राहत दिलाने के लिए उच्चतम न्यायालय में याचिका पेश की। यह याचिका एक समाचार पत्र की उस खबर पर आधारित थी जिसमें कानपुर सैंट्रल जेल में बाल–कैदियों पर दुर्व्यवहार किये जाने के गम्भीर आरोप लगाए थे। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में निर्देश दिये। इस नीति का उद्देश्य भारत में नागरिकों, खास तौर से गरीब और अशिक्षित लोगों को, अतिरिक्त सुरक्षा और सामाजिक न्याय दिलाना है।

प्रशासनिक ट्राइब्यूनल

(Administrative Tribunals)

सामान्य कानूनी अदालतों के अलावा कुछ देशों में प्रशासनिक कार्यवाही के खिलाफ शिकायतों का फैसला करने के लिए प्रशासनिक अदालतें और ट्राइब्यूनल बनाए गए हैं। उदाहरण के लिए, फ्रांस में प्रशासन और नागरिकों के व्यक्तिगत विवादों पर फैसला लिया जाता है। इन मामलों में अगर किसी सरकारी अधिकारी द्वारा अपनी सरकारी कार्यक्षमता में किए गए किसी काम से किसी नागरिक को नुकसान होता है तो अधिकारी पर मुकदमा चलाया जा सकता है। ट्राइब्यूनलों में निर्णय हर सम्भव शीघ्रता से लिए जाते हैं। ये आम न्यायालयों से कम खर्चीले हैं और इनमें लोगों की शिकायतों पर तुरन्त कार्रवाई होती है।

भारत में विभिन्न कानूनों के जरिए प्रशासनिक ट्राइब्यूनल बने हैं जो नागरिकों की विशिष्ट शिकायतों पर फैसला देते हैं। ऐसे कुछ ट्राइब्यूनल हैं–औद्योगिक ट्राइब्यूनल, आयकर ट्राइब्यूनल, रेल दर ट्राइब्यूनल आदि।

नगरिकों और प्रशासनिक एजेंसियों के बीच विवादों को निपटाने वाले ट्राइब्यूनलों को सामान्य अदालतों की तुलना में कम खर्चीला और कार्यकुशल माना जाता है। इनके प्रमुख विशेष मामलों की बारीकियाँ समझने वाले विशेषज्ञ होते हैं। ट्राइब्यूनलों का कार्य अर्द्ध–न्यायिक है जबकि अदालतों के काम न्यायिक होते हैं। ट्राइब्यूनल प्रशासनिक अधिकारी ही हैं जो न्यायिक दायित्व निभा रहे होते हैं। उदाहरण के लिए, चुनाव विवाद, करों का निर्धारण, औद्योगिक विवादों में फैसला जैसे काम अलग–अलग ट्राइब्यूनलों द्वारा किये जाते हैं।

नागरिकों की प्रशासन से शिकायतों की जांच करने वाली प्रणाली के अलावा एक ऐसी व्यवस्था की भी जरूरत महसूस की गई जो सरकारी कर्मचारियों की नौकरी से जुड़े मामलों को निपटाए। इस उद्देश्य से प्रशासनिक ट्राइब्यूनल कानून, 1985 पास किया गया। इसमें सरकारी कर्मचारियों को तेजी से और सस्ते में न्याय दिलाने के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक ट्राइब्यूनल गठित करने का प्रावधान है। केन्द्रीय प्रशासनिक ट्राइब्यूनल अखिल भारतीय सेवा

के कर्मचारियों के ही नौकरी सम्बन्धी मामले देखता है जबकि संयुक्त और राज्य प्रशासनिक ट्राइब्यूनल राज्य सरकारों के कर्मचारियों के नौकरी सम्बन्धी मामले देखता है।

आर्थिक प्रशासन में कुछ ही क्षेत्रों में ट्राइब्यूनल बनाए गए हैं। प्रशासनिक ट्राइब्यूनलों के बारे में A.R.C. अध्ययन दल ने सिफारिश की है प्रशासनिक ट्राइब्यूनलों की प्रणाली को व्यापक बनाकर इसमें अनेक नये क्षेत्रों को भी शामिल किया जाना चाहिए क्योंकि प्रशासनिक ढाँचे के बाहर किसी एजेंसी द्वारा प्रशासनिक निर्णयों की जांच करने से ही नागरिकों को वास्तव में न्याय मिल सकता है।

भारत में पिछले कुछ ही दिनों में नागरिकों और प्रशासन के विवाद निपटाने का नया तरीका शुरू किया गया है। लोगों की प्रशासन के खिलाफ सामान्य शिकायतों के निपटान के लिए लोक अदालतें शुरू की गई है। इनकी कार्य–प्रक्रिया सरल और सस्ती तो है ही, इनसे पेंशन, सुविधाओं, टेलीफोन, मुवावजे के दावों आदि का जल्दी निपटान भी हो जाता है। अगर लोक अदालत का फैसला नागरिक या प्रशासन को स्वीकार्य न हो तो कोई भी पक्ष सामान्य अदालतों में जा सकता है।

उपभोक्ता झगड़े निवारण संगठन

(Consumer Disputes Redressal Agencies)

भारत एक विकासशील देश है। इसकी उपभोक्ता की वस्तुओं व सेवा सम्बन्धी एक मुख्य समस्या है। उपभोक्ता में अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता है। इसी कारण 1986 में उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम का निर्माण किया गया। इस अधिनियम के अधीन उपभोक्ताओं के झगड़ों का निवारण करने के लिए त्रि–स्तरीय व्यवस्था का व्यवधान किया गया है। यह त्रि–स्तरीय संगठन इस प्रकार है–

1. **जिला स्तरीय फोरम (District Level Forum)**
2. **राज्य स्तरीय फोरम (State Level Forum)**
3. **राष्ट्रीय स्तरीय फोरम (Nation Level Forum)**

जिला स्तरीय फोरम

(District Level Forum)

जिला फोरम के नाम से जाने वाली उपभोक्ता सुरक्षा संस्था प्रत्येक जिले में राज्य सरकार के आदेश द्वारा स्थापित की जाएगी। यदि राज्य सरकार चाहे तो एक जिले में एक से अधिक फोरमों की स्थापना कर सकती है।

जिला फोरम की रचना (Composition of the District Forum)

जिला फोरम के सदस्यों की संख्या तीन होती है, जिनमें एक अध्यक्ष व अन्य दो सदस्य होते हैं। जिला फोरम का अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति होता है जो जिला न्यायाधीश (District Judge) के पद पर कार्य कर रहा हो या फिर जिला न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो या जिला न्यायाधीश रह चुका हो। जिला फोरम के दो अन्य सदस्य वे व्यक्ति होंगे जिन्होंने शिक्षा, व्यापार, उद्योग, कानून, लेखा आदि में विशेष ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त किया हो। इन दो सदस्यों में एक स्त्री का होना जरूरी है।

जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति (Appointment of Members of the District Forum)

जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा चयन समिति (Selection Committee) की सिफारिशों के आधार पर की जाएगी। इस चयन समिति में राज्य आयोग का अध्यक्ष, राज्य के कानून विभाग का सचिव व राज्य में उपयोगी मामलों से सम्बन्धित विभाग का सचिव होता है। जिला फोरम के सदस्यों की नियुक्ति 5 वर्षों के लिए की जाती है। यदि कोई सदस्य 5 वर्षों की अवधि से पहले 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है तो उसे सेवा निवृत (Retire) कर दिया जाता है और उसके स्थान पर नए सदस्य की नियुक्ति कर दी जाती है। इसका कोई भी सदस्य दूसरी बार नियुक्त नहीं किया जा सकता। जिला फोरम के सदस्यों के वेतन व सेवा शर्तों (Service Condition) को राज्य सरकार द्वारा निश्चित किया जाता है।

जिला फोरम का अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction of District Forum)

जिला फोरम का अधिकार क्षेत्र केवल एक जिले विशेष तक ही सीमित होता है। इसमें कोई भी शिकायत झगड़ा होने के दो वर्ष के भीतर ही की जा सकती है। शिकायत उसी जिला फोरम में दर्ज कराई जाएगी जहां झगड़ा हुआ हो। जिला फोरम को 5 लाख रूपए या इससे अधिक राशि के मुआवजे के प्रश्न को सुनने का अधिकार है। जिला फोरम के सामने की जाने वाली शिकायतें इस प्रकार हैं–

1. वस्तुओं में किसी प्रकार की कमी पाए जाने पर।
2. उपभोक्ता को दी जाने वाली सेवाओं में कमी होने पर।
3. व्यापारी या विक्रेता द्वारा व्यापार के गलत तरीके अपनाए जाने पर।
4. ऐसे माल का विक्रय किए जाने पर जो जीवन सुरक्षा के लिए खतरनाक हो।
5. यदि उपभोक्ता को व्यापारी के कारण नुकसान पहुंचा हो।
6. व्यापारी या दुकानदार द्वारा निश्चित मूल्य से अधिक पैसे लेने की स्थिति में।

शिकायत करने का ढंग (Manner in which complaint shall be made)

जिला फोरम में तीन तरह के व्यक्ति शिकायत कर सकते हैं–

1. उपभोक्ता (Consumer) द्वारा जिसे वस्तुएं बेची गई हों।
2. मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संस्था द्वारा (Recognised Consumer Association)
3. केन्द्रीय और राज्य सरकार द्वारा (Central and State Government)
4. उपभोक्ताओं के हित को ध्यान में रखकर एक या अधिक उपभोक्ताओं द्वारा (One or more consumers, where there are numerous consumers having the same interest)

जिला फोरम एक असैनिक न्यायालय की तरह कार्य करती है। जिला फोरम झगड़े से सम्बन्धित सभी कागजों (Papers related to conflict) को पेश करने के लिए कह सकती है। प्रत्येक पक्ष को अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है। सम्बन्धित पक्ष को कम से कम 30 दिन व अधिक से अधिक 45 दिन का समय दिया जाता है जिसमें वह अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

जिला फोरम के निर्णय (Dicision by the District Forum)

साधारणतः एक वर्ष के अन्दर शिकायत प्रस्तुत की जा सकती है लेकिन इस अवधि के बाद भी जिला फोरम शिकायत को स्वीकार कर सकती है। जिला फोरम शिकायत के आधार पर कार्रवाई करती है। तत्पश्चात् निम्नलिखित आदेश दे सकती है–

1. वस्तुओं के नुक्स को दूर किया जाए।
2. वस्तुओं को बदला जाए।
3. वस्तु की कीमत वापिस की जाए।
4. उपभोक्ता को मुआवजा दिया जाए। मुआवजे की रकम जिला फोरम द्वारा निश्चित की जाएगी।
5. सेवा में कमियों को दूर किया जाए।
6. खतरनाक माल की बिक्री न की जाए।
7. गलत व्यापार के तरीके बन्द किए जाए।
8. उपभोक्ता को उसके द्वारा किया गया खर्च वापस लौटाया जाए।

राज्य स्तरीय आयोग (State Level Commission)

प्रत्येक राज्य में उपभोक्ताओं की शिकायतों को सुनने के लिए एक आयोग की स्थापना की गई है जिसे राज्य आयोग (State Commission) कहा जाता है। राज्य आयोग के सदस्यों

की संख्या तीन निश्चित की गई है। इसमें एक अध्यक्ष व दो अन्य सदस्य होते हैं। राज्य आयोग का अध्यक्ष उच्च न्याय का न्यायाधीश, या पहले न्यायाधीश रह चुका हो, होता है। राज्य आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय (High Court) के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर की जाती है। राज्य आयोग के अन्य दो सदस्यों को व्यापार, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, उद्योग या प्रशासन के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त व अनुभवी होना आवश्यक है। इन दो सदस्यों में से एक महिला सदस्य होती है।

नियुक्ति व अवधि (Appointment and Team)

राज्य आयोग के सदस्यों का चयन एक चयन समिति (Selection Committee) द्वारा किया जाता है। चयन समिति का संगठन इस प्रकार है–

1. राज्य आयोग अध्यक्ष (President of the State Commission)
2. राज्य के कानून विभाग का सचिव (Secretary of Law Department of the State)
3. राज्य के उपभोक्ता मामलों से सम्बन्धित विभाग का सचिव (Secretary in charge of Department dealing with Consumer affairs of the State)

राज्य आयोग के प्रत्येक सदस्य की नियुक्ति की अवधि 5 वर्ष होती है अर्थात् सदस्य का चयन 5 वर्ष के लिए किया जाता है। यदि कोई सदस्य अवधि पूरी होने सं पहले 67 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है तो उसे राज्य आयोग की सेवा से मुक्त (Retire) कर दिया जाता है। किसी भी व्यक्ति को दो बार सदस्य नियुक्त (Not Eligible for Re-Oppointment) नहीं किया जा सकता। राज्य आयोग के सदस्यों के वेतन व भत्ते राज्य सरकार द्वारा निश्चित किए जाते हैं।

अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction)

उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 के अनुसार राज्य आयोग के अधिकार क्षेत्र को दो भागों में बांटा गया है–

1. **प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र (Original Jurisdiction):** 5 से 20 लाख तक के मूल्य की वस्तुओं या सेवाओं से सम्बन्धित मामले सीधे राज्य आयोग में ले जाए जा सकते हैं। इसी तरह 5 लाख से 20 लाख रूपए तक के मुआवजे के मामले भी राज्य आयोग में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। राज्य आयोग को किसी भी जिला फोरम के रिकार्ड को अपने पास मंगवाने का अधिकार है, यदि उसने अपने अधिकारों का गलत प्रयोग किया है।
2- **अपीलीय अधिकार क्षेत्र (Appellate Jurisdiction):** उपभोक्ताओं को कजला फोरम के निर्णयों के विरूद्ध राज्य आयोग में अपील करने का अधिकार प्राप्त है, यदि वे जिला

फोरम के निर्णयों से असन्तुष्ट हैं। अपीलीय क्षेत्र में धन की कोई सीमा निश्चित नहीं की गई है।

3. **राज्य आयोग से सम्बन्धित प्रक्रिया (Procedure Application to State Commission):** राज्य आयोग एक असैनिक न्यायालय की तरह कार्य करता है। यह किसी भी शिकायतकर्त्ता व जिसके विरूद्ध शिकायत की गई है, को अपने सामने प्रस्तुत होने व शिकायत सम्बन्धी दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है। राज्य आयोग के आदेशों की अवहेलना होने पर एक महीने से तीन महीने तक की कैद की सजा दी जा सकती है।

राष्ट्रीय स्तरीय आयोग (National Level Commission)

राष्ट्रीय स्तर के आयोग को राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग भी कहा जाता है। इसके सदस्यों की संख्या उपभोक्ता अधिनियम 1986 द्वारा 5 निश्चित की गई है। आयोग का एक अध्यक्ष व 4 अन्य सदस्य होते हैं। आयोग का अध्यक्ष एस व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो। अन्य चार सदस्यों के लिए विभिन्न क्षेत्रों–आर्थिक क्षेत्र, कानूनी क्षेत्र, लेखा व उद्योग क्षेत्र या फिर प्रशासनिक मामलों में ख्याति प्राप्त या अनुभवी होना आवश्यक है। चार सदस्यों में से एक महिला का होना अनिवार्य है।

नियुक्ति व कार्यकाल (Appointment and Tenure)

आयोग के सदस्यों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा चयन समिति (Selection Committee) की सिफारिश पर की जाएगी। चयन समिति का गठन इस प्रकार होता है–

1. आयोग का अध्यक्ष जो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश होता है उसका नामांकन सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा किया जाता है। यह न्यायाधीश चयन समिति का अध्यक्ष होता है। (A person who is a judge of the Supreme Court to be nominated by the Chief Justice of India)
2. भारत सरकार में कानूनी मामलों के विभाग का सचिव (Secretary in the Department of Legal Affairs in the Government of India)
3. भारत सरकार में उपभोक्ता सम्बन्धी मामलों के विभाग का सचिव (Secretary of the department dealing with consumer affairs in the government of India)

राष्ट्रीय आयोग के सदस्यों की नियुक्ति की अवधि 5 वर्ष होती है अर्थात् सदस्य का चयन 5 वर्ष के लिए किया जाता है। यदि पांच वर्ष से पहले किसी सदस्य की आयु 70 वर्ष की हो

जाती है तो उसे सेवा निवृत्त (Retire) कर दिया जाता है। किसी भी सदस्य को दूसरी बार नियुक्त नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रीय आयोग का स्थान (Seat of National Commission)

राष्ट्रीय आयोग का स्थान दिल्ली में होता है। राष्ट्रीय आयोग की बैठकें अध्यक्ष द्वारा आवश्यकता पड़ने पर बुलाई जाती है।

वेतन तथा भत्ते (Salaries and Allowances)

राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष (President) को सर्वोच्च न्यायाधीश (Sitting Judge of Supreme Court) के समान वेतन व भत्ते दिए जाएंगे। दूसरे सदस्यों को 6000 रूपये मासिक पारिश्रमिक (Honorarium) दिया जाएगा, यदि वे पूरे समय के लिए काम करते हैं (If sitting on whole time basis)। यदि सदस्य कम समय के लिए हैं तो उसे 300 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से पारिश्रमिक दिया जाएगा ("If sitting on part time basis a consolidated honorarium of three hundred rupees per day for sitting")। वेतन व भत्ते संचित निधि में से दिए जाते हैं।

राष्ट्रीय आयोग का अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction of the National Commission)

राष्ट्रीय आयोग को प्रारम्भिक व अपीलीय अधिकार प्राप्त हैं। 20 लाख रूपये तक के माल व मुआवजे से सम्बन्धित मामले राष्ट्रीय आयोग के पास आते हैं। विभिन्न राज्यों के राज्य आयोगों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलें राष्ट्रीय आयोग के पास आती हैं यदि राष्ट्रीय आयोग चाहे तो किसी राज्य आयोग से किसी मामले को उसके पास भेजने के लिए कह सकता है।

राष्ट्रीय आयोग के निर्णय (Decision of the National Commission): राष्ट्रीय आयोग के निर्णय बहुमत द्वारा लिए जाते हैं। यह आयोग एक असैनिक न्यायालय की तरह कार्य करता है। राष्ट्रीय आयोग के निर्णय की अवहेलना की स्थिति में एक महीने से लेकर 3 वर्ष तक की कैद की सजा दी जा सकती है। राष्ट्रीय आयोग के निर्णयों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) में अपील की जा सकती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त चर्चा के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिए विभिन्न व्यवस्थाएं की गई हैं परन्तु इसके बावजूद भी जनता में जागृति नहीं आई है। उपभोक्ता के हितों की वास्तविक सुरक्षा तब ही हो पाएगी जब उन्हें इस क्षेत्र में शिक्षित किया जाएगा।

औम्बड्समेन–लोकपाल और लोकायुक्त

(The Ombudsman-Lokpal and Lokayukt)

जनता की शिकायतों को दूर करने के लिए विभिन्न संस्थाओं ने अनेक अध्ययन किए हैं। वास्तव में अनेक ऐसी प्रक्रियाएं प्रचलित हैं जिनके द्वारा जनसाधारण अपनी शिकायतों को दूर करा सकता है। यदा कदा एक व्यक्ति (नागरिक) अपनी शिकायत के कारणों को समाचार–पत्रों में प्रकाशित करा सकता है। वह अपनी शिकायत के बारे में राज्य विधानमण्डल में या संसद में अपने प्रतिनिधि को लिख सकता है। वह प्रशासन के समक्ष स्वयं प्रस्तुत हो सकता है और यदि वह भाग्यशाली हो तो सम्बन्धित मन्त्री से भी मिल सकता है, परन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि ये सुविधाएं अत्यन्त सीमित और अपर्याप्त है। प्रशासनिक न्याय के विरूद्ध शिकायत करने की वर्तमान प्रक्रियाओं की अपर्याप्तता के कारण ही स्कैण्डेनिवियाई देशों में 'ओम्बड्समेन' नामक एक लोकप्रिय संस्थान बनाया गया था।

'ओम्बड्समेन' का अर्थ है सार्वजनिक डयूटी पर तैनात एक सातिसिटर। सबसे पहले स्वीडन ने इसे वर्ष 1809 में इसके वर्तमान रूप में अपनाया और इसके बाद फिनलैण्ड, डेनमार्क और नार्वे ने इसे अपनाया। स्वीडन में इसे संसद द्वारा नियुक्त किया जाता है जो संसद की ओर से सामान्य नागरिकों की शिकायत की जांच करता है और वर्ष के दौरान संसद के समक्ष अपने कार्य की रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। न्यूजीलैण्ड जो एक संसदीय प्रणाली वाला देश है और जहां सामान्य कानून है, ने इसे वर्ष 1962 में और ब्रिटेन ने इसे वर्ष 1966 में अपनाया। ऐतिहासिक दृष्टि से इनमें से प्रत्येक देश ने जो तन्त्र अपनाया है उसका एक ही उद्देश्य है, अर्थात् कर्मचारियों और प्रशासन के कार्यकलापों और उनके द्वारा शक्ति के दुरूपयोग पर नियन्त्रण किया जाए क्योंकि ऐसा महसूस किया गया था कि इस प्रयोजन के लिए वर्तमान तन्त्र और प्रक्रियाएं अपर्याप्त हैं। यदि जनसेवाओं के विरूद्ध नागरिकों से शिकायतें प्राप्त होती है और जांच के बाद यह पाया जाता है कि उनका कोई आधार नहीं है तो अवश्य ही लोगों में विश्वास की भावना पैदा होगी।

ब्रिटेन में व्हेयट्ट की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद से भारत में 'ओम्बड्समेन' की नियुक्ति सम्बन्धी विचार का सर्मथन किया जा रहा है। अगस्त 1962 में नई दिल्ली में तृतीय अखिल भारतीय विधि सम्मेलन द्वारा आयोजित 'ओम्बड्समेन' सम्बन्धी विचारगोही और अक्टूबर 1963 में मद्रास प्रोविंसियल बार ऐसोसिएशन द्वारा 'ओम्बड्समेन' की स्थापना की सिफारिश की गया थी और तृतीय अखिल भारतीय विधि मन्त्री सम्मेलन में इस पर चर्चा हुई थी। 15 जुलाई, 1963 को मुख्य न्यायाधिपति पी. बी. गजेन्द्र गडकर ने भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के दीक्षान्त भाषण में 'ओम्बड्समेन' की सिफारिश की थी। 'राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति' (1963) ने अपनी रिपोर्ट में मन्त्रियों सहित उच्च अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की जांच के

लिए राज्यों द्वारा 'ओम्बड्समेन' या एक आयुक्त की नियुक्ति की सिफारिश की थी। अन्य देशों में विद्यमान ओम्बड्समेन संस्थाओं और भारतीय स्थिति की पुनरीक्षा करने के बाद प्रशासनिक सुधार आयोग (A.R.C.) ने सिफारिश की है कि "हमारे देश की विशिष्ट परिस्थितियों में लोगों की शिकायतों को दूर करने के लिए दो विशेष संस्थान होने चाहिए। एक प्राधिकरण केन्द्र और राज्यों में मन्त्रियों अथवा शासन के सचिवों द्वारा की गयी प्रशासनिक कार्यवाहियों के विरूद्ध शिकायतों की जांच के लिए होना चाहिए। ये सभी प्राधिकरण कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से स्वतन्त्र होने चाहिए।"

प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए भारत में ओम्बड्समेन संस्था की नियुक्ति के लिए पहला ठोस कदम 9 मई, 1968 को लोकसभा में लोकपाल विधेयक की पुनः स्थापना के साथ उठाया गया था। यह विधेयक संयुक्त समिति को भेजा गया और उसे बाद में लोकसभा द्वारा पारित किया गया था, किन्तु जब यह विधेयक राज्यसभा में अनिर्णीत पड़ा हुआ था तभी लोकसभा का विघटन हो गया जिसके परिणामस्वरूप विधेयक व्यपगत हो गया। इसी तरह का एक नया विधेयक लोकसभा में 11 अगस्त, 1971 को पुनःस्थापित किया गया। यह विधेयक भी पांचवी लोकसभा का विघटन होने पर व्यपगत हो गया। नई सरकार ने, जो मार्च 1977 में सत्ता में आयी, लोकसभा में 28 जुलाई, 1977 को लोकपाल विधेयक पुनःस्थापित किया। विधेयक में उच्च राजनीतिक स्तरों पर भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने के लिए लोकपाल की संस्था को एक प्रभावी तन्त्र के रूप में स्थापित करने की व्यवस्था थी। 1977 के विधेयक पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति द्वारा विचार किया गया था। विधेयक में कतिपय संशोधनों के साथ संयुक्त समिति का प्रतिवेदन 20–01–1978 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था। तथापि, संसद द्वारा विधेयक पर विचार करने तथा उसे स्वीकृत करने से पहले ही छठी लोकसभा का विघटन हो गया और विधेयक व्यपगत हो गया। सातवीं लोकसभा द्वारा इस विषय से सम्बन्धित विधेयक पर विचार नहीं किया गया। आठवीं लोकसभा में 26 अगस्त, 1985 को लोकपाल विधेयक पुनःस्थापित किया गया। लोकपाल विधेयक 1985 के स्थान पर एक नया व्यपगत विधेयक लाने की मंशा से 1988 में इसे वापिस ले लिया गया। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने दिसम्बर 1989 में लोकपाल नियुक्त करने के इरादे से लोकसभा में एक विधेयक पेश किया जो अधिनियम का रूप ग्रहण नहीं कर सका। देवगौड़ा सरकार ने 13 दिसम्बर 1996 को तथा वाजपेयी सरकार ने 3 अगस्त 1998 को लोकपाल विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किए।

15 जून 2005 को इसे अधिनियमित किया गया और पूर्णतया 12 अक्टूबर 2005 को सम्पूर्ण धाराओं के साथ लागू कर दिया गया। सूचना का अधिकार अर्थात राईट टू इन्फॉरमेशन। सूचना का अधिकार का तात्पर्य है, सूचना पाने का अधिकार, जो सूचना अधिकार कानून लागू करने

वाला राष्ट्र अपने नागरिकों को प्रदान करता है। सूचना अधिकार के द्वारा राष्ट्र अपने नागरिकों को, अपने कार्य को और शासन प्रणाली को सार्वजनिक करता है।

लोकतंत्र में देश की जनता अपनी चुनी हुए व्यक्ति को शासन करने का अवसर प्रदान करती है और यह अपेक्षा करती है कि सरकार पूरी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करेगी। लेकिन कालान्तर में अधिकांश राष्ट्रों ने अपने दायित्वों का गला घोटते हुए पारदर्शिता और ईमानदारी की बोटियाँ नोंचने में कोई कसर नहीं छोड़ी और भ्रष्टाचार के बड़े–बड़े कीर्तिमान कायम करने को एक भी मौका अपने हाथ से गवाना नहीं भूले। भ्रष्टाचार के इन कीर्तिमानों को स्थापित करने के लिए हर वो कार्य किया जो जनविरोधी और अलोकतांत्रिक हैं। सरकारे यह भूल जाती है कि जनता ने उन्हें चुना है और जनता ही देश की असली मालिक है एवं सरकार उनकी चुने हुई नौकर। इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है, कि जो सरकार उनकी सेवा में है, वह क्या कर रही है ?

प्रत्येक नागरिक सरकार को किसी ने किसी माध्यम से टेक्स देती है। यहां तक एक सुई से लेकर एक माचिस तक का टैक्स अदा करती है। सड़क पर भीख मांगने वाला भिखारी भी जब बाज़ार से कोई सामान खरीदता है, तो बिक्री कर, उत्पाद कर इत्यादि टैक्स अदा करता है।

इसी प्रकार देश का प्रत्येक नागरिक टैक्स अदा करता है और यही टैक्स देश के विकास और व्यवस्था की आधारशिला को निरन्तर स्थिर रखता है। इसलिए जनता को यह जानने का पूरा हक है कि उसके द्वारा दिया गया, पैसा कब, कहाँ, और किस प्रकार खर्च किया जा रहा है ? इसके लिए यह जरूरी है कि सूचना को जनता के समक्ष रखने एवं जनता को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया जाए, जो एक कानून द्वारा ही सम्भव है।

सूचना का अधिकार अर्थात राईट टू इन्फॉरमेशन। सूचना का अधिकार का तात्पर्य है, सूचना पाने का अधिकार, जो सूचना अधिकार कानून लागू करने वाला राष्ट्र अपने नागरिकों को प्रदान करता है। सूचना अधिकार के द्वारा राष्ट्र अपने नागरिकों को अपनी कार्य और शासन प्रणाली को सार्वजनिक करता है।

लोकतंत्र में देश की जनता अपनी चुनी हुए व्यक्ति को शासन करने का अवसर प्रदान करती है और यह अपेक्षा करती है कि सरकार पूरी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करेगी। लेकिन कालान्तर में अधिकांश राष्ट्रों ने अपने दायित्वों का गला घोटते हुए पारदर्शिता और ईमानदारी की बोटियाँ नोंचने में कोई कसर नहीं छोड़ी और भ्रष्टाचार के बड़े–बड़े कीर्तिमान कायम करने को एक भी मौक अपने हाथ से गवाना नहीं भूले। भ्रष्टाचार के इन कीर्तिमानों को स्थापित करने के लिए हर वो कार्य किया जो जनविरोधी और अलोकतांत्रिक हैं। सरकारे यह भूल जाती है कि जनता ने उन्हें चुना है और जनता ही देश की असली मालिक है

एवं सरकार उनकी चुने हुई नौकर। इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है, कि जो सरकार उनकी सेवा है, वह क्या कर रही है ?

प्रत्येक नागरिक सरकार को किसी ने किसी माध्यम से टेक्स देती है। यहां तक एक सुई से लेकर एक माचिस तक का टैक्स अदा करती है। सड़क पर भीख मांगने वाला भिखारी भी जब बाज़ार से कोई सामान खरीदता है, तो बिक्री कर, उत्पाद कर इत्यादि टैक्स अदा करता है।

इसी प्रकार देश का प्रत्येक नागरिक टैक्स अदा करता है और यही टैक्स देश के विकास और व्यवस्था की आधारशिला को निरन्तर स्थिर रखता है। इसलिए जनता को यह जानने का पूरा हक है कि उसके द्वारा दिया गया, पैसा कब, कहाँ, और किस प्रकार खर्च किया जा रहा है ? इसके लिए यह जरूरी है कि सूचना को जनता के समक्ष रखने एवं जनता को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया जाए, जो एक कानून द्वारा ही सम्भव है।

अंग्रज़ों ने भारत पर लगभग 250 वर्षो तक शासन किया और इस दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारत में शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 बनया, जिसके अन्तर्गत सरकार को यह अधिकर हो गया कि वह किसी भी सूचना को गोपनीय कर सकेगी।

सन् 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने बाद 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ, लेकिन संविधान निर्माताओ ने संविधान में इसका कोई भी वर्णन नहीं किया और न ही अंग्रेज़ो का बनाया हुआ शासकीय गापनीयता अधिनियम 1923 का संशोधन किया। आने वाली सरकारों ने गोपनीयता अधिनियम 1923 की धारा 5 व 6 के प्रावधानों का लाभ उठकार जनता से सूचनाओं को छुपाती रही।

सूचना के अधिकार के प्रति कुछ सजगता वर्ष 1975 के शुरूआत में "उत्तर प्रदेश सरकार बनाम राज नारायण" से हुई।

मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में हुई, जिसमें न्यायालय ने अपने आदेश में लोक प्राधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कार्यो का व्यौरा जनता को प्रदान करने का व्यवस्था किया। इस निर्णय ने नागरिकों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दायरा बढ़ाकर सूचना के अधिकार को शामिल कर दिया।

वर्ष 1982 में द्वितीय प्रेस आयोग ने शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 की विवादस्पद धारा 5 को निरस्त करने की सिफारिश की थी, क्योंकि इसमें कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया था कि 'गुप्त' क्या है और 'शासकीय गुप्त बात' क्या है ? इसलिए परिभाषा के अभाव में यह सरकार के निर्णय पर निर्भर था, कि कौन सी बात को गोपनीय माना जाए और किस बात को सार्वजनिक किया जाए।

बाद के वर्षो में साल 2006 में 'विरप्पा मोइली' की अध्यक्षता में गठित 'द्वितीय प्रशासनिक आयोग' ने इस कानून को निरस्त करने का सिफारिश किया।

सूचना के अधिकार की मांग राजस्थान से प्रारम्भ हुई। राज्य में सूचना के अधिकार के लिए 1990 के दशक में जनान्दोलन की शुरूआत हुई, जिसमें मजदूर किसान शक्ति संगठन(एम.के.एस. एस.) द्वारा अरूणा राय की अगुवाई में भ्रष्टाचार के भांडाफोड़ के लिए जनसुनवाई कार्यक्रम के रूप में हुई।

1989 में कांग्रेस की सरकार गिरने के बाद बीपी सिंह की सरकार सत्ता में आई, जिसने सूचना का अधिकार कानून बनाने का वायदा किया।

3 दिसम्बर 1989 को अपने पहले संदेश में तत्कालीन प्रधानमंत्री बीपी सिंह ने संविधान में संशोधन करके सूचना का अधिकार कानून बनाने तथा शासकीय गोपनीयता अधिनियम में संशोधन करने की घोषणा की। किन्तु बीपी ंसिह की सरकार तमाम कोशिसे करने के बावजूद भी इसे लागू नहीं कर सकी और यह सरकार भी ज्यादा दिन तक न टिक सकी।

वर्ष 1997 में केन्द्र सरकार ने एच.डी शौरी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित करके मई 1997 में सूचना की स्वतंत्रता का प्रारूप प्रस्तुत किया, किन्तु शौरी कमेटी के इस प्रारूप को संयुक्त मोर्चे की दो सरकारों ने दबाए रखा।

वर्ष 2002 में संसद ने 'सूचना की स्वतंत्रता विधेयक(फ्रिडम ऑफ इन्फॉरमेशन बिल) पारित किया। इसे जनवरी 2003 में राष्ट्रपति की मंजूरी मिली, लेकिन इसकी नियमावली बनाने के नाम पर इसे लागू नहीं किया गया।

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन(यू.पी.ए.) की सरकार ने न्युनतम साझा कार्यक्रम में किए गए अपने वायदो ताकि पारदर्शिता युक्त शासन व्यवस्था एवं भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाने के लिए 12 मई 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 संसद में पारित किया, जिसे 15 जून 2005 को राष्ट्रपति की अनुमति मिली और अन्ततः 12 अक्टूबर 2005 को यह कानून जम्मू–कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में लागू किया गया। इसी के साथ सूचना की स्वतंत्रता विधेयक 2002 को निरस्त कर दिया गया।

इस कानून के राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने से पूर्व नौ राज्यों ने पहले से लागू कर रखा था, जिनमें तमिलनाडु और गोवा ने 1997, कर्नाटक ने 2000, दिल्ली 2001, असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र ने 2002, तथा जम्मू–कश्मीर ने 2004 में लागू कर चुके थे।

सूचना का तात्पर्यः

रिकार्ड, दस्तावेज, ज्ञापन, ईःमेल, विचार, सलाह, प्रेस विज्ञप्तियाँ, परिपत्र, आदेश, लांग पुस्तिका, ठेके सहित कोई भी उपलब्ध सामग्री, निजी निकायो से सम्बन्धित तथा किसी लोक प्राधिकरण द्वारा उस समय के प्रचलित कानून के अन्तर्गत प्राप्त किया जा सकता है।

सूचना अधिकार का अर्थः–

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु आते है– 1. कार्यो, दस्तावेजों, रिकार्डो का निरीक्षण। 2. दस्तावेज या रिकार्डो की प्रस्तावना। सारांश, नोट्स व प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त करना। 3. सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना। 4. प्रिंट आउट, डिस्क, फ्लॉपी, टेप, वीडियो कैसेटो के रूप में या कोई अन्य इलेक्ट्रानिक रूप में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सूचना का अधिकार अधिनियम् 2005 के प्रमुख प्रावधानः 5– समस्त सरकारी विभाग, पब्लिक सेक्टर यूनिट, किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता से चल रहीं गैर सरकारी संस्थाएं व शिक्षण संस्थान आदि विभाग इसमें शामिल हैं। पूर्णतः से निजी संस्थाएं इस कानून के दायरे में नहीं हैं लेकिन यदि किसी कानून के तहत कोई सरकारी विभाग किसी निजी संस्था से कोई जानकारी मांग सकता है तो उस विभाग के माध्यम से वह सूचना मांगी जा सकती है। 6– प्रत्येक सरकारी विभाग में एक या एक से अधिक जनसूचना अधिकारी बनाए गए हैं, जो सूचना के अधिकार के तहत आवेदन स्वीकार करते हैं, मांगी गई सूचनाएं एकत्र करते हैं और उसे आवेदनकर्ता को उपलब्ध कराते हैं। 7– जनसूचना अधिकारी की दायित्व है कि वह 30 दिन अथवा जीवन व स्वतंत्रता के मामले में 48 घण्टे के अन्दर (कुछ मामलों में 45 दिन तक) मांगी गई सूचना उपलब्ध कराए। 8– यदि जनसूचना अधिकारी आवेदन लेने से मना करता है, तय समय सीमा में सूचना नहीं उपलब्ध् कराता है अथवा गलत या भ्रामक जानकारी देता है तो देरी के लिए 250 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से 25000 तक का जुर्माना उसके वेतन में से काटा जा सकता है। साथ ही उसे सूचना भी देनी होगी। 9– लोक सूचना अधिकारी को अधिकार नहीं है कि वह आपसे सूचना मांगने का कारण नहीं पूछ सकता। 10– सूचना मांगने के लिए आवेदन फीस देनी होगी (केन्द्र सरकार ने आवेदन के साथ 10 रुपए की फीस तय की है। लेकिन कुछ राज्यों में यह अधिक है, बीपीएल कार्डधरकों को आवेदन शुल्क में छुट प्राप्त है। 11– दस्तावेजों की प्रति लेने के लिए भी फीस देनी होगी। केन्द्र सरकार ने यह फीस 2 रुपए प्रति पृष्ठ रखी है लेकिन कुछ राज्यों में यह अधिक है, अगर सूचना तय समय सीमा में नहीं उपलब्ध कराई गई है तो सूचना मुफ्त दी जायेगी। 12– यदि कोई लोक सूचना अधिकारी यह समझता है कि मांगी गई सूचना उसके विभाग से सम्बंधित नहीं है तो यह उसका कर्तव्य है कि उस आवेदन को पांच दिन के अन्दर सम्बंधित विभाग को भेजे और आवेदक को भी सूचित करे। ऐसी स्थिति में सूचना मिलने की समय सीमा 30 की जगह 35 दिन होगी। 13– लोक सूचना अधिकारी यदि आवेदन लेने से इंकार करता है। अथवा परेशान करता है। तो उसकी शिकायत सीधे सूचना आयोग से की जा सकती है। सूचना के अधिकार के तहत मांगी गई सूचनाओं को अस्वीकार करने, अपूर्ण, भ्रम में डालने वाली या गलत सूचना देने

अथवा सूचना के लिए अधिक फीस मांगने के खिलाफ केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग के पास शिकायत कर सकते है। 14– जनसूचना अधिकारी कुछ मामलों में सूचना देने से मना कर सकता है। जिन मामलों से सम्बंधित सूचना नहीं दी जा सकती उनका विवरण सूचना के अधिकार कानून की धारा 8 में दिया गया है। लेकिन यदि मांगी गई सूचना जनहित में है तो धारा 8 में मना की गई सूचना भी दी जा सकती है। जो सूचना संसद या विधानसभा को देने से मना नहीं किया जा सकता उसे किसी आम आदमी को भी देने से मना नहीं किया जा सकता। 15– यदि लोक सूचना अधिकारी निर्धारित समय–सीमा के भीतर सूचना नहीं देते है या धारा 8 का गलत इस्तेमाल करते हुए सूचना देने से मना करता है, या दी गई सूचना से सन्तुष्ट नहीं होने की स्थिति में 30 दिनों के भीतर सम्बंधित जनसूचना अधिकारी के वरिष्ठ अधिकारी यानि प्रथम अपील अधिकारी के समक्ष प्रथम अपील की जा सकती है। 16– यदि आप प्रथम अपील से भी सन्तुष्ट नहीं हैं तो दूसरी अपील 60 दिनों के भीतर केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग (जिससे सम्बंधित हो) के पास करनी होती है। विश्व पांच देशों के सूचना के अधिकार का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए पांच देशों स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत का चयन किया गया और इन देशों के कानून, लागू किए वर्ष, शुल्क, सूचना देने की समयावधि, अपील या शिकायत प्राधिकारी, जारी करने का माध्यम, प्रतिबन्धित करने का माध्यम आदि का तुलना सारणी के माध्यम से किया गया है। देश स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको, भारत कानून संविधान कानून द्वारा संविधान संविधान कानून द्वारा लागू वर्ष 1766 1982 1978 2002 2005 शुल्क निशुल्क निशुल्क निशुल्क निशुल्क शुल्क द्वारा सूचना देने की समयावधि तत्काल 15 दिन 1 माह 20 दिन 1 माह या (जीवन व स्वतंत्रता के मामले में 48 घण्टा) अपील/ शिकायत प्राधिकारी न्यायालय सूचना आयुक्त संवैधानिक अधिकारी द नेशन कमीशन ऑफ ऐक्सेस टू पब्लिक इन्फॉर्मेशन विभागीय स्तर पर प्रथम अपीलीय अधिकारी अथवा सूचना आयुक्त/मुख्य सूचना आयुक्त केन्द्रीय या राज्य स्तर पर। जारी करने का माध्यम कोई भी कोई भी किसी भी रूप में इलेक्ट्रानिक रूप में सार्वजनिक ऑफलाईन एवं आनलाईन प्रतिबन्धित सूचना गोपनीयता एवं पब्लिक रिकार्ड एक्ट 2002 सुरक्षा एवं अन्य देशों से सम्बन्धित सूचनाएँ मैनेजमंट ऑफ गवर्नमेण्ट इन्फॉरमेशन होल्डिंग 2003 डाटा प्रोटेक्शन एक्ट 1978 ऐसी सूचना जिससे देश का राष्ट्रीय, आंतरिक व बाह्य सुरक्षा तथा अधिनियम की धारा 8 से सम्बन्धित सूचनाएँ।

विश्व में पांच देश स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको और भारत के सूचना का अधिकार कानून का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत है–

विश्व में सबसे पहले स्वीडन ने सूचना का अधिकार कानून 1766 में लागू किया, जबकि कनाडा ने 1982, फ्रांस ने 1978, मैक्सिको ने 2002 तथा भारत ने 2005 में लागू किया। 1– विश्व में स्वीडन पहला ऐसा देश है, जिसके संविधान में सूचना की स्वतंत्रता प्रदान की है, इस मामले में कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत का संविधान उतनी आज़ादी प्रदान नहीं करता। जबकि

स्वीडन के संविधान ने 250 वर्ष पूर्व सूचना की स्वतंत्रता की वकालत की है। 2– सूचना मांगन वाले को सूचना प्रदान करने की प्रक्रिया स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत में अलग–अलग है जिसमें स्वीडन सूचना मांगने वाले को तत्काल और निशल्क सूचना देने का प्रावधान है। 3– सूचना प्रदान करने लिए फ्रांस और भारत में 1 माह का समय निर्धारित किया गया है, हालांकि भारत ने जीवन और स्वतंत्रता के मामले में 48 घण्टे का समय दिया गया है, किन्तु स्वीडन अपने नागरिकों को तत्काल सूचना उपलब्ध कराता है, जबकि कनाडा 15 दिन तथा मैक्सिको 20 दिन में सूचना प्रदान कर देता है। 4– सूचना न मिलने पर अपील प्रक्रिया भी लगभग एक ही समान है। स्वीडन में सूचना न मिलने पर न्यायालय में जाया जाता है। कनाडा तथा भारत में सूचना आयुक्त जबकि फ्रांस में संवैधानिक अधिकारी एवं मैक्सिको में 'द नेशनल ऑन एक्सेस टू पब्लिक इनफॉरमेशन' अपील और शिकयतों का निपटारा करता है। 6– स्वीडन किसी भी माध्यम द्वारा तत्काल सूचना उपलब्ध कराता है जिनमें वेबसाइट पर भी सूचना जारी किया जाती है। कनाडा और फ्रांस अपने नागरिकों को किसी भी रूप में सूचना दे सकता है, जबकि मैक्सिको इलेक्ट्रॉनिक रूप से सूचनाओं का सार्वजनिक करता है तथा भारत प्रति व्यक्ति को सूचना उपलब्ध कराता है। 7– गोपनीयता के मामले में स्वीडन ने गोपनीयता एवं पब्लिक रिकार्ड एक्ट 2002, कनाडा ने सुरक्षा एवं अन्य देशों से सम्बन्धित सूचनाएँ मैनेजमंट ऑफ गवर्नमेण्ट इन्फॉरमेशन होल्डिंग 2003, फ्रांस ने डाटा प्रोटेक्शन एक्ट 1978 तथा भारत ने राष्ट्रीय, आंतरिक व बाह्य सुरक्षा तथा अधिनियम की धारा 8 में उल्लिखित प्रावधानों से सम्बन्धित सूचनाएँ देने पर रोक है।

सूचना का अधिकार (संशोधन) विधेयक, 2019

हाल ही में लोकसभा ने सूचना का अधिकार (संशोधन) विधेयक, 2019 [Right to Information (Amendment) Bill, 2019] पारित किया। इस विधेयक में सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 को संशोधित करने का प्रस्ताव किया गया है।

संशोधन के प्रमुख बिंदु :

- सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अनुसार मुख्य सूचना आयुक्त (Chief Information Commissioner) और सूचना आयुक्तों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है, परंतु संशोधन के तहत इसे परिवर्तित करने का प्रावधान गया है। प्रस्तावित संशोधन के अनुसार, मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों का कार्यकाल केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाएगा।
- नए विधेयक के तहत केंद्र और राज्य स्तर पर मुख्य सूचना आयुक्त एवं सूचना आयुक्तों के वेतन, भत्ते तथा अन्य रोज़गार की शर्तें भी केंद्र सरकार द्वारा ही तय की जाएंगी।

- सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 यह प्रावधान करता है कि यदि मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त पद पर नियुक्त होते समय उम्मीदवार किसी अन्य सरकारी नौकरी की पेंशन या अन्य सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त करता है तो उस लाभ के बराबर राशि को उसके वेतन से घटा दिया जाएगा, लेकिन इस नए संशोधन विधेयक में इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है।

लोकपाल एवं लोकायुक्त संशोधन (2016)

लोकपाल एवं लोकाष्क्त अधिनियम 2013 को संशोधित करने के लिए संसद ने जुलाई 2016 में पारित किया। इसके द्वारा यह निर्धारित किया कि विपक्ष में मान्यता प्राप्त नेता के अभाव में लोकसभा में सबसे बड़े एकल विरोधी दल का नेता चयन समिति का सदस्य होगा। जबकि लोकपाल एवं लोकपाल अधिनियम 2013 में लोकसभा में विपक्ष के नेता को चुनने का प्रावधान किया।

इसके द्वारा वर्ष 2013 के अधिनियम की धारा 44 में भी संशोधन किया गया जिसमें प्रावधान है कि सरकारी सेवा में आने के 30 दिन के भीतर लोकसेवकों को अपनी सम्पतियों और दायित्वों का विवरण प्रस्तुत करना होगा। संशोधन 2016 के तहत 30 दिनों कि समय – सीमा भी समाप्त कर दी गई, संशोधन (2016) में निश्चित किया गया कि अब लोकसेवक अपनी सम्पतियों और दायित्वों की घोषणा सरकार द्वारा निर्धारित रूप में एवं तरीके से करेंगे।

यह संशोधन ट्रस्टियों और बोर्ड के सदस्यों को भी अपनी तथा पति/पत्नी की परिसम्पतियों की घोषणा करने के लिए दिए गए समय में बढ़ोतरी करता है, इन मामलों में जहां वे एक करोड़ रूपये से अधिक सरकारी या 10 लाख रूपये से अधिक विदेशी धन प्राप्त करते हों।

निष्कर्ष–

सूचना का अधिकार कानून आज विश्व के 80 से देशों के लोकतंत्र की शोभा बढ़ा रही है। जिन देशों ने सूचना के अधिकार को महत्ता दी है बेशक उनमें से स्वीडन को भूलाया नहीं जा सकता। अगर साफ शब्दों में कहा जाए तो स्वीडन सूचना अधिकार कानून की जननी है, उससे भी महान स्वीडन का संविधान है, जिसने पूरी दुनिया में पुराना संविधान होने का दावा किया, जिसमें सूचना का अधिकार को अपने दामन समेटे हुए लोकतंत्र को परिभाषित किया गया है।

अन्य देशों ने जहाँ सूचना देने के लिए समयसीमा निर्धारित कर रखी है, वहीं स्वीडन ने सूचना तत्काल और निशुल्क दिए जाने की पैरवी की है। मैक्सिको ने जहां खुद ही अपने नगारिको को सूचना लेने और सरकार को सूचना स्वतः प्रकाशित करने का निर्देश दिया है, जिसने लोगो का आज़ादी का एक नया पंख लगा दिया है।

स्वतः सूचना जारी करने काा निर्देश तो भारत की सरकार ने भी दिया है, लेकिन किसी भी राज्य और केन्द्र के विभाग ने इसकी कोई पहल नहीं की।

भारत में लोक सेवको, राजनेताओं और नौकरशाहो ने इस कानून को बकवास कहकर बंद करने की मांग उठाते रहते है। खुद पूर्व प्रधानमंत्री डा0 मनमोहन सिंह ने इस कानून के दायरे को कम करने और गोपनीयता बढ़ाने की वकालत की है। भारत में इसकी स्थिति यहां तक पहुंच चुकी है कि खुद सरकार ही इस कानून को लेकर गम्भीर नहीं नज़र आती। वर्तमान प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक कार्यक्रम के दौरान कहा कि 'आरटीआई किसी को खाने के लिए नहीं देता' ऐसे बयानों से सरकार की मंशा जग ज़ाहिर हो चुकी है।

सूचना आयुक्तों की नियुक्ति भी निष्पक्षता से नहीं किया जाता। पूर्व नौकरशाहों और अपने चहेतो को इस कानून का मुहाफ़िज़ के रूप में सूचना आयुक्त बनना भ्रष्टाचार और दोहरी नीति का उदाहरण है। भ्रष्टाचार की मुखालिफत और पारदर्शिता के हामी भरने वाले सियासी लोग और सियासी दल आरटीआई के दायरे में आने का विरोध कर चुके हैंऔर सत्ताधारी व विपक्षी दल सभी मिलकर एकजुट कर इस कानून के दायरे में न आने के लिए एक मंच पर नज़र आते हैं।

लोकपाल विधेयक, 1996: मुख्य विशेषताएं

(Lokpal Bill, 1996: Salient Features)

देवगौड़ा सरकार ने 13 दिसम्बर, 1996 को लोकसभा में बहुप्रतीक्षित लोकपाल विधेयक पेश किया। इस विधेयक के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं:

1. **लोकपाल संस्था का गठन:** यह बहुसदस्यीय संस्था होगी जिसमें अध्यक्ष के अलावा दो सदस्य भी होंगे।
2. **लोकपाल संस्था की नियुक्ति:** इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति एक समिति की सहायता से करेंगे जिसके अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होंगे। समिति के अन्य सदस्यों में लोकसभा अध्यक्ष, राज्य सभा का उप–सभापति, लोकसभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता, गृह मन्त्रालय के भार साधक मन्त्री तथा सार्वजनिक शिकायत एवं कार्मिक मन्त्रालय के भार साधक मन्त्री होंगे।
3. **लोकपाल संस्था के अध्यक्ष तथा सदस्य:** तीन सदस्यीय लोकपाल संस्था का अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय का पूर्व अथवा वर्तमान मुख्य न्यायाधीश होगा तथा अन्य दो सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हैं या उस पद की योग्यता रखते हैं।

लोकपाल का अध्यक्ष अथवा सदस्य बनने से पहले किसी भी व्यक्ति को अपनी संसद या विधानमण्डल सदस्यता से इस्तीफा देना होगा, लाभ मिलने वाले अन्य सभी पद त्यागने होंगे, राजनीतिक दलों की सदस्यता छोड़नी होगी, किसी भी व्यापार अथवा उद्यम का

प्रबन्ध कार्य छोड़ना होगा तथा अन्य किसी भी प्रकार की व्यावसायिक गतिविधि बन्द करनी होगी।

4. **सेवा शर्तें:** लोकपाल के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा शर्तें, वेतन भत्ते और पेंशन सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर होंगे। लोकपाल का सदस्य बनने से किसी भी व्यक्ति की पिछली नौकरी के पेंशन ग्रेच्युटी अथवा किसी अन्य सुविधा में कोई कटौती नहीं होगी।

   यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि लोकपाल स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने में और अपने कृत्यों का निर्वहन बिना भय और पक्षपात के करने में समर्थ हो सके, यह विधेयक उपबन्ध करता है कि लोकपाल का अध्यक्ष सदस्य अपने पद से राष्ट्रपति द्वारा साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर भारत के मुख्य न्यायाधीश या इस प्रयोजन के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नाम निर्देशित किए गए उच्चतम न्यायालय के किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के पश्चात् किए गए आदेश द्वारा ही हटाया जाएगा अन्यथा नहीं।

5. **लोकपाल संस्था का क्षेत्राधिकार:** विधेयक के अनुसार, लोकपाल यह अभिकथन करने वाले परिवादों की जांच करेगा कि विधेयक में परिभाषित, लोक सेवक ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन दण्डनीय कोई अपराध किया है और 'लोक सेवक' पद के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री, मन्त्री, राज्यमन्त्री, उपमन्त्री और संसद के सदस्य हैं।

   लोकपाल के स्वतः जांचाधिकार दायरे में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य और अन्य न्यायाधीश, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक, मुख्य एवं अन्य निर्वाचन आयुक्त और लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य शामिल नहीं होंगे।

6. **जांच प्रक्रिया:** लोकपाल को जांच के लिए केन्द्र अथवा राज्य सरकार की किसी भी जांच एजेंसी अथवा किसी अधिकारी की सहायता लेने का अधिकार होगा। इस दौरान एजेन्सी अथवा अधिकारी केवल लोकपाल के निर्देशानुसार काम करेंगे और लोकपाल की रिपोर्ट करेंगे। जिस आरोप की जांच लोकपाल कर रहा हो उसकी जांच आयोग अधिनियम के अन्तर्गत समानोत्तर जांच नहीं की जा सकेगी।

   लोकपाल को की गई शिकायत झूठी और गलत सिद्ध होने की स्थिति में लोकपाल को शिकायत करने वाले को न्यूनतम एक वर्ष और अधिकतम तीन वर्ष के कारावास का दण्ड देने का अधिकार दिया गया है। इसके अलावा गलत शिकायत करने वाले पर 50 हजार रूपये का भी प्रावधान किया गया है। दूसरी तरफ यह प्रावधान भी है कि किसी शिकायतकर्ता के सभी अथवा कुछ आरोप पूरी तरह अथवा आंशिक रूप से सिद्ध हो जाते हैं और यह पाया जाता है कि इस प्रक्रिया में शिकायतकर्ता का कुछ खर्च हुआ है तथा लोकपाल समझता है कि उसे मुआवजा अथवा इनाम दिया जाना चाहिए ता वह केन्द्रीय सरकार से शिकायतकर्ता को समुचित राशि दिलवा सकेगा।

संक्षेप में, यह विधेयक पूर्व में निर्मित लोकपाल विधेयकों की तुलना में अधिक व्यापक और तर्कसंगत है। प्रधानमन्त्री को भी विधेयक के दायरे में लिया गया है। विधेयक नागरिकों को न्यायालय की प्रक्रियाओं के माध्यम से अपना उपचार पाने से बचाने के लिए है जो महंगा या विलम्बकारी साबित हो सकता है। यी प्रशानिक सुधार आयोग की सिफारिशों के उद्देश्य और प्रयोजन को कार्यान्वित करने के लिए है।

लोकपाल विधेयक, 1998: मुख्य विशेषताएं

(Lokpal Bill, 1998: Salient Features)

3 अगस्त, 1998 को प्रधानमन्त्री अटल बिहार वाजपेयी ने बहुचर्चित लोकपाल विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया। विधेयक के प्रमुख प्रावधान निम्नांकित हैं:

विधेयक के पारित होने पर नियुक्त किए गए लोकपाल को सेवारत एवं पूर्व प्रधामन्त्रियों व मन्त्रियों तथा संसद के दोनों सदनों के सदस्यों व पूर्व सदस्यों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच का अधिकार होगा। प्रधानमन्त्री को भी लोकपाल की जांच के दायरे में लाया गया है। किन्तु राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, नियन्त्रक एवे महालेखा परीक्षक, मुख्य निर्वाचन आयुक्त व अन्य निर्वाचन आयुक्तों, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के विरूद्ध जांच का अधिकार इसे नहीं होगा।

विधेयक के अनुसार प्रस्तावित लोकपाल त्रिसदस्यीय होगा जिसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त दो अन्य सदस्य होंगे। सर्वोच्च न्यायालय के सेवारत या पूर्व मुख्य न्यायाधीश या उसके किसी न्यायाधीश को ही लोकपाल का अध्यक्ष बनाया जा सकेगा जगकि इसके सदस्य के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के सेवारत या पूर्व न्यायाधीश को नियुक्त किया जा सकेगा। इनका कार्यकाल विधेयक में तीन वर्ष का प्रस्तावित किया गया है तथा यह 70 वर्ष की आयु तक ही इस पद पर रहेंगे।

विधेयक के अनुसार लोकपाल की नियुक्ति सात सदस्यीय चयन समिति की संस्तुति के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। उपराष्ट्रपति इस चयन समिति के सदस्य होंगे। इस समिति के सदस्यों में प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री, लोकसभाध्यक्ष, संसद के उस सदन के नेता जिसके प्रधानमन्त्री सदस्य न हों तथा लोकसभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता शामिल होंगे।

एक बार लोकपाल संस्था का अध्यक्ष या सदस्य रहने वाले व्यक्ति की न तो उस लोकपाल में पुनःनियुक्ति होगी और न ही उसे केन्द्र या किसी राज्य सरकार में लाभ के किसी पद पर नियुक्त किया जा सकेगा।

दुर्व्यवहार या अक्षमता सिद्ध होने की स्थिति में लोकपाल के अध्यक्ष या किसी सदस्य को राष्ट्रपति द्वारा ही उसके पद से हटाया जा सकेगा।

लोकपाल के बाद अध्यक्ष का वेतन व अन्य सेवा शर्तें सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के समान तथा इसके सदस्यों के वेतन व सेवा शर्तें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होंगे।

विधेयक में किए गए एक प्रावधान के तहत किसी भी अपराध के 10 वर्ष के भीतर की गई शिकायतों पर ही विचार करने का अधिकार लोकपाल का होगा।

लोकपाल विधेयक में यह भी प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक सांसद को सदन की सदस्यता की शपथ लेने के 90 दिन के भीतर लोकपाल के समक्ष अपनी व अपने परिवार के सदस्यों की सम्पत्ति का ब्यौरा पेश करना होगा। इसके बाद उसे प्रत्येक वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही में ऐसा करना होगा। झूठी व मनगढन्त शिकायतों को हतोत्साहित करने के लिए भी विधेयक में प्रावधान किया गया है। झूठी शिकायत का दोषी पाए जाने पर एक से तीन वर्ष की सजा तथा 50 हजार रूपये के जुर्माने का प्रावधान किया गया है।

इसके बाद लोकपाल विधेयक 2001 में प्रस्तुत किया गया। अभी 15 अगस्त 2003 को प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने जोर देकर कहा कि लोकपाल विधेयक जल्द ही पास किया जाएगा जिसके तहत प्रधानमन्त्री का पद भी होगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राजनीतिक खींचतान के कारण लोकपाल विधेयक अभी तक पास नहीं हो पाया है, लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण व सराहनीय कदम उठाया है। रिजर्व बैंक ने 4 जून, 1995 को ग्राहक तथा बैंक अधिकारियों के बीच मधुर सम्बन्ध बनाने तथा ग्रहकों की बैंक सम्बन्धी शिकायतों के निवारण हेतु एक "बैंकिंग लोकपाल" की स्थापना की है।

राज्य स्तर पर अम्बुड्समेन (लोकायुक्त)

(Ombudsman-Lokayukta at the State Level)

किसी न किसी कारणवश लोकपाल का संस्थान केन्द्रीय स्तर पर अभी स्थापित नही हो पाया, किन्तु राज्यों में स्थिति उत्साहजनक है। उड़ीसा ऐसा पहला राज्य था जिसने लोकायुक्त ऐक्ट को लागू किया। महाराष्ट्र ने सर्वप्रथम लोकायुक्त नियुक्त किया। राजस्थान ने 1973 में ऐसा विधान लागम किया। बिहार में लोकायुक्त संस्थान की स्थापना एक अध्यादेश जारी करके 1973 में की गई जिसको कुछ समय उपरान्त विधि का रूप दे दिया था। उत्तर प्रदेश में 1975 में लोकायुक्त और उपलोकायुक्त ऐक्ट पास किया। कर्नाटक ने फरवरी, 1983 में एक अध्यादेश लागू किया और 1985 में इसको कानून का रूप दिया। आन्ध्र प्रदेश विधानसभा ने 1982 में लोकायुक्त और उपलोकायुक्त विधेयक पास किया। मध्य प्रदेश लोकायुक्त तथा उपलोकायुक्त विधेयक को 1981 में पास किया गया और हिमाचल प्रदेश में ऐसा कानून 1983 में लागू किया गया। केरल में

पब्लिक प्रीवैन्शन ऑफ करेप्शन ऐक्ट 1983 (Public Prevention of Corrutption Act, 1983) से लागू है और नागालैण्ड में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए विजिलैन्स आयोग (Vigilance Commission) कार्य कर रहा है। गुजरात भी शीघ्र ही ऐसा संस्थान स्थापित करने का यत्न कर रहा है। अतः भारत में अब तक आधे राज्य लोकायुक्त संस्थान की स्थापना कर चुके हैं।

दिल्ली में लोकायुक्त ऐक्ट 1996 में पास किया गया, यह अन्य राज्यों की तुलना में अधिक प्रगतिशील है क्योंकि यह ऐक्ट लोकायुक्त को ना केवल उन शिकायतों की जांच–पड़ताल करने का अधिकार देता है जो उसको प्राप्त हुई हैं, अपितु उन अधिकारियों को दण्ड देने की सत्ता भी प्रदान करता है जो ऐक्ट के अधीन भ्रष्टाचार के दोषी पाए गए हैं। दिल्ली में एक लोकायुक्त तथा एक उप–लोकायुक्त होगा। किसी भी नागरिक को यदि किसी लोक अधिकारी (नौकरशाह), सरकारी कर्मचारी, विधायक, नगर पार्षद या मन्त्रीमण्डल के मन्त्री या दिल्ली के मुख्यमन्त्री के विरूद्ध कोई शिकायत है जो वह उसे सीधे लोकायुक्त को भेज सकता है। उसे उच्च न्यायालय के समान शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अतः वह उन आरोपों की जांच–पड़ताल कर सकता है जो उनके सम्मुख लाए गए हैं और जो व्यक्ति भ्रष्टाचार के दोषी पाए गए हैं उनको दण्ड दे सकता है। उसके निर्णय के विरूद्ध अपील केवल सर्वोच्च न्यायालय को दी जा सकती है।

हरियाणा में लोकायुक्त अधिनियम के तहत 1997 में पहली बार लोकायुक्त की नियुक्ति की गई। सामान्यतः सभी राज्यों के "लोकायुक्त एवं उपलोकायुक्त अधिनियमों" के निम्न प्रावधान किए गए हैं:

1. लोकायुक्त एवं उपलोकायुक्त की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री एवं सदन में विपक्षी दल के नेता के साथ परामर्श से की जाएगी।
2. लोकायुक्त एवं उपलोकायुक्त का कार्यकाल 5 वर्ष होगा।
3. लोकायुक्त राज्य सरकार के मन्त्रियों एवं सचिवों के विरूद्ध तथा उपलोकायुक्त सचिव स्तर के नीचे के अधिकारियों के विरूद्ध आई हुर्द शिकायतों एवं अभियोगों की जांच करेगा।
4. लोकायुक्त एव उपलोकायुक्त के वेतन, भत्ते, सेवा शर्तें तथा पद सुविधायें क्रमशः उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों के समान होगी।
5. इनकी कार्य प्रणाली पूर्णतः गोपनीय होगी।
6. इन्हें अपने पद से केवल महाभियोग–प्रक्रिया द्वारा ही अपदस्थ किया जा सकेगा।

कुल मिलाकर लोकायुक्त पदों की उपयोगिता को निम्न आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है:

1. ये जनता की शिकायतों के निराकार के लिए सुगमता और स्वतन्त्रतापूर्वक सहज उपलब्ध हो सकते हैं।

2. यह न्याय प्राप्त करने का सुगम, मितव्ययीय और शीघ्रगामी साधन है।
3. यह प्रशासनिक अकुशलता तथा भ्रष्टाचार के निवारण हेतु सुधारात्मक तथा अवरोधात्मक दोनों प्रकार के प्रयास करता है।
4. यह एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष संस्था है, जो कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका तीनों से स्वतन्त्र होकर कार्य करती है।
5. इनमें मध्यस्थों की आवश्यकता नहीं होती है।
6. इनके द्वारा सभी विषयों पर न्यायपूर्ण और निष्पक्ष विचार किया जाता है।
7. ये पद न्यायोचित हितों की अतिरिक्त गारन्टी है।
8. ये उत्तरदायित्व और सन्तुलित निर्णय के साथ कार्य करते हैं क्योंकि यह संसद के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। इनके द्वारा शक्ति के दुरूपयोग किए जाने की दशा में संसद द्वारा उचित कार्यवाही की जाती है।

भारतीय अनुभव का मूल्यांकन

(Evaluation of the Indian Experience)

भारत के जिन राज्यों में अम्बड्समेन संस्थान की स्थापना कुशासन को रोकने के लिए की गई थी वहाँ आशानुकूल सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसके कई कारण हैं:

प्रथम, भ्रष्टाचार और कुशासन से लड़ने के लिए दो पृथक् संस्थान, जैसा कि अन्य देशों में स्थापित किए गए हैं, भारत में स्थापित नहीं किए गए–एक कुशासन के लिए और दूसरा भ्रष्टाचार के लिए। यहाँ इन दोनों कार्यों को एक ही संस्थान करता है। जैसा कि प्रो० डोनाल्ड सी० रोवत (Prof. Donald C. Rowat) का कहना है–

"भारत की योजना में मुख्य दोष यह रहा कि यहाँ अम्बुड्समेन संस्थान को भ्रष्टाचार से लड़ने वाली मशीनरी के साथ जोड़ दिया गया है और परिणाम यह हुआ कि पीड़न सम्बन्धी शिकायतों पर ठीक उसी प्रकार कार्यवाही की गई है, जैसी कि दुर्व्यवहार या भ्रष्टाचार की शिकायतों पर। इसके दो दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुए हैं। मंन्त्रियों व उच्चअधिकारियों में अपने विरूद्ध या अपने साथी अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों के भय का अर्थ यह हुआ है कि उन्होंने इस योजना को बड़ा कमजोर समर्थन दिया है जो इसकी प्रभावी ढ़ंग से कार्य करने में तोड़–फोड़ या अन्तर्ध्वस की रेखा तक पहुँच गया है। दूसरा परिणाम यह हुआ है कि जिन भयावह औपचारिक कार्यविधियों को आरोपों की जांच–पड़ताल के लिए बनाया गया है, वहीं समान रूप से पीड़न की शिकायतों पर लागू की जाती हैं। इसका उग्र उदाहरण यह है कि शिकायत करने वाले को झूठा बयान दे बैठने की स्थिति में दण्डित किए जाने की धमकी दी

गई है। दूसरे देशों में अम्बुड्समेन को प्रायः क्षुद्र या छोटे व्यक्ति का मित्र–सहायक समझा जाता है जो वर्तमान राज्य की नौकरशाही के रथ की अन्धी शक्ति से उसकी रक्षा करता है।"

द्वितीय, चूँकि लोकायुक्त संस्थान भ्रष्टाचार के मामलों पर भी कार्यवाही करता है, इसके कारण इतने राजनीतिज्ञों के कुछ वर्गों से शत्रुता मोल ली है, क्योंकि अधिकतर भ्रष्टाचार का प्रारम्भ इसी स्तर पर होता है। राजनीतिज्ञ इसको न केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिए खतरा मानते हैं, अपितु उनको यह भी डर है कि यह संस्थान कार्यवाही सत्ता का एक विरोधी केन्द्र बन गया है। यह डर निराधार है, फिर भी प्रचलित है और इससे इस संस्थान के कार्य करने पर प्रभाव पड़ा है। बिहार के मुख्यमन्त्री का यह कथन उल्लेखनीय है। उसने कहा "व्यक्तिगत तौर पर मैं यह अनुभव करता हुँ कि लोकायुक्त संस्थान की स्थापना करके और इसको यह शक्तियाँ देकर कि वह सदन के सदस्यों व मन्त्रियों के व्यवहार की जांच–पड़ताल कर सके, इस संप्रभु सदन ने अपनी संप्रभुता को खो दिया है।"

तृतीय, लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र की भी समस्या उत्पन्न हुई है। कई राज्यों ने भूतपूर्व मन्त्रियों और भूतपूर्व लोक–अधिकारियों को लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा है। अतः कई बार ऐसा होता है कि लोक अधिकारी अपने पद की अवधि के अन्तिम समय में अपराध करते हैं क्योंकि वे यह जानते हैं कि पद छोड़ जाने के उपरान्त लोकायुक्त उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही कर सकता। शिमला में लोकायुक्त और उपलोकायुक्तों का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें भी उस आवश्यकता का अनुभव किया गया कि भूतपूर्व लोक–अधिकारियों को लोकायुक्त के अधिकार–क्षेत्र में लाया जाना चाहिए।

चतुर्थ, लोकायुक्तों द्वारा किए जा रहे कार्य से पता चलता है कि उनके द्वारा प्राप्त शिकायतों का तुरन्त निपटारा नहीं किया जाता। उनके पास रूकी हुई शिकायतों की संख्या बढ़ती जा रही है। शिकायतों का निपटारा करने में बहुत समय लग जाता है जिससे इस संस्थान को स्थापित करने का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। (शिकायत करने वाले को तुरन्त और सस्ता न्याय दिलवाना) यदि लोकायुक्त भी तुरन्त न्याय नहीं दिलवा सकता तो इसकी मुख्य विशेषता ही समाप्त हो जाएगी।

पंचम, कई राज्यों में लोकायुक्त के अधीन जांच–पड़ताल करने वाला अपना स्वतन्त्र कोई संगठन नहीं होता जो शिकायतों की छानबीन कर सके। जांच–पड़ताल का अधिकतर कार्य सरकारी अभिकरण या संस्था को ही करना पड़ता है। इससे जनता में और शिकायत करने वालों में यह विश्वास नहीं जगाया जा सकता कि उनके साथ न्याय होगा। अतः इस बात की आवश्यकता है कि कर्नाटक की भाँति अन्य राज्यों में भी लोकायुक्त के अधीन जांच–पड़ताल करने वाले स्वतन्त्र संगठन को स्थापित किया जाए।

4.2.4 निष्कर्षः–

अन्त में यह कहना होगा कि भले ही इस संस्थान की कुछ कमजोरियां हों, फिर भी इस संस्थान का होना न होने की अपेक्षा अच्छा है। इस संस्थान की केवल उपस्थिति मात्र ही लोक–अधिकारियों में संयम से कार्य करने के लिए डर उत्पन्न करेगी। जैसे–जैसे समय बीतेगा यह संस्थान सुधारों और समायाजन के द्वारा विकसित होगा। आवश्यकता इस बात कि है कि राजनीतिज्ञों और प्रशासकों को इसकी वांछनीयता में विश्वास होना चाहिए और इसको सहयोग देने के लिए सही व्यवहार हो। इस सन्दर्भ में प्रो० रावत की चेतावनी यहाँ उल्लेखनीय होगी। उनका कहना है कि इस व्यवस्था को प्रतिरोपित करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए–"अम्बृड्समैन रामबाण या सर्वरोगहारी औषधी नहीं हो सकता। कई लोग अम्बुड्समैन का एक प्रकार का जादू का शब्द समझते हैं जो सभी प्रशासनिक रोगों का उपचार कर देगा। किन्तु राज्य और व्यक्ति के बीच सम्बन्धों की पुरातन समस्या बहुत अधिक जटिल है जो किसी एक सरल योजना द्वारा नहीं सुलझाई जा सकती। प्रशासनिक कार्य पर हमें विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणों की आवश्यकता है और अम्बुड्समैन योजना के साथ–साथ सुधारों की जरूरत है जो हमारी नियन्त्रण व्यवस्था में रिक्त स्थानों की पूर्ति कर सके, अन्यथा यह योजना असफल हो सकती है क्योंकि हम इससे बहुत कुछ करवाने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

4.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. शिकायत निवारण संस्थाएं
2. लोकपाल
3. लोकायुक्त
4. अम्बुड्समेन
5. लोकहित मुकदमें

4.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. लोकपाल से क्या अभिप्राय है।
2. लोकायुक्त विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
3. शिकायत निवारण संस्थाओं से क्या अभिप्राय है।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में नागरिकों की शिकायतों को दूर करने के लिए 'शिकायत निवारण संस्थाओं' का क्या योगदान है।

2. भारत में केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित संस्था लोकपाल पर विस्तृत नोट लिखिए।
3. भारत में राज्य स्तर पर लोकायुक्त की क्या स्थिति है? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. विधानमण्डलो के उन प्रयासों की व्याख्या कीजिए जिनसे नागरिकों की शिकायतों को हल किया जा सकता है।
5. उन कानूनी प्रावधानों की व्याख्या कीजिए जो भारत में शिकायतों के निवारण के लिए बनाए गए है।

सन्दर्भ सूची

1. वुडरो विल्सन, दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्टेसन, पोलिटिकल सांइस क्वार्टरली, नं० 2, जून, 1887
2. एल. डी. व्हाईट, इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1926
3. फ्रेंक जे. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1900
4. लूथर गुलिक एवं लैंडल उर्विक, पेपरस ऑन दी सांइस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. अवस्थी एवं महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1983
6. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2002
7. एच. ई. मेकर्डी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए बिबलियोग्राफिक गाइड टू दी लिटरेचर, डेक्कर, 1986
8. जी.ए. ग्रहाम, ट्रेण्ड इन टिचींग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 10, 1950
9. अच. जी. फ्रैडरिक्सन, दी डाइमेन्सन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, 1979
10. आर. सी. चॉदलर एण्ड जे. सी. पलानो, दी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डिक्सनरी, न्यूयार्क, 1982
11. राबर्ट गोलम्ब्यूहकी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डवलपिंग डिसिपलिन, न्यूयार्क, 1977
12. एस. आर. महेश्वरी, प्रशासनिक सिद्धान्त, मेकमिलन, 2003
13. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
14. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
15. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
16. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
17. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
18. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956

19. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
20. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
21. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
22. डवाइट वाल्डो (सम्पादित) आइडियाज एण्ड इसूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1953
23. लक्ष्मीनारायण, पब्लिक इन्टरप्राईज मनेजमेंट एण्ड प्राइवेटाइजेशन, 2003
24. पॉल एपलबी, बिग डेमोक्रेसी, न्यूयार्क, 1945
25. जी. टल्लोक, दि पोलिटिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी, वाशिंगटन, पब्लिक अफेयर प्रैस, 1965
26. जे. हारबटमैस, दि स्ट्रकचरल ट्रांसफोरमेसन्स ऑफ दि पब्लिक सफियर, लन्दन, पोलिसी प्रैस, 1989
27. एन. जे. साथर, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन इन दि अमेरिका, न्यूयार्क सैन्टमारटिन्स, 1975
28. आर.एस. लोच, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन्ट पाल, मिनोसोटा, वैस्ट पब्लिसिं, 1978
29. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
30. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
31. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
32. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
33. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
34. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012।

4.3

पंचायती राज और विकास चुनौतियां

(Panchayati Raj and Challenges of Development)

4.3.1 परिचयः–

भारत गांवों का देश है। गावों की उन्नति और प्रगति पर ही भारत की उन्नति और प्रगति पर निर्भर करती है। गांधीजी ने ठीक ही कहा था कि "यदि गांव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जाएगा।" भारत के संविधान–निर्माता भी इस तथ्य से भली–भांति परिचित थे अतः हमारी स्वाधीनता को साकार करने और उसे स्थायी बनाने के लिए ग्रामीण शासन–व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। हमारे संविधान में यह निर्देश दिया गया है कि "राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कदम उठायेगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा जिससे कि वे (ग्राम पंचायतें) स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सके।" वस्तुतः हमारा जनतन्त्र इस बुनियादी धारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन कार्यों में हाथ बंटाए और अपने पर, राज करने की जिम्मेदारी स्वयं झेले। भारत में जनतन्त्र का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीण जनों का शासन से कितना अधिक प्रत्यक्ष और सजीव सम्पर्क स्थापित हो जाता है? दूसरे शब्दों में, ग्रामीण भारत के लिए पंचायती राज ही एकमात्र उपयुक्त योजना है। पंचायतें ही हमारे राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं। दिल्ली की संसद में कितने ही बड़े आदमी बैठें, लेकिन असल में 'पंचायतें' ही भारत की चाल बनाएंगी।

4.3.2 उदेश्यः–

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के भारतीय ढ़ाँचे को समझना तथा यह विश्लेषित करना की आजादी के बाद उसमें कितनी सफलता भारत को मिली।
2. भारत के सन्दर्भ में पंचायती राज के इतिहास विकास की प्रक्रिया को समझना।
3. बलवन्त राय मेहता तथा अशोक मेहता माडल को पंचायती राज के सन्दर्भ में जाँचना।
4. भारत में पंचायती राज की उपलब्धियों व समस्याओं को जाँचना।
5. नगरिकों की शिकायतों के निवारण के सन्दर्भ में भारत में पंचायती राज की सफलताओं का आकलन करना।

4.3.3 पंचायती राज व्यवस्था और विकास :–

भारत में पंचायती राज की भूमिका

(Role of Panchayati Raj in India)

भारत में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में आपसी झगड़ों का फैसला पंचायतें ही करती थी। परन्तु अंग्रेजी राज के जमाने में पंचायतें धीरे–धीरे समाप्त हो गयी और सब काम प्रान्तीय सरकारें करने लगी। स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद राज्यों की सरकारों ने पंचायतों की स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रो० रजनी कोठारी के अनुसार, "राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य था पंचायती राज की स्थापना। इसमें भारतीय राज व्यवस्था की विकेन्द्रीकरण हो रहा है और देश में एक–सी स्थानीय संस्था के निर्माण से उसकी एकता भी बढ़ रही है।" इसकी शुरूआत का श्रेय श्री जवाहर लाल नेहरू को है। पं० नेहरू का कहना था कि "गांवों के लोगों को अधिकार सौंपना चाहिए। उनको काम करने दो चाहे वे दो हजार गलतियां करें। इससे घबराने की जरूरत नहीं। पंचायतों को अधिकार दो।

नेहरू को लोकतान्त्रिक तरीकों में अटूट विश्वास था। सन् 1952 में उन्हीं की पहल सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इसमें काफी संख्या में सरकारी कर्मचारी रखे गए और लम्बे–लम्बे दावे किए गए। यह समझा गया कि इस कार्यक्रम में जनता की ओर से सक्रिय रूचि से भाग लिया जाएगा। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का आरम्भ इसलिए किया गया था ताकि आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक पुनरूद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देशों की ग्रामीण जनता में सक्रिय रूचि पैदा की जा सके। परन्तु सामाप्रदायिक विकास के इस सरकार द्वारा प्रेरित एवं प्रायोजित कार्यक्रम ने ग्रामीण जनता को नियोजन की परिधि में लाकर खड़ा कर दिया, परन्तु ग्रामीण स्तर पर योजना के क्रियान्वयन में उसे 'इच्छुक पक्ष' नहीं बनाया जा सका। यह कार्यक्रम सरकारी तन्त्र और ग्रामीण जनता के बीच की दूरी कम करने के मुख्य उद्देश्य में विफल रहा। इस विफलता का मुख्य कारण यह था कि इसे सरकारी महकमे की तरह चलाया गया और गांवों के विकास की बजाए सामुदायिक विकास की सरकारी मशीनरी के विस्तार पर ही ज्यादा जोर दिया गया। सरकारी मशीनरी के द्वारा गांवों के लोगों की मनोवृत्ति को बदलने की आशा की गयी; परिणाम यह हुआ कि गांवों के उत्पादन के लिए खुद प्रयत्न करने के बजाए ग्रामीण जनता सरकार का मुंह ताकने लगी। एक अमेरिकी लेखक **रेनहाई बेंडिक्स** लिखते हैं, "सामुदायिक विकास की सबसे बड़ी कमजोरी उसका सरकारी स्वरूप और नेताओं की लफ्फाजी थी। एक तरफ इस कार्यक्रम के सूत्रधार जनता से आगे आने की आशा करते थे, दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही नतीजा निकल सकता है। कार्यक्रम जनता को चलाना था, लेकिन वे बनाए ऊपर से जाते थे।"

इन बुराइयों को दूर करने का उपाय यह था कि वास्तविक सत्ता सम्पन्न लोकतान्त्रिय स्थानीय संस्थाओं को शुरू करके स्थानीय राजनीति के विष को काबू में किया जाए। बहुत–से लोगों का विचार था कि पंचायत राज इसका इलाज हो सकता है जो इसके साथ ही प्रशासकीय तनाव को भी समाप्त कर देगा। पंचायत राज की बुराइयों के लिए रामबाण जैसे गुणों से सम्पन्न साधन मानने का कुछ सम्बन्ध गांधीजी की यादों और जयप्रकाश नारायण द्वारा उन्हें पुनर्जीवित करने से है। जयप्रकाश नारायण ने पंचायती राज को देशी और प्राचीन 'सामुदायिक लोकतन्त्र' के समान बताया और साथ ही इसे पश्चिम के 'जनता का हाथ बटाने का अवसर देने वाले लोकतन्त्र' (Participating Democracy) से भी अधिक आधुनिक कहा।

वस्तुतः ग्रामीण विकास की अनिवार्य आवश्यकताओं ने ही वर्तमान रूप में पंचायती राज संस्थाओं की सृष्टि की थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के समय ऐसा अनुभव किया गया कि लोगों की सहभागिता के बिना ग्रामीण समुदाय का पुनर्निर्माण सम्भव नहीं है और वह सहभागिता केवल पंचायती राज संस्थाओं के ही माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

बलवन्तराय मेहता समिति प्रतिवेदन

(Balwantrai Mehta Committee Report)

सामुदायिक विकास कार्यक्रम पर काफी खर्च हो चुकने और इसकी सफलता के लम्बे–चौड़े दावों के बाद इसकी जांच के लिए एक अध्ययन दल 1957 में नियुक्त किया गया। इस अध्ययन दल के अध्यक्ष श्री बलवन्तराय मेहता थे। अध्ययन दल को सौंपे गए कार्यों में, एक कार्य जिसका कि दल को अध्ययन करना था, यह था कि 'कार्य सम्पादन में अधिक तीव्रता लाने के उद्देश्य के कार्यक्रम का संगठनात्मक ढांचा तथा कार्य करने के तरीके कहां तक उपयुक्त थे।' इस दल ने सरकार को बताया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की बुनियादी त्रुटि यह है कि जनता का इसमें सहयोग नहीं मिला। अध्ययन दल ने सुझाव दिया कि एक कार्यक्रम को, जिसका कि लोगों के दिन–प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्ध है, केवल उन लोगों के द्वारा ही कार्यान्वित किया जा सकता है। इस अध्ययन दल की रिपोर्ट में यह कहा गया कि जब तक स्थानीय नेताओं को जिम्मेदारी और अधिकार नहीं सौंपे जाते संविधान के निदेशक सिद्धान्तों का राजनीतिक और विकास सम्बन्धी लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। 'मेहता अध्ययन दल' ने 1957 के अन्त में अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त शुरूआत की जानी चाहिए। इस अध्ययन दल ने इसे 'लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण' का नाम दिया।

इस प्रकार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और विकास कार्यक्रमों में जनता का सहयोग लेने के ध्येय से पंचायती राज की शुरूआत की गयी। इसके स्वरूप में विभिन्न राज्यों में कुछ अन्तर है, मगर कतिपय विशेषताएं एक–सी हैं। एक तो पंचायती राज की तीन सीढ़ियां थीं–ग्राम स्तर पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद्। अर्थात् गांव से लेकर जिला स्तर तक स्थानीय सरकार में त्रि–स्तरीय संरचना लागू की जानी चाहिए तथा इन तीनों स्तरों में परस्पर सहयोगी सम्बन्ध पाए जाने चाहिए। दूसरा, पंचायती राज प्रणाली में स्थानीय लोगों को काम करने की आजादी थी और देख–रेख ऊपर से होती थी। अर्थात् इस स्तरों/संगठनों को सही मायने में सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए। तीसरा, सामुदायिक कार्यक्रम की भांति यह शासकीय ढांचे का अंग नहीं था। पंचायती राज की संस्थाएं निर्वाचित होती थी और इसके कर्मचारी निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के अधीन काम करते थे। चतुर्थ, साधन जुटाने और जनसहयोग संगठित करने का भी इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार था। पंचम, सभी विकास सम्बन्धी कार्यक्रम व योजना का क्रियान्वयन इन स्तरों/संगठनों के द्वारा किया जाना चाहिए। षष्ट, इन स्तरों/संगठनों द्वारा अपने दायित्वों के निर्वाह हेतु उचित वित्तीय साधन सुलभ होने चाहिए। सप्तम, इस व्यवस्था को इस रूप में लागू किया जाना चाहिए कि भविष्य में उत्तरदायित्वों व सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जा सके।

पंचायती राज के पीछे जो विचारधारा निहित थी, वह यह है कि गांवों के लोग अपने शासन का उत्तरदायित्व स्वयं संभालें। यही एक महान आदर्श है जिसे प्राप्त किया जाना था। यह आवश्यक है कि गांवों में रहने वाले लोग कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, सिंचाई, पशुपालन, आदि से सम्बन्धित विकास क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लें। ग्रामीण लोग न केवल कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में ही भाग लें, अपितु उन्हें यह अधिकार भी होना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं और अनिवार्यताओं के विषय में स्वयं ही निर्णय की शक्ति भी प्रदान करें। लोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से स्थानीय नीतियों का निर्धारण करें और जनता की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए उनके अनुसार ही अपने कार्यक्रमों को लागू करें। इस प्रकार, देश की जड़ों तक लोकतन्त्र को प्रवेश कराया गया। इसके अन्तर्गत जनता के नीचे स्तर पर स्थित लोग भी देश के प्रशासन से सम्बद्ध हो जाते। पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोग न केवल नीति का ही निर्धारण करते, अपितु उसके क्रियान्वयन तथा प्रशासन का नियन्त्रण एवं मार्गदर्शन भी करते।

पंचायती राजः उतार–चढ़ाव

(Panchayati Raj: Ups and Down)

भारतीय संघ के अधिकांश राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं के गठन के लिए अधिनियम पारित किए। राजस्थान सबसे पहला राज्य था जिसने अपने यहां पंचायती राज की स्थापना की। इस

योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1959 को प्रधानमन्त्री नेहरू द्वारा नागौर में किया गया। 1959 में ही आन्ध्र प्रदेश भी पंचायती राज व्यवस्था को अपने प्रान्त में लागू कर राजस्थान के साथ पहले नम्बर पर आ गया। पंचायती राज संस्थाओं की संरचना विभिन्न राज्यों में अलग–अलग रही। देश के 14 राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में त्रिस्तरीय प्रणाली थी जबकि 4 राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में द्विस्तरीय प्रणाली और 9 राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में एक स्तरीय प्रणाली थी।

प्रारम्भ से ही यह माना गया कि पंचायती राज संस्थाएं ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रही हैं। भले ही 1959 से 1964 तक के इनके कार्यकाल को उत्थान काल (Phase of Ascendency) कहा जाए। तथापि 1965 से 1969 की कार्यावधि को ठहराव काल (Phase of Stagnation) एवं 1969 से 1983 की कार्यावधि को ह्रास काल (Phase of Decline) कहा जाता है। लम्बे समय तक विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव तक नहीं करवाए गए और ये संस्थाएं निष्क्रिय हो गयी। वैसे 1977 में अशोक मेहता समिति रिपोर्ट में इन संस्थाओं को नया रूप देने हेतु सिफारिश की गई किन्तु उन्हें क्रियान्वित नहीं किया जा सका। वस्तुतः 1983 के बाद पंचायती राज संस्थाओं के जीवनकाल में पुनरोदय (Phase of Revival) प्रारम्भ होता है। इस दिशा में 1985 के कर्नाटक जिला परिषद्, तालुका पंचायत समिति, मण्डल पंचायत एवं न्याय पंचायत अधिनियम की महती भूमिका रही है। 1985 में डॉ० जी. वी. के. राव की अध्यक्षता में नियुक्त समिति ने नीति नियोजन और कार्यक्रम क्रियान्वयन के लिए जिले को आधार बनाने और पंचायती राज संस्थाओं में नियमित चुनाव करवाने की सिफारिश की। 1987 में पंचायती राज संस्थाओं की समीक्षा और उनमें सुधार के उपायों हेतु सुझाव देने के लिए डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में नियुक्त समिति ने ग्राम पंचायतों का आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्हें अधिक आर्थिक संसाधन प्रदान करने की सिफारिश की थी। मई 1989 में राजीव गांधी सरकार द्वारा वर्तमान पंचायती राज प्रणाली की अपर्याप्तताओं को दूर करने के लिए 64वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में विचारार्थ प्रस्तुत किया गया, जो पारित नहीं हो सका।

पंचायती राज का अशोक मेहता मॉडल

(Ashok Mehta Modal of Panchayati Raj)

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद 12 दिसम्बर, 1977 को मन्त्रिमण्डल सचिवालय ने पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने एवं प्रचलित ढांचे में आवश्यक परिवर्तन सुझाने हेतु एक उच्चस्तरीय समिति नियुक्त की। श्री अशोक मेहता इस समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में पंचायती राज संस्थाओं का एक नया प्रतिमान (मॉडल) सुझाया है। समिति की सिफारिशों के पीछे मूल भावना यह है कि सत्ता का

विकेन्द्रीकरण कर उसे संस्थागत रूप प्रदान किया जाए। समिति द्वारा सुझाए गए पंचायती राज प्रतिमान (मॉडल) की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं: **प्रथम,** जिला परिषद् को मजबूत बनाया जाए तथा ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की स्थापना की जाए। अर्थात् पंचायती राज संस्थाओं के संगठन के दो स्तर (Two Tier)–जिला परिषद् तथा मण्डल पंचायत हो। **द्वितीय,** जिले के विकेन्द्रीकरण की धुरी माना जाए तथा जिला परिषद् को समस्त विकास कार्यों का केन्द्रबिन्दु बनाया जाए। जिला परिषद् ही जिले का आर्थिक नियोजन कार्य करेंगी, समस्त विकास कार्यों में सामंजस्य स्थापित करेंगी और नीचे के स्तर का मार्ग निदेशन करेंगी। **तृतीय,** जिला परिषद् के बाद मण्डल पंचायतों को विकास कार्यक्रमों का आधारभूत संगठन बनाया जाना चाहिए। मण्डल पंचायतों का गठन कई गांवों से मिलकर होगा। ये मण्डल पंचायतें 15,000 से 20,000 की जनसंख्या पर गठित की जाएंगी। मण्डल पंचायतों को कार्यक्रम क्रियान्वयन की दृष्टि से धरातलीय संगठन (Base-Level Organization) के रूप में विकसित किया जाए। 'धीरे–धीरे' पंचायत समितियां समाप्त हो जाएंगी और उनका स्थान मण्डल पंचायतें ले लेंगी। **चतुर्थ,** पंचायती राज संस्थाएं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें। **पंचम,** जिलाधीश सहित जिला स्तर के सभी अधिकारी अन्ततः जिला परिषद् के मातहत रखे जाएं। **षष्ठ,** इन संस्थाओं के निर्वाचनों में राजनीतिक दलों को खुले तौर से अपने चुनाव चिन्हों के आधार पर भाग लेने की स्वीकृति दी जाए। **सप्तम,** न्याय पंचायतों को विकास पंचायतों के साथ नहीं मिलाया जाना चाहिए। यदि न्याय पंचायत की अध्यक्षता योग्य न्यायाधीश करें और निर्वाचित न्याय पंचायत को उनके साथ सम्बद्ध कर दिया जाए तो अधिक अच्छा होगा।

पंचायती राज का नया प्रतिमानः 73वां संविधान संशोधन

(New Model of Panchayati Raj: 73rd Constitutional Amendment)

संविधान के 73वें संविधान द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को सवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। संविधान में नया अध्याय 9 जोड़ा गया है। अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और एक अनुसूची–ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गयी है। 24 अप्रैल, 1993 से 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1993 लागू किया गया है। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **ग्रामसभाः** ग्रामसभा गांव के स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्यों को करेगी जो राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर उपलब्ध करें।
2. **पंचायतों का गठनः** अनुच्छेद 243 ख त्रिस्तरीय पंचायती राज का प्रावधान करता है। प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर और जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया जाएगा। किन्तु उस राज्य में जिसकी जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं है वहां मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं होगा।

3. **पंचायतों की संरचनाः** राज्य विधानमण्डलों को विधि द्वारा पंचायतों की संरचना के लिए उपबन्ध करने की शक्ति प्रदान की गई है। परन्तु किसी भी स्तर पर पंचायत के प्रादेशिक क्षेत्र की जंनसंख्या और ऐसी पंचायत में निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त राज्य में यथासम्भव एक ही होगा।

पंचायतों के सभी स्थान पंचायत राज्य क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों से भरे जाएंगे। इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक पंचायत क्षेत्र को ऐसी रीति से निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या और उसको आबंटित स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त पंचायत क्षेत्र में यथासाध्य एक ही हो।

किन्तु राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर ऐसी रीति से और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुएः

i. ग्राम स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों में या जिस राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतें नहीं हैं, जिला स्तर पर पंचायतों में,
ii. मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का जिला स्तर पर पंचायतों में,
iii. लोकसभा के या विधानसभा के ऐसे सदस्यों जो ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका ग्राम स्तर पर कोई पंचायत क्षेत्र पूर्णतः या भागतः समाविष्ट है, ऐसी पंचायत में,
iv. राज्यसभा और राज्य विधान परिषद् के सदस्यों को जिनका नाम मध्य स्तर या जिला स्तर के पंचायत क्षेत्र में मतदाता के रूप में दर्ज है, जिला स्तर पंचायतों में प्रतिनिधित्व के लिए उपबन्ध कर सकता है।

ग्राम स्तर पर पंचायत का अध्यक्ष ऐसी रीति से चुना जाएगा जो राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा विहित करे। मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन उसके सदस्यों द्वारा अपने में से किया जाएगा।

पंचायतों में आरक्षणः प्रत्येक पंचायत में क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। ऐसे स्थानों को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम (Rotation) से आबंटित किया जाएगा। आरक्षित स्थानों में से 1/3 स्थान अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गए स्थानों की कुल संख्या के 1/3 स्थान (जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या सम्मिलित है) महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे और चक्रानुक्रम से पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को आबंटित किए जाएंगे।

4. **पंचायतों का कार्यकालः** पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष होगा। किसी पंचायत के गठन के लिए निर्वाचन 5 वर्ष की अवधि के पूर्व और विघटन की तिथि से 6 माह की अवधि के अवसान से पूर्व कर लिया जाएगा।
5. **वित आयोगः** राज्य का राज्यपाल 73वें संशोधन के प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक 5 वर्ष के अवसान पर पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करेगा। वित्त आयोग निम्नलिखित विषय में राज्यपाल को अपनी सिफारिश करेगाः
   i. ऐसे करों, शुल्कों, पथ करों और फीसों को दर्शाना जो पंचायतों को प्रदान की जा सके;
   ii. राज्य की संचित में से पंचायतों के लिए सहायता अनुदान;
   iii. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए उपाय बताना।
6. **पंचायतों के निर्वाचनः** पंचायतों के निर्वाचन कराने के लिए राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है। राज्य निर्वाचन आयुक्त को केवल उसी रीति और उसी आधार पर उसके पद से हटाया जा सकता है जैसे कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को। पंचायतों के लिए निर्वाचन नामावली तैयार करने का और पंचायतों के सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियन्त्रण निर्वाचन आयोग में निहित होगा।
7. **पंचायतों के कार्यः** 11वीं अनुसूची में 29 विषय हैं जिन पर पंचायतें विधि बनाकर उन कार्यों को कर सकेगी। ये हैं–
   i. कृषि जिसके अन्तर्गत कृषि विस्तार भी है।
   ii. भूमि विकास, भूमि सुधार कार्यान्वयन, चकबन्दी और भूमि संरक्षण।
   iii. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध और जल आच्छादन विकास।
   iv. पशु पालन, दुग्ध उद्योग और मुर्गी पालन।
   v. मत्स्य उद्योग।
   vi. सामाजिक वनोद्योग और फार्म वनोद्योग।
   vii. लघु उत्पादन।
   viii. लघु उद्योग, जिसके अन्तर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी है।
   ix. खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग।
   x. ग्रामीण आवास।
   xi. पेय जल।
   xii. ईंधन और चारा।
   xiii. सड़कें, पुलियां, पुल, नौघाट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन।

xiv. ग्रामीण विद्युतीकरण जिसके अन्तर्गत विद्युत् का वितरण भी है।

xv. गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत।

xvi. गरीबी उपशमन कार्यक्रम।

xvii. शिक्षा, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं।

xviii. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।

xix. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।

xx. पुस्तकालय।

xxi. सांस्कृतिक क्रियाकलाप।

xxii. बाजार और मेले।

xxiii. स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिसके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं।

xxiv. परिवार कल्याण।

xxv. स्त्री और बाल विकास।

xxvi. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से अविकसित व्यक्तियों का कल्याण भी है।

xxvii. जनता के कमजोर वर्गों का और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।

xxviii. लोक वितरण प्रणाली।

xxix. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

मूल्यांकनः पंचायती राज संस्थाओं के अब भारतीय संविधान का हिस्सा बन जाने से अब कोई भी पंचायतों को दिए गए अधिकारों, दायित्वों और वित्तीय साधनों को उनसे छीन नहीं सकेगा। 73वां संविधान संशोधन न केवल पंचायती राज संस्थाओं में संरचनात्मक एकरूपता लाने का प्रयास है बल्कि यह सुनिश्चित करता है कि इन संस्थानों में समाज के कमजोर वर्गों की हिस्सेदारी रहे। इसमें प्रत्येक पंचायत में पंचायत क्षेत्र में कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति/जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में अनिवार्य आरक्षण की भी व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित की गई इन सीटों में से एक–तिहाई सीटें इन जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। राज्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे कुल सीटों की एक–तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने की व्यवस्था करें। इसमें एक ऐसा भी प्रावधान रखा गया है जिसके अन्तर्गत राज्य विधानमण्डल, यदि उचित समझे ंतो पिछड़ी जातियों के नागरिकों के लिए आरक्षण का प्रावधान रख सकते हैं।

अब तक पंचायती राज संस्थानों की विफलता का कारण उनके चुनाव समय पर न कराना और उन्हें बार–बार भंग या स्थगित किया जाना रहा है। वर्तमान अधिनियम में इस समस्या पर समुचित ध्यान दिया गया है और उम्मीद है कि पंचायती राज संस्थान निचले स्तर पर लोकतन्त्र के कारगर उपकरण साबित होंगे क्योंकि उनके निर्वाचनों की निश्चित अवधि पर समयबद्ध व्यवस्था की गई है। इन संस्थाओं को अब 6 महीने से अधिक समय के लिए भंग या स्थगित नहीं किया जा सकता।

73वें संशोधन अधिनियम का नकारात्मक बिन्दु यह है कि इसमें राजनीतिक दलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं और स्थानीय नौकरशाही के बीच सम्बन्धसूत्रता के बारे में भी अधिनियम चुप्पी साधे हुए है। लेखक की मान्यता है कि 73वां संविधान संशोधन अधिनियम बन जाने के बावजूद पंचायती राज संस्थाओं की सफलता राज्य सरकारों की इच्छा पर निर्भर करती है।

पंचायती राज की उपलब्धियां एवं समस्याएं

(Achievements and Problems)

हमारे देश में पंचायती राज की शुरूआत को एक ऐतिहासिक घटना कहा गया। पंचायती राज संस्थाओं से अधिक प्रशंसा बहुत ही कम संस्थाओं को प्राप्त हुई है। **पं० नेहरू** ने स्वयं कहा था कि "मैं पंचायती राज के प्रति पूर्णतः आशान्वित हुँ। मैं महसूस करता हूं कि भारत के सन्दर्भ में यह बहुत–कुछ मौलिक एवं क्रान्तिकारी है।" **प्रो० रजनी कोठारी** के अनुसार, "इन संस्थाओं ने नए स्थानीय नेताओं को जन्म दिया है जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। कांग्रेस और दलों के राजनीतिज्ञ इन संस्थाओं को समझने लगे हैं। अब वे राज्य विधानमण्डल के बजाए पंचायत समिति और जिला परिषदों को तरजीह देने लगे हैं।" वस्तुतः इन संस्थाओं ने देश के राजनीतिकरण, आधुनिकीकरण और समाजीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था में जन–सहभागिता में वृद्धि करके गांवों में जागरूकता उत्पन्न कर दी है।

हाल ही में राजस्थान में पंचायती राज के 27 वर्षों की उपलब्धियों का एक सर्वेक्षण के माध्यम से अध्ययन प्रतिवेदन पकाशित हुआ है जिसमें कहा गया है कि:

1. पंचायती राज व्यवस्था से गांवों में राजनीतिक संस्थाओं के बारे में समझ का विकास हुआ है जिसके कारण ग्रामवासी इन संस्थाओं में सक्रिय सहभागिता के लिए आकर्षित हुए हैं।

2. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में समाजीकरण के दौर से गुजरते व्यक्तियों के बीच जनतान्त्रिक मूल्यों के विकास से अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी है। मताधिकार चेतना इसी सामान्य चेतना स्तर का विशिष्ट स्वरूप है।
3. पंचायती राज व्यवस्था ने 27 वर्ष के कार्यकाल में न केवल ग्रामवासियों के मानसिक विकास में योगदान दिया है बल्कि गांवों के भौतिक विकास में भी कारगर भूमिका निभायी है जिससे गांवों में यातायात, सिंचाई, पेयजल सुविधाओं का विस्तार हुआ है और सामान्य ग्रामवासी के जीवन–स्तर में आंशिक सुधार भी आया है।
4. शिक्षण संस्थाओं की शुरूआत ने साक्षरता का प्रतिशत ही नहीं बढ़ाया है बल्कि गांव के व्यक्तियों के विचारों व मूल्यों में परिवर्तन के लिए भी कार्य किया है।
5. पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने के बाद गांव में सामाजिक बुराइयों के समापन के लिए भी एक वातावरण तैयार हुआ है जिसके अन्तर्गत मृत्यु–भोज, दहेज–प्रथा, छुआछूत, बाल–विवाह तथा महिला अत्याचार जैसी सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में कार्य किया है।

राजनैतिक भूमिका

(Political Role)

भारत में पंचायती राज संस्थाओं का राजनीतिक दृष्टि से महत्त्व बढ़ता जा रहा है। राजनीतिक दल पंचायतों के चुनावों में सक्रिय भूमिका अदा करने लगे हैं। पंचायतों को राष्ट्रीय और राज्य स्तर की राजनीति का आधार माना जाने लगा है। राजनीतिक दल और उनके नेता यह महसूस करने लगे हैं कि लोकसभा और विधानसभा निर्वाचनों में सफलता प्राप्त करने के लिए पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला परिषदों पर कब्जा किया जाना अपरिहार्य है। सरपंचों, प्रधानों और जिला प्रमुखों के रूप में ग्रामीण नेतृत्व विकसित हो रहा है। आने वाले वर्षों में भारतीय राजनीति की कुंजी उसी दल के हाथों में होगी जिसे ग्रामीण नेतृत्व विकसित करने में सफलता मिलेगी। केरल और पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल ने पंचायती संस्थाओं पर कब्जा करके राज्य राजनीति में अपनी गहरी जड़ें जमा ली हैं। आज वस्तुतः विधायक और संसद सदस्यों की अपेक्षा नीचे के स्तर पर 'सरपंच', 'प्रधान' और 'जिला प्रमुख' अधिक प्रभावक भूमिका अदा कर रहे हैं।

राजीव गांधी ने पंचायती राज के महत्त्व को समझा था और इसलिए 'जनता की शक्ति' (Power of the People) का नारा देते हुए 64वां संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। बाद में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने और नरसिंह राव सरकार ने भी पंचायती राज के पुनर्गठन की योजना प्रस्तुत की।

पंचायती राज के माध्यम से भारत में स्थानीय शासन की एक नयी और सजीव प्रणाली की नींव पड़ चुकी है। इसके रोचक राजनीतिक परिणामों पर आगे विचार किया जाएगाः

प्रथम, जिला प्रशासन और सामुदायिक विकास दोनों विभागों के कर्मचारियों को पहली बार पर्याप्त शक्तिसम्पन्न और राजनीतिक समर्थन द्वारा प्रतिरक्षित जनप्रिय संस्थाओं के एक सुसंगठित जाल (Network) का सामना करना पड़ रहा है।

द्वितीय, पंचायती राज प्रणाली का तत्कालिक प्रभाव यह था कि ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य पार्टियों की तुलना में कांग्रेस की ताकत पहले से भी ज्यादा हो गयी। कांग्रेस का संगठन अन्य पार्टियों के संगठनों से बड़ा था और इन विभिन्न नयी संस्थाओं के साथ तालमेल बैठाने में सक्षम था। ग्रामीण समाज के प्रभावशाली वर्गों का इसे पहले से ही समर्थन मिल रहा था और सबसे बड़ी बात यह थी कि सत्तारूढ़ पार्टी के रूप में यह (कांग्रेस) लोगों को बहुत कुछ दे सकती थी। कांग्रेस सरकार का स्थानीय संस्थाओं के बीच अधिकाधिक तादात्म्य का अर्थ अनिवार्यतः यह नहीं था कि 'कांग्रेस के उम्मीदवार' चुनाव में विजयी होंगे, बल्कि चुनाव यह था कि चुनावों में विजयी होने उम्मीदवार–यदि वे पहले से ही कांग्रेसी उम्मीदवार नहीं थे–तो कांग्रेस में शामिल हो जाएंगे। कांग्रेस के प्रभाव से अब यह रास्ता विरोधी पार्टियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक कारगर तरीके से खुल गया। राजनीतिक अस्थिरता वाले राज्यों में इसका यह भी प्रभाव पड़ा कि गांवों के नेताओं के साथ जोड़–तोड़ बैठानें का काम पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हो गया।

तृतीय, कांग्रेस के आन्तरिक जीवन पर भी पंचायती राज का असर पड़ा। एक ओर इन नई संस्थाओं ने पार्टी के उत्साही कार्यकर्त्ताओं के लिए सरकारी सत्ता का रास्ता खोल दिया। यदि उन्हें समाज कल्याण कार्यकर्त्ता बने रहकर ही सन्तोष न हो, तो वे दल संगठन में खासतौर से मिला कांग्रेस कमेटी के स्तर पर सत्ता संघर्ष की होड़ में शामिल हो सकते थे। इन नई संस्थाओं के खुल जाने से पार्टी के कुछ असन्तुष्ट कार्यकर्त्ताओं की जगहें मिल गयी और उनके लिए पार्टी के ऊपर जाने के लिए ट्रेनिंग तथा प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध हो गयी। सबसे बड़ी बात शायद थी कि कांग्रेस संगठन में नवयुवकों को आकृष्ट करने की समस्या को हल करने में इनसे थोड़ी मदद मिली। सरकार इन नई स्तरों की संस्थाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक प्रतिभा और आकांक्षाओं वाले नए लोगों को ढूंढ़ निकाला। दूसरी ओर, निचले स्तर से कांग्रेस की घुसपैठ से नयी समस्याएं आई और नए किस्म के दबाव पैदा हुए। गांव व ब्लाक स्तर पर जो गुटबन्दी थी, वह पार्टी के ऊपर के स्तरों तक पहुंचने लगी।

चतुर्थ, पंचायती राज का दीर्घकालीन प्रभाव यह हुआ कि ग्रामीण राजनीति में गतिशीलता और होड़ बढ़ गयी। हालांकि आरम्भ में कांग्रेस को इसका लाभ मिला, किन्तु फिर भी कांग्रेस गांव की सत्ता के उस ढांचे को निर्बल बनने तथा टूटने से रोक नहीं पायी, जो अभी तक पूरी तरह से गठा हुआ था। यह आशा करना बहुत बड़ी बात थी कि गांवों के सभी सरपंच जिनमें बहुत–से पहली बार कांग्रेस की ओर से चुने गए थे, जिन पदों पर चुने गए थे उनके प्रचुर अधिकारों का आचारशील ढंग से न्यायोचित और समुचित दूरदर्शिता के साथ इस्तेमाल करेंगे। दूसरी ओर, राजस्तरीय कांग्रेस के लिए ऐसे लोगों को अनुशासन के अंकुश में रख पाना कोई आसान काम नहीं था, जिनकी पार्टी को ज्यादा जरूरत थी और जिनके लिए पार्टी को जरूरत अपेक्षाकृत कम थी। इस तरह से जितने लोग कांग्रेस के मित्र बने, उतने ही कांग्रेस के दुश्मन भी बन गए और इस प्रक्रिया का 1967 में पार्टी में होने वाली गड़बड़ी में काफी हाथ था।

पंचम, पंचायती संस्थाओं के माध्यम से सम्पर्क सूत्र की राजनीति (Linkage Politics) का विकास हुआ। गांव, जिलों व राज्यों के मुख्यालयों से जुड़ने लगे। गांवों की राजनीति पर जिले व राज्य स्तर की राजनीति का प्रभाव पड़ने लगा राज्यस्तरीय नेता ऐसी जोड़–जोड़ करने लगे कि उनके गुट एवं पार्टी के व्यक्ति पंचायतों में आएं ताकि उनका समर्थन आधार मजबूत हो सके। पंचायती संस्थाएं एवं नेतृत्व गांवों को राजनीति से जोड़ने की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

षष्ठ, पंचायती राज संस्थाओं से पिछड़ी हुई जातियों में नई चेतना का विकास हुआ है और पारम्परिक उच्च जातियों की स्थिति में ह्रास हुआ है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों/जनजातियों तथा अन्य पिछड़ें वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में पंचायती राज संस्थाओं में सीटों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसी प्रकार एक–तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गई हैं। इसी अनुपात में सरपंच, प्रधान और जिला प्रमुख के पद भी आरक्षित कर दिए गए हैं। इन उपबन्धों से समाज के दुर्बल वर्गों की महत्त्वाकांक्षाओं में अपार वृद्धि हुई है।

सप्तम, पंचायतों के चुनाव उसी प्रकार लड़े जाते हैं जिस प्रकार लोकसभा और विधानसभा के चुनाव लड़े जाते हैं। इससे ग्रामीण जीवन में गुटबन्दी की भावनाएं विकसित हुई और गांव राजनीति के अखड़े बनते जा रहे हैं।

डॉ० पी० सी० माथुर ने अपने एक विद्वत्तापूर्ण शोध लेख में राजस्थान में पंचायती राज की राजनीति के परिणामों को इस प्रकार बताया है–

1. परम्परावादी पंचायतों का अवसान हुआ है (Eclipse of Traditional Panchayats);

2. ग्रामीण गुटों का राजनीतिकरण हुआ है (Politicization of Village Factionalism);
3. राज्य और जिला स्तरीय राजनीतिक शक्तियों एवं राजनीतिज्ञों की ग्रामीण अंचलों में घुसपैठ हुई है (Percolation of State and District Force and Actors);
4. नव–परम्परावादी झुकावों और समीकरणों का अभ्युदय हुआ है (Emergence of Neotraditional Political Motivations and Calculations);
5. प्रभावक जातियों का प्रभाव बढ़ा है (Increase in the Political Weightage or Numerically Dominant Castes);
6. ग्रामीण नेतृत्व एवं जिला व राज्यस्तरीय राजनीतिक नेतृत्व में मताचरण सम्बन्धी लिंक स्थापित हुआ है (Establishment of Vote-Nexus between local level political leadership and political leaders at the state and district level);
7. राज्य एवं जिलास्तरीय राजनीति का ग्रामीणीकरण हुआ है (Ruralization of political leaders in state and district politics);
8. राज्य एवं जिलास्तरीय राजनीतिज्ञों को सन्तुलित करने के लिए स्थानीय राजनीतिज्ञों का अभ्युदय (Emergence of local counter weights to district and state level political bosses);
9. स्थानीय एवं ग्रामीण समाजों में भौतिकवादी झुकावों का अभ्युदय (Emergence of material benefits orientation at local levels of Indian Society)।

पंचायती राज की समस्याएं

(Problems of Panchayati Raj)

फिर भी यह तो कहना भी पड़ेगा कि पिछले 38 वर्षों का अनुभव विशेष उत्साहवर्द्धक नहीं रहा। ये संस्थाएं ग्रामीण जनता में नई आशा और विश्वास पैदा करने में असफलता रही है। वस्तुतः जब तक ग्रामीणों में चेतना नहीं आती तब तक ये संस्थाएं सफल नहीं हो सकती। किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि पंचायती राज व्यवस्था असफल हो गई है। कुछ राज्यों में तथा कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में इन संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया है। यह कार्य मुख्यतः नागरिक सुविधावों के ही सम्बन्ध में हुआ है। पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष कुछ नई समस्याएं उत्पन्न हो गई है; कुछ पहले ही थी, जिनका निराकरण करना आवश्यक है, ये समस्याएं हैं:

1. **सत्ता के विकेन्द्रीकरण की समस्याः** लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की असफलता की पहली शर्त सत्ता का स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरण करना है। पंचायती राज संस्थाओं को स्वायत्त शासन की शक्तिशाली इकाइयां बनाना था। यह तभी सम्भव

है जब प्रेरणा नीचे के स्तरों से शुरू हो और उच्च स्तर केवल मार्ग निदेशन करे। राज्य सरकारें इन संस्थाओं को अपने आदेशों का पालन करने वाला एजेण्ट मात्र न समझें, इसके लिए नौकरशाही की मनोवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता है।

2. **अशिक्षा एवं निर्धनता की समस्याः** अशिक्षा और निर्धनता ग्रामीणों की विकट समस्या है। इसके कारण ग्रामीण नेतृत्व का विकास नहीं हो पा रहा है और अपने संकीर्ण दायरों से ऊपर नहीं उठ पाते हैं। किन्तु वर्तमान में शिक्षा की दिशा में शासन द्वारा किए गए कार्यों से हमारे उत्साह में वृद्धि हो रही है।
3. **दलगत राजनीतिः** पंचायती राज की सफलता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा दलगत राजनीति है। पंचायतें राजनीति का अखाड़ा बनती जा रही हैं। पंचायतों में छोटी–छोटी बातों को लेकर झगड़े हुआ करते हैं, दलबन्दी होती है और बहुत–सा समय लड़ने–झगड़ने में निककल जाता है। यदि हमारे राजनीतिक दल पंचायतों के चुनावों में हस्तक्षेप करना बन्द कर दे तो पंचायतों को गन्दी राजनीति के दलदल सं निकाला जा सकता है।
4. **धन की समस्याः** धन की समस्या पंचायती राज संस्थाओं के सामने शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतन्त्र आर्थिक स्त्रोत या तो दिए नहीं गए या फिर जो भी दिए गए वे अर्थशून्य हैं। परिणामतः शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ा है। अतः आय के पर्याप्त एवं स्वतन्त्र स्त्रोत पंचायती संस्थाओं को दिए जाने चाहिए ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके।

इनके अतिरिक्त और भी कई समस्याएं हैं, राजनीतिक जागरूकता की कमी, विकास–कार्यों की उपेक्षा, शासकीय अधिकारियों एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों में सहयोग का अभाव, आदि। इसके अतिरिक्त सभी राज्यों में राज्य के विधानमण्डल और संसद सदस्यों की पंचायती राज संस्थाओं से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। विधानमण्डल तथा संसद के सदस्यों की स्थिति इतनी उच्च होती है कि वे पंचायती राज संस्थाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते हैं और इस प्रकार अन्य सदस्यों के अभिक्रम को कुचल देते हैं तथा पंचायती राज संस्थाओं के कल्याणकारी विकास में बाधा डालते हैं। विधानमण्डल तथा संसद के सदस्यों के पास विधायी तथा राजनीतिक काम बहुत अधिक रहता है। इसलिए उनके पास इतना समय नहीं होता कि वे अपने विधायी कार्यों के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं की ओर पर्याप्त ध्यान दे सकें। अतः उच्चस्तरीय राजनीतिज्ञों का ग्रामीण स्थानीय शासन से सक्रिय रू‍प से सम्बन्ध होना पंचायती राज संस्थाओं के हित में नहीं है। इन सभी समस्याओं का परिणाम यह हुआ कि पंचायती राज अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका।

पंचायती राज की सफलता के लिए सुझाव

भारत के लिए गांव आर्थिक समृद्धि का प्रतीक है। देश तभी फलेगा–फूलेगा जब उसकी आत्मा के रूप में गांव की प्रगति हो। गांवों का सर्वांगीण विकास पंचायतों की सफलता के द्वारा ही सम्भव है। पंचायतों को सफलता के लिए निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं:

प्रथम, पंचायती राज संस्थाओं में व्याप्त गुटबन्दी को समाप्त करना होगा;

द्वितीय, पंचायतों के चुनाव में मतदान को अनिवार्य करना होगा और जो मतदाता चुनाव में भाग ले उस पर कुछ दण्ड लगाया जाए, जो पचास रूपये से अधिक न हो;

तृतीय, पंचायतों की वित्तीय हालत सुधारनी होगी;

चतुर्थ, अधिकारियों को पंचायतों के मित्र, दार्शनिक और पथ–प्रदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए।

पंचम, पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और अन्त में, पंचायतों पर विश्वास करना होगा, वे गलतियां करेंगी और हमारा दृष्टिकोण उनके प्रति उदार ही अपेक्षित है।

4.3.4 निष्कर्ष:–

पंचायती राज संस्थाओं के प्रति राज्य सरकारों तथा जिला अधिकारियों का उदासीन होना इनके लिए घातक सिद्ध होगा। राज्य सरकारों, उनके तकनीकी अभिकरणों तथा जिला अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं का मार्ग निदेशन करना तथा उन्हें प्रोत्साहित करना है। जिला अधिकारियों को इन विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्रीय संस्थाओं के मित्र, दार्शनिक तथा पथ–प्रदर्शक बनना है। उन्हें जनता को अधिकत्तम पहल करने का मौका देने वाले शिक्षकों का कार्य करना है। अधिकारीगण विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्र की गतिविधियों में सक्रिय हिस्सेदारों के रूप में सम्मुख आने चाहिए। इसके साथ ही उन्हें अहंकार व वर्ग उच्चता की खोखली धारणों को त्यागना होगा। नौकरशाही की पुरानी उच्चता वाली मनोवृत्ति से काम नहीं चलेगा। अगर 'खण्ड–विकास अधिकारी', 'बड़े साहब' वाला रूख अपनाने का प्रयास करेगा तो पंचायती राज आन्दोलन को भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

पंचायती राज के फलस्वरूप एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि ग्रामीणों के मस्तिष्क से अधिकारियों का भय जाता रहा है। अंग्रेजी शासन के युग में ग्रामीण जन नौकरशाही की शक्ति से आतंकित थे। अब ग्रामीण जन खण्ड विकास अधिकारी के पास जाकर विश्वास के साथ उससे अपनी समस्याओं पर बातचीत कर सकते हैं।

4.3.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. पंचायती राज
2. 73वां संविधान संशोधन
3. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण

4.3.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. पंचायती राज से क्या अभिप्राय है?
2. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ स्पष्ट करें?
3. बलवन्तराय मेहता रिपोर्ट की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में संविधान निर्माण के बाद लोकतान्त्रिक विकास के चरणों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
2. भारत में 73वां संविधान संशोधन किस सन्दर्भ में था तथा उसकी विशेषताओं की विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. भारत में पंचायती राज की क्या भूमिका है? विस्तृत नोट लिखिए।

सन्दर्भ सूची

1. वुडरो विल्सन, दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्टेसन, पोलिटिकल सांइस क्वार्टरली, नं० 2, जून, 1887
2. एल. डी. व्हाईट, इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1926
3. फ्रेंक जे. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1900
4. लूथर गुलिक एवं लैंडल उर्विक, पेपरस ऑन दी सांइस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. अवस्थी एवं महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1983
6. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2002
7. एच. ई. मेकर्डी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए बिबलियोग्राफिक गाइड टू दी लिटरेचर, डेक्कर, 1986
8. जी.ए. ग्रहाम, ट्रेण्ड इन टिचींग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 10, 1950
9. अच. जी. फ्रैडरिक्सन, दी डाइमेन्सन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, 1979

10. आर. सी. चॉदलर एण्ड जे. सी. पलानो, दी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डिक्सनरी, न्यूयार्क, 1982
11. राबर्ट गोलम्ब्यूहकी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डवलपिंग डिसिपलिन, न्यूयार्क, 1977
12. एस. आर. महेश्वरी, प्रशासनिक सिद्धान्त, मेकमिलन, 2003
13. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
14. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
15. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
16. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
17. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
18. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
19. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
20. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
21. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
22. डवाइट वाल्डो (सम्पादित) आइडियाज एण्ड इसूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1953
23. लक्ष्मीनारायण, पब्लिक इन्टरप्राईज मनेजमेंट एण्ड प्राइवेटाइजेशन, 2003
24. पॉल एपलबी, बिग डेमोक्रेसी, न्यूयार्क, 1945
25. जी. टल्लोक, दि पोलिटिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी, वाशिंगटन, पब्लिक अफेयर प्रैस, 1965
26. जे. हारबटमैस, दि स्ट्रकचरल ट्रांसफोरमेसन्स ऑफ दि पब्लिक सफियर, लन्दन, पोलिसी प्रैस, 1989
27. एन. जे. साथर, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन इन दि अमेरिका, न्यूयार्क सैन्टमारटिन्स, 1975
28. आर.एस. लोच, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन्ट पाल, मिनोसोटा, वैस्ट पब्लिसिं, 1978
29. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
30. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
31. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004

32. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
33. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
34. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

4.4

उदारीकरण का लोक प्रशासन पर प्रभाव

(Impact of Liberalization on Public Administration)

4.4.1 परिचयः–

वर्तमान अन्तराष्ट्रीय परिदर्श्य में उदारीकरण एक 18वी सदी में एडम स्मिथ के 'अहस्तक्षेप' के सिद्धान्त से समझी जासकती है। इसका अर्थ उदार नीतियों के रूप में विश्व समझता व जानता है। लोक प्रशासन के अन्तर्गत विकास कार्यों को गति देने के उदेश्य से सरकार या राजनीतिक व्यवस्था औद्योगिक, मौद्रिक व व्यापार संचालन की नीतियों को इसमें सरल बनाती है। इसमें विभिन्न नीतियों को लेकर लाइसेन्स नियत्रित को अधिकतम तथा प्रतिशुल्कों को कम करके प्रशासन में कार्य करने के लिए सुविधा प्रदान करती है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक व्यवस्था में नियमों में राहत देना चुंगी व्यवस्था को समाप्त करना, आयात–निर्यात के नियमों को सरल करना, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा देना, संयुक्त उद्योगों की ओर अग्रसर होना, नीजिकरण का प्रयास करना आदि को बढ़ावा दिया जाता है।

सामान्य रूप से 1980 से विश्व की प्रमुख मानी जाने वाली समाजवादी अर्थव्यवस्था के भ्रम टूटने और बाद में 1990 में भूतपूर्व सोवियत संघ के विखण्डन तथा वर्तमान में चीन के द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था के अपनाये जाने पर उदारीकरण को ज्यादा बल मिलता जा रहा है। भारत में 1985 में राजीव गांधी की उदार नीतियों तथा 1991 में पी.वी. नरसिंह राव के द्वारा भारतीय अर्थव्यस्था में उदारीकरण के अपनाने से नजर आती है जो आज तक चल रहा है। इसके परिणाम से वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था, निगमीकरण प्रतिस्पर्दात्मक तथा खुली अर्थव्यवस्था जैसी ढ़ाँचागत व प्रक्रियात्मक गतिविधियां बढ़ रही हैं। पूर्व सोवियत संघ के विधय (1990) के बाद फ्रैसिस फाकयामा ने संसार को बताया की एक विचारधारा शेष है और वह है जो 'प्रजातन्त्र+बाजार' अर्थव्यवस्था का मिश्रण हैं।

लोक प्रशासन में पहला प्रभाव तब नजर आता है जब सरकारी संस्थानों का नीजिकरण होता है तथा प्रशासन के मूलभूत सिद्धान्त पद्सोपान की महता उपयोगिता, पारदर्शिता, निगर्तता के आधार पर आँकने से नीजिकरण की पद व्यवस्था वर्तमान में नजर आती है या यों कहिए की नौकरशाही की व्यवस्था को अलग रूप में देखा जाने लगता है।

4.4.2 उदेश्यः–

1. लोक प्रशासन विषय पर उदारीकरण के प्रभावों का आंकलन करना।
2. नीजीकरण के कारण नौकरशाही के पद्सोपान में परिवर्तन का आँकलन करना।
3. अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से प्रशासन में आर्य बदलाव को जानना।
4. विकसित राष्ट्रों में उदारीकरण के कारण प्रशासन में आये बदलाव का आँकलन करना।
5. देशों की अर्थव्यवस्थाओं के विकसित होने में नीजी प्रशासन का योगदान जानना।
6. उदारीकरण के कारण सरकारी प्रशासनिक ढ़ाँचे के पद्सोपान में आये परिवर्तन से समाज में नागरिकों का दृष्टिकोण जानना।

4.4.3 उदारीकरण का लोक प्रशासन पर प्रभाव :–

विश्वकरण की अवधारणा व जन्म मुख्यतया पश्चिमी देशों में हुआ है जिसमें विश्वीकरण को लोकप्रिय बनाने का Credit भी इन्हें दिया जाता है। इस अवधारणा में पूरे विश्व को एक परिवार के समान मानने की कोशिश की गई है। उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार एवं लाइसेंस की समाप्ति चाहता है, सामाजिक जीवन में खुलापन या मनमानेपन की छूट देता है तथा नैतिकता–अनैतिकता सम्बन्धी मान्यताओं को खास महत्त्व नहीं देता। राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता को अपने पक्ष में करना चाहता है और निजीकरण का राजनीतिक स्तर पर बढ़ावा दिलाता है। वास्तव में उदारीकरण का मुख्य उद्देश्य तो मानवीय जीवन के सभी पक्ष को प्रभावित करना है। इन सबके होते हुए इसके आलोचकों ने साम्राज्यवाद का एक नया माध्यम बताया है। Fubu Yamaha, Paul Kennedy, Samual P. Huntington ये तीनों विद्वान् Globalisation के समर्थक माने जाते हैं। इन्होंने इसके समर्थन में कई पुस्तकें लिखी जैसे– Fubu Yamaha- The End of Globalisation, Samual P. Huntington- The Clash of Civilizations विश्वकरण की मुख्य दो धारणाएँ हैं–

i. उदारीकरण (Liberalisation);
ii. निजीकरण (Privatization)।

i. उदारीकरण (Liberalisation) का अर्थ

लोकप्रशासन पर उदारीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए जरूरी है कि पहले उदारीकरण क्या है, को जानने, उदारीकरण एक गतिशील एवं परिवर्तनशील अवधारणा है जो सभी क्षेत्रों में खुलापन की वकालत करता है। उदारवाद आर्थिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार एवं लाइसेंस की समाप्ति चाहता है, सामाजिक जीवन में खुलापन या मनमानेपन की छुट देता है तथा नैतिकता–अनैतिकता सम्बन्धी मान्यताओं को खास महत्त्व नहीं देता, राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता को अपने पक्ष में करना चाहता है और निजीकरण को राजनीतिक

स्तर पर बढ़ावा दिलाता है, सांस्कृतिक क्षेत्र में मादकता एवं अश्लीलता का समावेश करता है, स्पष्ट है कि उदारीकरण का मुख्य उद्देश्य तो मानवीय जीवन के सभी पक्ष को प्रभावित करना है, लेकिन मुख्य रूप से आर्थिक व्यवस्था पर एकाधिकार करना है, पूंजीवादी पताका फहराना है अमीरों के राज को स्थायी बनाना है, गरीबों की आवाज को सदा के लिए दबा देना है पैसे के लिए हर कर्म–कुकर्म करने को तैयार रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उदारीकरण समाजवादी सिद्धान्त की विरोधी अवधारणाएं हैं जिसका स्वरूप वर्गीय है और इसका सम्बन्ध पूंजीपति वर्ग से है उदारवाद पूंजीपति वर्ग के अनैतिक, सिद्धान्तविहीन, अमानवीय एवं अवसरवादी विचारधारा एवं हथियार है।

उदारीकरण के लक्षण

(Characteristics of Liberalisation)

1. **विश्व में आर्थिक समरूपताः** यह Model पश्चिमी विचारधारा को प्रस्तुत करता है और यह Pro-Rich देशों से सम्बन्धित माना जाता है। इसे Trichle Down Model भी कहते हैं। इस Model के तहत ये सोचा गया है कि सारे विश्व में आर्थिक सुधार समरूपता से किए जाए।
2. **तकनीकी प्रगति से सम्बन्धितः** यह Model तकनीकी प्रगति का वर्णन किया गया है जिससे विकास होता है।
3. **विकास का रास्ता पूंजीवादीः** इसमें पूंजीवादियों के साथ–साथ श्रमिकों का भी विकास होता है।
4. इस Model के तहत आर्थिक सुधार में आवश्यक सेवाओं का प्रावधान नहीं किया गया।

D. Bureaucracy Inspector Raj को खत्म करना। औद्योगिक प्रगति को बढ़ावा देना।

उदारवाद के नकारात्मक प्रभाव

1. ये उपनिवेशवाद का एक नया तरीका माना जाता है जैसे अमेरिका का इराक पर आक्रमण भारत के साथ आतंकवाद के साथ पाकिस्तान को आतंकवादी घोषित नहीं किया गया। अप्रैल 2002 इजराइल का फिलिस्ताइन पर आक्रमण और अमेरिका का चुप रहना।
2. ये पूंजीवादियों के हित में है जिसमें गरीब आदमी के लिए ज्यादा प्रयत्न शामिल नहीं किए गए। भारत एक विकासशील देश है जिसमें आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है।
3. 1991 से 2000 तक 10 करोड़ लोग और गरीबी रेखा से नीचे आ गए हैं।

4. कर्मचारियों पर निजीकरण की प्रक्रिया को दुष्प्रभाव पड़ा है क्योंकि उनकी छंटनी की जा रही है।

i. निजीकरण (Privatization) का अर्थ

उन सेवाओं का निजीकरण किया गया है जिसमें सरकार को अर्थात् जिनकी नित्पादन संतोषजनक न हो। दूसरे शब्दों में सरकार प्रशासकीय क्रियाओं से प्रत्यक्ष रूप से शामिल न होकर बल्कि नियमपूर्वक काम करे।

जहां तक भारत का सम्बन्ध है उदारीकरण की प्रक्रिया नरसिंहा राव की सरकार में उसके वित्त मन्त्री मनमोहन सिंह जी के द्वारा 1991 में शुरू की गई थी। क्योंकि भारत के पास इसे अपनाने के सिवाय कोई चारा नहीं था जिसे TINA Factor का नाम दिया गया।

कारण

1989 में भूतपूर्व USSR के विघटन के पश्चात् साम्यवादी विचारधारा का महत्त्व कम हो गया और संसार दो ध्रुवों से एक ध्रुव में परिवर्तित हो गया। विकासशील देशों के लिए इसके लिए अलावा और कोई चारा भी नहीं था कि इसे अपनाया न जाए जिसमें भारत भी शामिल था।

जहां तक Privatisation का सवाल है वह कुछ इस प्रकार ही केवल उन्हीं उपक्रमों या उद्योगों का निजीकरण किया जाएगा जो बीमार है तथा प्रतिफल नहीं देते।

उन्हीं उपक्रमों तथा सेवाओं का निजीकरण किया जाएगा जिसने सरकार सन्तोषजनक नहीं है। इसमें सामाजिक क्षेत्र को ध्यान में रखा जाएगा।

इसमें 'श्रम कल्याण' को नहीं नकारा जाएगा। एन. डी. ए. की सरकार आने के पश्चात् सारे मापदण्ड बदल दिए गए और ये कहा गया कि जो निजीकरण की प्रक्रिया है वह बीमार उपक्रमों में शुरू नहीं की जाएगी। किन्तु जो सरकारी उपक्रम अच्छे थे अर्थात् जिनकी Performance अच्छी थी। अर्थात् सन्तोषजनक थी। कईयों का निजीकरण किया गया जैसे BALCO तथा मारूति उद्योग सभी मजदूर संगठन तथा सभी विरोधी दलों ने इसका विरोध किया।

जहां तक उदारीकरण का प्रभाव लोक–प्रशासन पर पड़ा है उसका वर्णन इस प्रकार है–

1. तकनीकी विकास
2. विश्व व्यापार संगठन
3. बाजार अर्थव्यवस्था का प्रावधान

4. बीमार उपक्रमों से छुटकारा
5. गैर–सरकारी संगठन को बढ़ावा
6. Decontrol
7. प्रशासन का प्रजातन्त्रीकरण
8. विनियम
9. नौकरशाही से छुटकारा

श्रम सुधारों पर विपरित प्रभाव भविष्य निधि, पेंशन, राहत राशि आदि को कम कर दिया।

2002 में एक श्रम विधेयक लाया गया है जिस भी कारखाने में 1000 से ज्यादा मजदूर काम कर रहे हैं किसी भी मजदूर को उद्योगपति सरकार के अनुमति के बिना निकाल सकता है।

जैसे मारूति उद्योग जहां कर्मचारियों ने शान्तिपूर्ण Strike कर दी थी। जो श्रम संघ अधिनियम, 1926 के तहत अधिकार है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने भी मारूति उद्योग के पक्ष में फैसला दिया और कहा कि केवल उन्हीं कर्मचारियों को वापिस लिया जा सकता है जो Good Conduct का प्रमाण दे।

गरीबी का विश्वीकरण

Globalization of Poverty

इसमें बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, W.T.O, I.M.F आदि Pro-rich के हक में हैं। भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। क्योंकि जितनी भी सरकारी लाभ प्राप्त कम्पनियां हैं सबका निजीकरण होता जा रहा है।

लोक प्रशासन पर उदारवाद के प्रभाव को (भारतीय सम्दर्भ) निम्नलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **लोक प्रशासन के क्षेत्र में संकुचनः** उदारीकरण की नीति अपनाने के कारण लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र पूर्व की अपेक्षा संकुचित हो गया है। अब प्रशासन का स्वरूप लोक कल्याणकारी न होकर निषेधात्मक हो गया, आज लोक प्रशासन सार्वजनिक उपयोग के कार्यों से अपना हाथ हटाते हुए सिफ्र कानून व व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रीत करने लगा है, अब यह माना जाने लगा है कि प्रशासन का कार्य सार्वजनिक निर्माण और लोक सेवा न होकर सिफ्र कानून व्यवस्था को बनाए रखना है, इस प्रकार कल तक जो कार्य अधिकांश लोक प्रशासन द्वारा किया जाता था, वे आज निजी कम्पनियों

को सौंपा जा रहा है और आज लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में उन विषयों की संख्या घट रही है जिन पर कि लोक प्रशासन का एकाधिकार था।

2. **लोक प्रशासन के प्रति आकर्षण में ह्रासः** उदारीकरण के फलस्वरूप लोक प्रशासन की प्रतिष्ठा पर भी प्रभाव पड़ा है। आज लोक प्रशासन के प्रति प्रतिभाशाली युवकों का आकर्षण घट रहा है तथा उदारीकरण के फलस्वरूप आने वाली निजी कम्पनियों के प्रति उनका झुकाव बढ़ रहा है, वह दिन दूर नहीं, जब लोक प्रशासन को योग्य एवं प्रतिभाशाली युवक एवं युवतियां मिलना बन्द हो जाएंगी।
3. **लोक प्रशासन को चुनौतिपूर्ण प्रतिस्पर्धाः** उदारीकरण की नीति अपनाने के पश्चात् आज उन क्षेत्रों में भी निजी कम्पनियाँ प्रवेश कर रही हैं जिन पर कल तक सरकार का एकाधिकार था और उनका संचालन लोक प्रशासकों द्वारा किया जाता था, लेकिन आज स्थिति काफी बदल चुकी है, अब इन क्षेत्रों में निजी कम्पनियों का प्रवेश प्राप्त होता जा रहा है, लोक प्रशासन को अपनी उपादेयता बनाए रखने में कड़ी प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ रही है। अभी तक का अनुभव यह रहा है लोक प्रशासन निजी कम्पनियों के समक्ष अधिक देर तक प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर पा रहे हैं और अन्ततः सरकार को उन्हें भी निजी प्रशासन के हाथों सौंपना पड़ रहा है।
4. **लोक प्रशासन की भर्ती एवं प्रशिक्षण में परिवर्तनः** उदारीकरण के फलस्वरूप प्रतिस्पर्द्धा माहौल में अपनी उपादेयता बरकरार रखने के लिए लोक प्रशासन में आने वालों की भर्ती प्रणाली एवं उनके प्रशिक्षण प्रणाली में आज परिवर्तन अपरिहार्य हो गया है।
5. **लोक प्रशासन को प्रतिष्ठा में कमीः** उदारीकरण के पूर्व लोक प्रशासकों को समाज में काफी प्रतिष्ठा, सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन उदारीकरण के पश्चात् उनकी यह प्रतिष्ठा व सम्मान में कमी आई है, इस कमी के अनेक कारण हैं जिनमें अपर्याप्त वेतन एवं सुविधाएं राजनीतिक हस्तक्षेप, सामाजिक एवं कानूनी उत्तरदायित्व आदि प्रमुख हैं। आज स्थिति यह हो गई है कि लोक प्रशासन से जुड़े लोग स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेकर निजी क्षेत्रों में पलायन कर रहे हैं।
6- **भ्रष्टाचार को बढ़ावाः** ऐसे तो लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार की ऐतिहासिक भूमिका है और यह स्वतन्त्र भारत में दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया है लेकिन विगत कुछ दिनों में उदारीकरण में लोक प्रशासन भ्रष्टाचार की गति को बहुत तीव्र बना दिया है। उदारीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करने वाले एक एम. बी. ए. (M.B.A.) या एम. सी. ए. (M.C.A.) को आई. ए. एस. (I.A.S.) की तुलना में बहुत ज्यादा वेतन मिलता है और उनके जीवन में भौतिकता का अति महत्त्व होता है जिससे लोक प्रशासन से जुड़े लोग भी प्रभावित हुए वगैर नहीं रहते। एक आई. ए. एस. अपने पड़ोसी एम. बी. ए. के विलासितापूर्ण जीवन स्तर को देखते हुए ज्यादा–से–ज्यादा पैसा

कमाना चाहता है, चाहे उन्हें कितनी भी कानूनी मर्यादाओं का उल्लंघन करना पड़े, स्पष्ट है कि उदारीकरण में लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है।

अब तक के विवरण से स्पष्ट है कि लोक प्रशासन पर उदारवार का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा है।

4.4.4 निष्कर्ष :–

पर्यावरणवाद भी उदारीकरण के विरूद्ध है

आज सारे विश्व में पर्यावरण संरक्षण एवं अक्षय विकास की मांग को लेकर आंदोलन चल रहे हैं। ये आंदोलन भी उदारीकरण और निजीकरण की प्रक्रिया का विरोध तथा नियंत्रित एवं संरक्षित व्यापार की मांग करते हैं। मुक्त व्यापार की सुविधाओं का लाभ उठाकर किसी भी देश के उद्योगपति ऐसे स्थानों पर उद्योगों की स्थापना करते हैं, जहां प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हों तथा कानून के पालन के दायित्व से बचकर वे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। इसके लिए वे प्राकृतिक संसाधनों एवं श्रम–शक्ति दोनों का दोहन और शोषण करते हैं। इससे पर्यावरण को हानि पहुंचती है। विश्व के विभिन्न देशों में इस समय सरकारों पर उदारीकरण की धुन सवार है, इसलिए वे पर्यावरण संरक्षण के आंदोलनों का दमन कर रही है। परन्तु यह स्थिति ज्यादा चलने वाली नहीं है। भारत सहित विश्व के अनेक देशों के पर्यावरणविदों ने इस तथ्य को गंभीरता से लिया है तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन पर यथासम्भव नियंत्रण करने के लिए अपनी सरकार पर दबाव डालना शुरू कर दिया है।

मूल्यांकन

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उदारीकरण एवं निजीकरण को ऐसा आर्थिक सुधार नहीं कहा जा सकता, जिससे एक ओर जन–साधारण की समस्याओं का समाधान हो तथा दूसरी ओर देश की आर्थिक प्रगति हो। उदारीकरण की प्रक्रिया में जो प्रशासनिक ढांचा उभर कर सामने आया है, उसमें सरकार ने उच्च वर्गों की सुविधाओं एवं आवश्यकताओं का ध्यान रखा है और निम्न एवं दलित वर्गों की उपेक्षा की है।

भारत तथा अन्य विकासशील देशों में उदारीकरण की नहीं बल्कि और भी अधिक सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि इस हस्तक्षेप के कारण निजी उद्यमिता के रचनात्मक पक्षों का दमन न हो। सरकार को निजी उद्योगों के उत्पादन विकास में आवश्यकतानुसार सहयोग करना चाहिए, लेकिन उसे उसके सामाजिक दायित्व का बोध भी कराना होगा। तीसरी दुनिया के देशों में तो सरकार के हस्तक्षेप के बिना ऐसा आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता, जो सतत चलता रहे। राज्य के नियंत्रण और उसकी पहल से विकास के

ऐसे कार्यक्रम चलाने होंगे, जिनके फलस्वरूप जन–साधारण की क्रय क्षमता में अभिवृद्धि हो। इस समय तो अधिकांश सरकारें विपत्ति–निवारण के प्रयास भी संतोषजनक ढंग से नहीं कर पा रही हैं। जन स्वास्थ्य–सेवाओं एवं उचित प्रशिक्षण के अभाव में उत्पादकता कितनी अधिक प्रभावित होती है, इस ओर उदारीकरण और बाजार की नवीन अर्थव्यवस्था के समर्थकों का ध्यान नहीं जा रहा है।

वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि लोक प्रशासन में कुछ सेवाएं और कार्य निजी क्षेत्रों को सौंपे जाएं, परन्तु उन पर एक स्वस्थ नियंत्रण एवं निगरानी रखी जाए, जिसका उद्देश्य उन्हें नियंत्रित करना नहीं बल्कि उचित देखभाल करना है। व्यवस्था चाहे जो भी हो राज्य या सरकार अपनी पर्यवेक्षक की भूमिका से मुक्त नहीं हो सकती। इस तरह उदारीकरण एवं निजीकरण पर एक सीमा तक सरकारी नियंत्रण आवश्यक है।

सारांश

प्रशासनिक संस्कृति के स्वरूप में एकरूपता का अभाव पाया जाता है, क्योंकि यह हर देश और परिस्थिति के अनुरूप नए स्वरूप अख्तियार करता रहता है। यही कारण है कि विकसित देशों की प्रशासनिक संस्कृति अविकसित एवं विकासशील देशों की प्रशासनिक संस्कृति से भिन्न होती है। भ्रष्टाचार को भारतीय लोक सेवा के सर्वाधिक जटिल समस्या के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यों तो वर्तमान समय में प्रशासन में भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी परिघटना है और यह विकसित एवं अविकसित दोनों ही प्रकार के देशों में पाया जाता है, किन्तु अन्य देशों की तुलना में भारत में इसकी स्थिति चिंताजनक है।

वस्तुतः प्रशासनिक सुधारों का तात्पर्य तीन बातों से है– प्रथम, प्रशासन के संगठन में परिवर्तन, द्वितीय, प्रशासनिक प्रणाली में परिवर्तन तथा तृतीय, कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं ईमानदारी में वृद्धि। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात संसार के अधिकांश दोनों ने उपर्युक्त अर्थों में प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता महसूस की और इस दिशा में आवश्यक कदम उठाए। वास्तव में अनेक देशों में कुछ ऐसी प्रक्रियाएं प्रचलित हैं, जिनके द्वारा जनसाधारण की शिकायतों का निवारण किया जा सकता है। ओम्बड्समैन, लोकपाल एवं लोकायुक्त इन्हीं प्रक्रियाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। भारत में भी समय–समय पर इस उद्देश्य से अनेक विधेयक प्रस्तुत किए गए। वर्तमान में इसकी नियुक्ति एक अहम मुद्दा बन चुकी है एवंज न आंदोलन से जुड़ चुकी है।

पंचायती राज ने लोकतांत्रिक प्रशासन को देश की राजधानी दिल्ली एवं विभिन्न प्रांतों की राजधानियों से जिला एवं प्रखंड मुख्यालयों के साथ ग्रामीण स्तर तक पहुंचाने का कार्य किया है। आज ग्राम से जिला स्तर तक के विकास कार्यक्रमों का निर्धारण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा हो रहा है। वर्तमान समय में उदारीकरण एवं निजीकरण शब्द का प्रयोग एक मन्त्र या रामबाण

औषधि के रूप में किया जा रहा है। इसके सरकारी एवं सरकार समर्थक प्रवक्ता यह दावा कर रहे हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो रोगग्रस्त अर्थ व्यवस्थाओं को गति एवं जीवन प्रदान करेगी तथा लोक प्रशासन की समकालीन समस्याओं के निदान में महत्वपूर्ण योगदान देगी।

भारत

नियोजित अर्थव्यवस्था के बावजूद भी भारत का आर्थिक विकास बहुत धीरे–धीरे हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की स्थिति खराब थी। 1980–84 के दौर में प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए निजीकरण की दिशा में कुछ कदम उठाए।

भारत में 1985 तक थोड़े बहुत सुधारों को छोड़कर उदारीकरण की प्रक्रिया सीमित रही। 1985 में प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने ऐसे कई कदम उठायें जिनसे उदारीकरण की प्रक्रिया को बल मिला। 1991 में प्रधानमन्त्री पी.वी. नरसिम्हाराव के कार्यकाल में औद्योगिक नीति तथा आर्थिक नीतियों के माध्यम से गहन उदारीकरण की शुरूआत हुई। इस सरकार ने लाइसैंस या परमिट राज की समाप्ति, विनिमय दरों में उदारता, खुली व्यपार नीति, विदेशी निवेश को आमंत्रण, राजकोषीय नीति में सुधार, सरकारी उपक्रमों का विनिवेश तथा निजीकरण जैसे अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। इसके अतिरिक्त सरकारी कार्यों में सुधार, नौकरशाही तंत्र में सरलता सहित प्रशासनिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण सुधार करने के प्रयास किये। इसके अलावा अपनी अर्थव्यवस्था को उदार बनाने की दृष्टि से भारत ने 30 सितम्बर, 1994 को एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए और 'विश्व व्यापार संगठन' की सदस्यता प्राप्त की। 'विश्व व्यापार संगठन' का सदस्य बनने के बाद भारत ने आर्थिक उदारीकरण व वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तेज कर दिया। अब केन्द्र में आने वाली प्रत्येक सरकार यह मानने लगी है कि भारत सुधारों की प्रक्रिया से पीछे नहीं हटेगा। 1998 में प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन सरकार ने उदारीकरण की प्रक्रिया को तेज किया। मई, 2004 में नवनियुक्त प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने स्पष्ट तौर पर कहा कि आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया चलती रहेगी। लेकिन इसका स्वरूप मानवीय होगा। निश्चित रूप से उदारीकरण की प्रक्रिया भारत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है, जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश, बैकिंग क्षेत्र का निजीकरण, सरकारी ढांचे का आकार कम करना, बीमा क्षेत्र में निजीकरण, आयात पर पूर्ण स्वतन्त्रता, वि–नौकरशाही करना, बीमार सरकारी उपक्रमों का निजीकरण आदि जैसे कदम उठाये गये हैं।

राष्ट्रीय सन्दर्भ में उदारीकरण के प्रभाव के सम्बन्ध में तीन विचारधाराएं देखी जा सकती हैं :–

प्रथम, कुछ कट्टरपंथियों का मत है कि इसके कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत के न केवल आर्थिक क्षेत्र में प्रभुत्व स्थापित कर रही हैं, बल्कि यहां के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक ताने बाने में भी दखल दे रही हैं। अतः भारत इन कम्पनियों के चंगुल में फंसकर पुनः गुलाम न बन जाए, इसलिए इस प्रक्रिया से भारत को दूर रहना चाहिए।

दूसरा, सुधारवादी विद्वानों के अनुसार भारत में फैली व्यापक गरीबी, निरक्षरता और सामाजिक पिछड़ेपन को तब तक दूर नहीं किया जा सकता जब तक भारत भी स्वयं को विश्व अर्थव्यवस्था से नहीं जोड़ता। यदि भारत स्वयं को उदारवाद की प्रक्रिया से नहीं जोड़ता तो उसकी आर्थिक समाज की कल्पना कभी पूरी नहीं होगी। इसके अलावा तेजी से बदलती विश्व व्यवस्था में शामिल होने के अलावा भारत के पास कोई विकल्प नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय तकनीक, सहयोग व प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाने के लिए भारत को इसकी धारा में प्रवाहित होना होगा।

तीसरा, विचार जो सार्थक एवं प्रासंगिक है, यह है कि भारत को इस प्रक्रिया को अंगीकार करते हुए घरेलू बाजार, सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था व राजनीतिक वातावरण के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण आदि को ध्यान में रखना चाहिए। भारत को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसकी एक तिहाई आबादी अभी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है। आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक न्याय भी भारत का लक्ष्य होना चाहिए। इस बात को भी सुनिश्चित करना होगा कि कहीं विकसित देश भारत को एक विशाल मंडी के रूप में इस्तेमाल न करें। यहां के लघु और कुटीर उद्योग को बढ़ावा भी सरकार का लक्ष्य होना चाहिए।

4.4.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. नीजिकरण
2. उदारीकरण
3. मण्डलीकरण
4. प्रशासनिक नीतियों
5. पद्सोपान

4.4.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. उदारीकरण का क्या अर्थ है?
2. उदारीकरण के कारण लोक प्रशासन में आए दो परिवर्तन बताइए।
3. एड्म स्मिथ के हस्तक्षेप पर सक्षिप्त विचार बताइए।
4. नीजिकरण के कारण लोक प्रशासन के पद्सोपान में अर्थ दो परिवर्तन बताइए।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. उदारीकरण के कारण लोक प्रशासन पर क्या प्रभाव पड़े। विस्तार पूर्वक आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. उदारीकरण के कारण नीजि प्रशासन को बल मिला है। क्या आप इस तथ्य से समर्थन रखते हैं, यदि हाँ तो विस्तार से व्याख्या कीजिए।
3. उदारीकरण के कारण भारतीय प्रशासन में आये परिवर्तनों को आप किस दृष्टि से देखते हैं। विस्तृत व्याख्या किजिए।

सन्दर्भ सूची

1. अमित भादुरी एण्ड दीपक नैय्यर, द इन्टेलिजैन्ट पर्सनस गाइड टू लिब्रलिजम, नई दिल्ली, पैन्गविन बुक्स, 1996
2. मोहित भट्टाचार्य, न्यू होरिजॉन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, जवाहर पब्लिकेशन, 2001
3. अली फरजमन्द, ग्लोबलाइजेशन एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वोल्यूम 59, नं० 6, नवम्बर–दिसम्बर, 1998
4. अन्थोनी गिड्डन्स, रनवे वर्ल्ड : हाऊ ग्लोबलाइजेशन इज रिसेपिंग आवर लाइव्स, लन्दन, प्रोफाइल बुक्स, 1999
5. कॉलीन हिन्स, लोकलाइजेशन : ए ग्लोबल मैनिफेस्टो, यू. के., अर्थस्कैन पब्लिकेशन्स, 2000
6. जोसेफ जाबरा एण्ड ओ. पी. द्विवेदी, ग्लोबलाइजेसन, गर्वनैन्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव कलचर, इन्टरनैशनल जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वोल्यूम 27, नं० 13, एण्ड 14, 2004
7. आर. बी. जैन, ग्लोबलाइजेसन, मार्किट इकॉनामी एण्ड ह्यूमन सैक्यूरिटी, नई दिल्ली, द इंडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वोल्यूम XLVI, नं० 3, जुलाई–सितम्बर, 1996
8. एडवर्ड टी. जैनिंग्स, पब्लिक सर्विस इन एन एरा ऑफ ट्रन्सफोरमेसन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन टाइम्स, वोल्यूम 18, सितम्बर, 1995
9. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
10. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
11. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004

12. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
13. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
14. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012